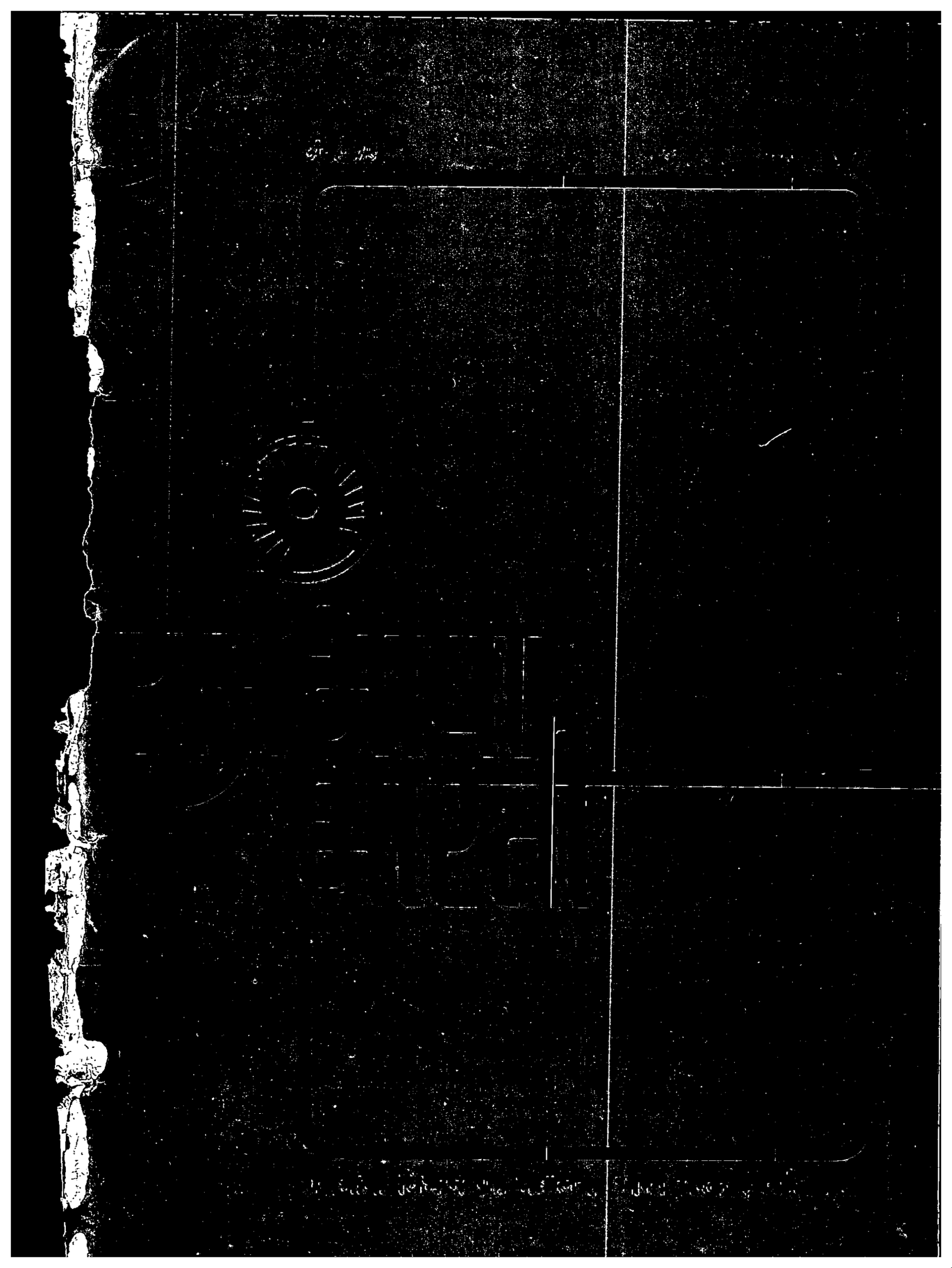

तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार?

—सुमित्रा नन्दन पन्त

भारति जय विजय करे, कनक-शस्य-कमल धरे —निराला

राजभाषा भारती

राजभाषा की त्रैमासिकी

वर्षः 18
अंकः 75
आश्विन-पौष-1918 शक अक्टूबर-दिसम्बर 1996

□ संपादक

राज कुमार सैनी
निदेशक (अनुसंधान)
फोनः 4617807

□ उपसंपादक

नेत्रसिंह रावत
फोनः 4698054

सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा
फोनः 4698054

□ संपादन सहायक

शांति कुमार स्याल
फोनः 4698054

□ निःशुल्क वितरण के लिए

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

□ पत्र-व्यवहार का पता

संपादक, राजभाषा भारती,
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय,
लोकनायक भवन, (11वां तल)
खान मार्किट, नई दिल्ली-110003

अनुक्रम

		पृष्ठ
□ संपादकीय		3
□ लेख		
1. वली दकनी	— डॉ॰ परमानन्द पांचाल	4
2. संस्कृत साहित्य का परिचयात्मक इतिहास	— डॉ॰ शशि तिवारी	7
3. भाषिक न्याय और न्याय की भाषा	— डॉ॰ पूरन चन्द टण्डन	13
4. भाषा और उत्पादकता के गहराते रिश्ते	— अशोक कुमार चोपड़ा	18
5. अनुवाद में गलतियां	— आर॰के॰ मान	22
6. सामाजिक परिवर्तन और अनुवाद	— आर॰पी॰ सिंह	25
7. राजभाषा कार्यान्वयन में समस्यायें और समाधान	— डी॰ कृष्ण पाणिक्कर	28
□ साहित्यिकी		
8. अवधी की पहली रचना	— विश्वनाथ त्रिपाठी	31
9. गोपाल सिंह नेपाली का काव्य संसार	— डॉ मनोरंजन शर्मा	35
10. समकालीन हिंदी आलोचना का मध्यम पुरूष	— राजकुमार सैनी	36
□ विश्व हिंदी दर्शन		
11. पंचम विश्व हिंदी सम्मेलनः एक रिपोर्ट	— अरूणाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री माता प्रसाद	39
12. पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन एक रिपोर्ट	—सरकारी प्रतिनिधि मंडल में सम्मिलित मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग) के अधिकारीगण	49
13. ट्रिनीडाड एवं टुबैगो में संपन्न पांचवा विश्व हिंदी सम्मेलन	— डॉ॰ परमानंद पांचाल	51
14. चीन में हिंदी	— डॉ॰ ओमप्रकाश सिंहल	53
□ भारतीय भाषा संगम		61
15. बचपन की स्मृतियों से अमरत्व का आभास	—रूपांतरकारः कुलदीप सलिल	
16. भारतीय कवियों की भारत-भक्ति	—रूपांतरकारः रामेश्वर दयाल दुबे	
17. तेलुगु कविताएं	—रूपांतरकारः टी॰ महादेव राव	
18. जीवितम् (तेलुगु कविता)	—रूपांतरकारः डॉ॰ शीलम वेंकटेश्वर	
19. तरीका (उड़िया कविता)	—रूपांतरकारः शंकर नायक	
20. उड़िया कविताएं	—रूपांतरकारः प्रद्युम्नदास वैष्णव 'विद्यावाचस्पति'	
21. नेपाली कविता	—रूपांतरकारः राम लाल शर्मा	
22. सुनते हो मां का आह्वान (मलयालम कविता)	—रूपांतरकारः के॰जी॰ बालकृष्ण पिल्ले	
23. एक यूनानी कलश को	—रूपांतरकारः कुलदीप सलिल	

	□ पुस्तक समीक्षा (इस स्तंभ में पुस्तक के लेखक का नाम समीक्षक का नाम पूर्वापर क्रम से दिया गया है।) भाषा, संस्कृति और समाज (सं॰ डॉ॰ सोहन शर्मा / गणेश खुगशाल, हमसफ़र मिलते रहे (विष्णु प्रभाकर / मधुकर सिंह), अनाम रिश्ते (कन्हैयालाल गांधी / मधुकर सिंह), भारतीय नवजागरण और यूरोप (डॉ॰ रामविलास शर्मा / डॉ॰ गीता शर्मा), प्रतिनिधि कहानियां (सत्यकुमार / विनीत कुलश्रेष्ठ), सभापर्व (वदाउज्जमा / नासिरा शर्मा), भारतीय संस्कृति के सामाजिक सोपान (शरदेन्दु / अल फोरज अहमद खान), राधा न रूक्मिणी (बाला शर्मा / शान्ति कुमार स्याल)	72
	□ हिन्दी कार्यशालाएं	80
	□सम्मेलन / संगोष्ठी	84
	□ विविधा प्रशिक्षण॰पुरस्कार॰ समाचार॰ आदेश-अनुदेश॰ पाठकों के पत्र॰	87

संपादकीय

राजभाषा भारती का यह अंक कोई विशेषांक तो नहीं है, तथापि इसमें भारत से हजारों मील दूर दक्षिणी अमेरिका के कैरेबियन सागर के द्वीप त्रिनीडाड एवं टुबैगो की राजधानी में आयोजित पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन 4 अप्रैल– 8 अप्रैल , 1996 पर विशेष सामग्री संकलित है। अरूणाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री माता प्रसाद गुप्त उस शिष्ट मंडल के अध्यक्ष थे जो भारत सरकार द्वारा वहां भेजा गया था। पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन पर महामहिम राज्यपाल द्वारा एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की गई जो हमें उन्हीं के कर-कमलों द्वारा प्राप्त हुई। यह रिपोर्ट इस अंक में संकलित हैं। हिंदी जगत इससे लाभान्वित होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

—राजकुमार सैनी

वली ने गजल के अतिरिक्त मसनवियां, कसीदें मर्सिये, रूबाइयां क्तआ लिखकर साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लेखनी उठाई, किन्तु गज़ल, में उन्हें जो सफलता मिली उसी से अगली पीढ़ी के शायरों के लिए वे प्रेरणा के स्रोत बने। उत्तर में खड़ी बोली को काव्य का माध्यम बनाने में उनकी ऐतिहासिक भूमिका रही है। 'मीर' ने भी उत्तरी भारत में रेख्ता में शायरी के प्रारम्भ और फारसी के परित्याग के लिए दकन के इसी शायर को श्रेय दिया है। वे कहते हैं—

खूगर [39] नहीं कुछ यूं ही हम रेख्ता गोई के,
माशूक जो था अपना बाशिन्दा दकन का था।

इस प्रकार 'वली' एक युग प्रवर्त्तक कवि थे, जिन्होंने दक्षिण में विकसित खड़ी बोली के काव्य को पुनः उत्तर में प्रतिष्ठित करने में अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

1. यूरोप में दकनी मख्तूतात, नसीरूद्दीन हाश्मी
2. उर्दू भाषा और साहित्य, फिराक गौरखपुरी पृ० 8
3. मीठा
4. कारण
5. गज़ल की रचना के लिए पूर्व निर्धारित मिस्रा
6. दकनी अदब की तारीख—डॉ० मुहीउद्दीन कादरी ज़ोर-पृ० 139
7. अनुकरण
8. शेर
9. दो अर्थ वाले शब्द का प्रयोग
10. विषय
11. दकनी अदब की तारीख—डॉ० मु० कादरी ज़ोर पृ० 141
12. दकनी अदब की तारीख—डॉ० मु० कादरी ज़ोर पृ० 116
13. दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा —महा प० राहुल सांकृत्यायन पृ०-305
14. उर्दू शह पारे—डॉ० मु० कादरी ज़ोर पृ०-270
15. गुण
16. बदख्शां का लाल
17. हिरण की बच्ची
18. परमात्मा
19. देश
27. कदम चूमना 28. जंगल 29. पैर के निशान
30. राहगीर 31. वास्तविक प्रेम 32. लौकिक प्रेम
33. महबूब 34. कण 35. सूर्य
36. पानी 37. एक साथ 38.
39. आदी
20. महबूब 21. जंगल 22. बीमार का इलाज 23. सम्मान
24. तरो ताजा 25.दर्पण
26. भौं

□

*** जब तक इस देश का राज काज अपनी भाषा में नहीं चलेगा, तब तक हम यह नहीं कह सकते कि देश में स्वराज्य है।**

—मोरारजी देसाई

*** हिन्दी द्वारा ही सारे देश को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।**

—स्वामी दयानंद

*** राष्ट्र भाषा हिन्दी द्वारा ही भारतीय संस्कृति की रक्षा हो सकती है।**

—पुरुषोत्तमदास टंडन

*** जब तक आपके पास राष्ट्रभाषा नहीं, आपका कोई राष्ट्र भी नहीं।**

—मुंशी प्रेमचंद

*** किसी दूसरी भाषा को जानना सम्मान की बात है, लेकिन दूसरी भाषा को अपनी राष्ट्रभाषा के बराबर दर्जा देना शर्म की बात है।**

—महादेवी वर्मा

*****

संस्कृत साहित्य का परिचयात्मक इतिहास (6)
काव्य-साहित्य

—डा॰ शशि तिवारी

I गद्यकाव्य

संस्कृत में गद्य का प्रयोग वैदिक काल से ही होता आया है। यजुर्वेद, ब्राह्मण और उपनिषद-ग्रन्थों के कई भाग गद्य में हैं। गद्य का प्रयोग व्याकरण ग्रन्थों और टीकाओं में अधिक हुआ है परन्तु विशेष बात है कि पद्य की भांति ही संस्कृत कवियों द्वारा गद्य का प्रयोग भी काव्यों के प्रणयन के लिए किया गया है। गद्य को कवियों की कसौटी कहा जाता है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' । गद्यकाव्य भाषा का वह स्वरूप है, जिसमें पद्य-बध का त्याग करते हुए भाव, भाषा और रस का समुचित परिपाक होता है। गद्यकाव्यों की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में कई मत प्रचलित हैं। अधिक सम्भावना हुई है कि जिस प्रकार पद्य के समानान्तर गद्य का प्रचलन रहा, उसी प्रकार पद्य शैली के समानान्तर ही गद्य शैली भी चलती रही और गद्य काव्यों की उत्पत्ति स्वाभाविक क्रमिक विकास के अन्तर्गत हुई।

मद्यकाव्य संस्कृत साहित्य की एक प्राचीन विधा है। पतञ्जलि ने अपने महाकाव्य में तीन आख्यायिकाओं के नाम दिये हैं—वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी। रुद्रदामन् के 150 ई॰ के शिलालेख में अलंकृत गद्य शैली के दर्शन होते हैं। प्रयाग-स्तम्भ पर लिखी गई हरिषेण की समुद्रगुप्त-प्रशस्ति, जिसका समय 345 ई॰ के लगभग निर्धारित किया जाता है, अलंकृत गद्य में हैं। गद्यपि गद्यकाव्यों या गद्यकवियों के नामों की परम्परा का प्रारम्भ दण्डी से ही मिलता है, तथापि यह मानना समीचीन है कि गद्यकला का प्रसार अवश्य कई शताब्दियों पहले से रहा होगा।

संस्कृत के अलंकारशास्त्रियों ने गद्यकाव्य के मुख्य दो भेद माने हैं—कथा और आख्यियिका। इनके लक्षण और विशेषताएं दी जाती हैं, जैसे—कथा कविकल्पित होती हैं, आख्यायिका ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित, इत्यादि। परन्तु इनके भेद बहुत स्पष्ट नहीं है। इसीलिए भेदों को गिनाने के बाद दण्डी ने स्वयं दोनों को सम-जातीय बताकर दोनों के भेदों को केवल नाममात्र का कहा है। संस्कृत गद्य को लाघव और लघुता के कारण विशेष महत्व दिया जाता है। जो विचार अन्य भाषाओं मे लम्बे वाक्यों में प्रकट किये जाते हैं, उनको संस्कृत गद्य में एक पद में कहा जा सकता है। संस्कृत गद्य कोमल भावों को प्रकट करने मे जिनता समर्थ है, उतना ही दर्शन के गम्भीर विचारों को सूत्र रूप से प्रकट करने में भी। गद्यकाव्य प्राचीनता, प्रौढ़ता उपादेयता और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से संस्कृत साहित्य के एक गौरवपूर्ण अंग हैं। यहां संस्कृत के प्रमुख गद्य काव्यकारों और उनके काव्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. दण्डी

आचार्य दण्डी संस्कृत के प्रथम गद्यकार हैं, क्योंकि सबसे प्राचीन कृतियां इनकी ही उपलब्ध होती हैं। इनके व्यक्तित्व के विषय में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। दण्डी इनका उपाधि-नाम प्रतीत होता है। अवन्तिसुन्दरी कथा' से दण्डी के जीवन के विषय में कुछ ज्ञात होता हैं। तदनुसार ये किरातार्जुनीय महाकाव्य के रचायिता भारवि के प्रपौत्र थे। बचपन में ही इनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। ये काञ्ची में निराश्रय ही रहते थे। इनके ग्रन्थों में प्राप्त विवरणों के आधार पर माना जा सकता है कि ये दाक्षिणात्य और सम्भवतः विदर्भदेशीय थे। नवम शताब्दी के कुछ ग्रन्थों में दण्डी का नामोल्लेख मिलता है अतः इनका समय इससे पूर्व ही है। दण्डी की भाषा के आधार पर इनको बाण से पहले का मानना उपयुक्त है और फिर दशकुमारचरित में वर्णित सामाजिक अवस्था हर्षवर्धन के राज्यकाल से पहले की अवस्था सिद्ध होती हैं। इसलिए दण्डी का स्थितिकाल 600 ई॰ के लगभग मानना उचित प्रतीत होता है।

शार्ङ्गधर पद्धति में राजशेखर ने महाकवि दण्डी की तीन कृतियों की बात की है 'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च'। किन्तु दण्डी के नाम से प्रचलित ग्रन्थों की संख्या सात है— दशकुमारचरित, काव्यादर्श, अवन्ति-सन्दरी-कथा, छन्दोविचिति, कलापरिच्छेद, द्विसन्धानकाव्य, मृच्छकटिक। इनमेंसे दशकुमारचरित और काव्यादर्श निश्चित रूप से दण्डी की कृतियां हैं, तो शेष का कृतित्व विवादास्पद है। कुछ विद्वान छन्दोविचित या कलापरिच्छेद को दण्डी की तीसरी रचना बताते हैं। तो कुछ मृच्छकटिक को दण्डी की तीसरी रचना सिद्ध करते हैं। काव्यादर्श एक प्रौढ़ अलंकार शास्त्र है और दशकुमारचरित एक सरस महाकाव्य।

सभी विद्वानों ने 'दशकुमार चरित' नामक गद्यकाव्य को दण्डी की कृति माना है। यह काव्य तीन भागों में विभाजित है (1) पूर्वपीठिका, जिसमें 5 उच्छवास हैं। (2) दशकुमारचरित, जिसमें 8 उच्छवास है। तथा (3) उत्तर पीठिका। एक मत के अनुसार इनमें से मध्यभाग ही दण्डी की मौलिक रचना है। जिसमें आठ उच्छवासों में आठ राजकुमारोंकी कथा वर्णित है। आठ कुमारों की कथा के कारण इस काव्य का नाम 'दशकुमारचरित' सार्थक है। पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका को दण्डी द्वारा रचित स्वीकार करने पर कुछ विद्वानों द्वारा आपत्तियां भी उठाई जाती है।

दशकुमारचरित की कथा इस प्रकार है—एक बार मगध नरेश राजहंस मालवनरेश मानसार को युद्ध मे पराजित करता है। परन्तु दयावश उसे स्वतन्त्र कर उसका राज्य भी उसे वापस कर देता है। पराजित मानसार तपस्या के बल से शक्तिशाली होकर राजहंस पर आक्रमण कर देता है। पराजित होकर राजहंस अपनी पत्नी वसुमती के साथ वन में रहने लगता है वहां उसके राजवाहन नामक पुत्र उत्पन्न होता है। उसके मन्त्रियों के भी पुत्र उत्पन्न होते हैं। ये दसों कुमार बड़े होकर दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते हैं, किन्तु एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। कुछ वर्षों के बाद वे पुनः मिलते हैं; और तब अपने साहसिक रोचक और मनोरंजक अनुभव एक दूसरे को सुनाते हैं। इन साहसी कुमारों के साहसपूर्ण घटनाओं का आकर्षक वर्णन

प्रस्तुत करने वाला आख्यान-ग्रन्थ ही 'दशकुमरचरित' कहलाता है। सब मिलकर राजहंस के शत्रुओं को पराजित मगध का राज्य प्राप्त करते हैं और सुख से रहते हैं।

दशकुमारचरित की कथा बृहत्कथा से ली गयी है। बृहत्कथा में नरवाहनदत्त और उसके साथियों के समान ही इसमें दशकुमार साहसिक कार्यों के लिए निकलते हैं और वापस मिलने पर उसका वर्णन करते हैं। इस काव्य का कथानक घटनाप्रधान है। विस्मय और रोमांच से भरे पर्यटन और पराक्रम के विवरण इसमें भरे पड़े हैं। कुछ लोग इसे 'धूर्तों के रोमांस' का नाम देते हैं। छल-कपट, मारकाट, चोरी-जारी से ओतप्रोत यह एक सजीव कृति है। व्यंग्य के साथ इसमें समाज का चित्रण भी किया गया है। दम्भी तपस्वी; कपटी ब्राह्मण, धूर्त कुट्टनी और व्यभिचारिणी स्त्रियों आदि का इसमें खूब उद्घाटन किया गया है।

दण्डी का चरित्र-चित्रण विशद है। उनका रचना कौशल दर्शनीय है। रोचकता के लिए इसमें हास्य का पटु भी दिया गया है। कथाओं के क्रम में अवरोध नहीं है। व्याकरण और भाषा की दृष्टि से दण्डी को संस्कृत गद्य शैली का आचार्य माना जाता है। उन्होंने अपने वर्णनों में सरल और मनोरम वैदर्भी रीति को अपनाया है। छोटे-छोटे वाक्य, अर्थ की स्पष्टता सुन्दर शब्द विन्यास मौलिक कल्पनाएं उनकी शैली की प्रमुख विशेषताएं है। साहित्यिक दृष्टि से दशकुमारचरित एक प्रशंसनीय रचना है। कवि दण्डी का पद ललित्य गौरव का विषय है—दण्डिनः पदलालित्यम्। काव्यगत अनेक गुणों के कारण प्राचीन आलोचक दण्डी को बाल्मीकि और व्यास के बाद आने वाले तीसरे कवि के स्थान पर रखते हैं। कुछ प्रशंसक यह कहते नहीं अघाते कि कवित्व का परिपाक केवल कवि दण्डी में है, अन्यत्र नहीं—

'कवि र्दण्डी कवि र्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।'

2. सुबन्धु

'वासवदत्ता' नामक एक मात्र गद्यकाव्य के लेखक 'सुबन्धु' को कुछ लोगकालक्रम से गद्यकाव्य लेखकों मे सर्वप्रथम मानते हैं। इनके व्यक्तित्व और समय के विषय में किसीनिश्चत जानकारी का अभाव है। बाण भट्ट ने हर्ष चरित्र में 'वासवदता' काव्य की प्रशंसा की है। इससे इतना तय है कि वे बाण से पूर्ववर्ती थे। सुबन्धु ने एक श्लेप द्वारा न्यायवार्तिक के रचयिता उद्योतकर का संकेत किया है। इन निर्देशों में आधार पर सुबन्धु का स्थिति काल बाण भट्ट से पहले 600 ई० के आस पास रखा जाता है। सुबन्धु ने अपनी काव्यकृति मे महाकवि कालिदास, कामशास्त्र प्रणेता वात्स्यायन और किसी विक्रमादित्य नामक राजा का उल्लेख किया है।

सुबन्धु की केवल एक रचना 'वासवदत्ता' ही उपलब्ध होती है, जो अलंकृत काव्यशैली के लिए सुप्रसिद्ध है। इसकी कला कवि-कल्पना की उपज है। कथानक इस प्रकार है—राजा कन्दर्पकेतु एक स्वप्न में किसी सुन्दर कन्या को देखता है और अपने मित्र मकरन्द के साथ उसे ढूंढ़ने निकल पड़ता है। वह रात में विन्ध्य की तलहटी में वृक्ष के नीचे ठहरता है और पेड़ पर बैठे शुक-सारिका से उसे ज्ञात होता है कि राजकुमारी वासवदत्ता ने भी स्वप्न में कन्दर्पकेतु को देखा है, और खोजने के लिए उसकी सारिका तमालिका निकली है। इस प्रकार शुकदम्पति की सहायता से नायक और नायिका का मिलन होता है। दोनों के हृदय में एक दूसरे के लिए प्रेम है। राजकुमार कन्दर्पकेतु को जब यह पता लगता है कि वासवदत्ता का पिता उसका विवाह विद्याधरों के राजा पुष्पकेतु से करना चाहता है, तो वे दोनों एक जादू के घोड़े पर चढ़कर भाग जाते हैं और विन्ध्याटवी पहुंचते हैं। कन्दर्पकेतु को सोता छोड़कर वासवदत्ता जंगल में घूमने जाती है। वहां उसे पाने के लिए किरातो के दो झुण्डों में लड़ाई होती है। वासवदत्ता चुपके से एक ऋषि के आश्रम में चली जाती है, वहां वह ऋषि के शाप से शिला बन जाती है। उधर जागने पर कन्दर्पकेतु आत्महत्या करना चाहता है। परन्तु आकाशवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है। वह इसी प्रकार कुछ समय निकालता है कि सहसा एक दिन उसका स्पर्श पाकर पाषण शिला पुनः वासवदत्ता बन जाती है। तभी कन्दर्पकेतु का मित्र मकरन्द वहां आ जाता है। वे सब राजधानी लौटते हैं और सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

स्पष्ट है कि कहानी स्वल्प और निर्जीव है। परन्तु कवि ने उसे अपने वर्णनों से सजाया और फैलाया है। अपनी प्रतिभा पर आधारित सुन्दर वर्णनों से सुबन्धु ने इस गद्यकाव्य में जान फूंक दी है। वर्णन-चातुरी के लिए सुबन्धु विख्यात है। वासवदत्ता कवि सुबन्धु के प्रौढ़ पाण्डित्य की कसौटी है। हक काल्पनिक कथा को अलंकृत और चमत्कृत बनाना कवि का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

कवि सुबन्धु की दृष्टि में अच्छा काव्य वही है जिसमें अलंकारों का चमत्कार, श्लेष का प्राचुतर्य और वक्रोक्त का सन्निवेश हो। इसी भावनासे उन्होंने अपने गद्य काव्य को 'प्रत्यक्षश्लेषमय, बनाया है। सुबन्धु एक श्लेष कवि है। इनके श्लेष प्रयोग प्रायः मनोहारी है किन्तु कभी-कभी अप्रसिद्ध और कठिन श्लेष भी दिखाई देते हैं।

सुबन्धु कीगद्यशैली अतिशयोक्ति, अनुप्रास और समासप्रधान गौड़ी शैली का उदाहरण है। इन्होंने लम्बे समास, अतिशयोक्तिपूर्ण कथन, कठोर ध्वनियों और अनेकविध अलंकारों का प्रयोग किया है। काव्य का मुख्य रस श्रृंगार है। शेष रसों का समुचित प्रयोग किया गया है। प्राकृतिक दृश्यों के सुन्दर वर्णन भी यथास्थान प्राप्त होते हैं, जो श्लेष के प्रपंच से रहित होने के कारण पर्याप्त मनोरंजन हैं। सुबन्धु कई शास्त्रों के ज्ञाता हैं और स्थान-स्थान पर उनके संदर्भ देते चलते हैं। सुबन्धु की गद्यशैली के विषय में विशेष रूप से यह कहा जाता है कि उन्होंने भावपढ़ की अपेक्षा कलापक्ष को प्रधानता दी है। 'वासवदत्ता' कवि सुबन्धुके पाण्डित्य और कवित्व प्रदर्शन का माध्यम होने पर भी काव्यप्रतिभा और विद्वत्ता की दृष्टि से सराहनीय गद्यकाव्य है।

3. बाणभट्ट

जिस प्रकार संस्कृत पद्यकाव्य की रचना में कालिदास अद्वितीय हैं, उसी प्रकार संस्कृत गद्यकाव्य के प्रणयन में बाणभट्ट सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्होंने गद्य में उत्कृष्ट शैली प्रस्तुत करके सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है। बाणभट्ट ने स्वयं ही अपनी कृतियों में अपने वंश और जीवन का विस्तृत परिचय देकर संस्कृत इतिहास-लेखकों पर उपकार किया है। तदनुसार इनके वंशप्रवर्तक वत्स थे। इसी वंश में आगे चलकर चित्रभानु के पुत्र के रूप में बाण का जन्म हुआ। शास्त्रीय विद्वता इन्हें पितृ-परम्परा से मिली। बाल्यकाल में माता का निधन हो जाने से पिता ने ही इनका पालन पोषण किया। ये चौदह वर्ष की अवस्था में ही पहुंचे थे कि पिता भी स्वर्ग सिधार गये। बाण अपने मित्रों के साथ इधर-उधर घूमते रहे। इनकी मित्रमण्डली में कवि, चित्रकार, गायक, संगीतज्ञ, अभिनेता, तपस्वी, साधु, भक्त आदि कई तरह के लोग सम्मिलित थे। यात्रा के दौरान बाण ने विभिन्न अनुभव प्राप्त

किये; इनकी अपकीर्ति भी फैली। उस समय के राजा हर्षवधन तक इनकी चर्चा गयी। राजा ने इनको बुलवाया, परन्तु भेंट के अनन्तर इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर इनको अपने राजकवि का पद दे दिया। हर्षवर्धन का राज्यकाल 606-648 ई० में था। अतः इस आधार पर बाणभट्ट का स्थिति काल सातवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध माना जा सकता है। बाणभट्ट के ग्रन्थों के अन्तः साक्ष्यों और कुछ बर्हिप्रमाणों से इसी समय की पुष्टि होती है।

बाणभट्ट के दो ग्रन्थ अतिप्रसिद्ध हैं— हर्षचरित और कादम्बरी। उनके नाम से तीन ग्रन्थ और भी माने जाते हैं—चण्डीशतक, मुकुटताडितक और पार्वती परिणय। इनमें प्रथम पद्यकाव्य हैं; तो दूसरा तीसरा नाटक।

'हर्षचरित' बाणभट्ट की प्रथम रचना है। इसके ऐतिहासिक इतिवृत को देखकर इसे गद्यकाव्य के 'आख्यायिका' नामक भेद के अन्तर्गत रखा जाता है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। प्रथम तीन उच्छ्वासों में बाण की आत्मकथा वर्णित है। और शेष मे सम्राट हर्ष का जीवन-चरित्र। हर्ष के पूर्वजों से लेकर प्रारम्भ की गई कथा हर्ष के जन्म आदि से होती हुई राज्यश्री के मिलने तक समाप्त होती है। ग्रन्थ की भूमिका में कवि ने अपने पूर्ववर्ती कई कवियों का आदरपूर्वक स्मरण किया है, व्यास, सुबन्धु, भट्टार हरिश-चन्द्र, कालिदास गुणाढ्य, आढ्यराज आदि का।

हर्षचरित बाणभट्ट की प्रथम और अपूर्ण कृति है। रसपरिपाक, धारावाहिकता, प्रौढ़ता और भावप्रवणता की दृष्टि से इसे कादम्बरी की अपेक्षा कम महत्व दिया जाता है। हर्षचरित के करुण रस के प्रसंग अपेक्षाकृत मार्मिक हैं। इसकी भाषा प्रसादगुण युक्त है। हर्षचरित को ऐतिहासिक, महाकाव्यों में परिगणित किया जाता है।

'कादम्बरी' को गद्यकाव्य की 'कथा' नामक विधा में रखा जाता है यह बाण की अत्यधिक प्रसिद्ध और प्रौढ़ रचना है। इसमें एक काल्पनिक कथा है। चन्द्रापीड और वैशम्पायन के तीन जन्मों की जटिल कहानी इसका विषय है। कथानक का आधार गुणाढ्य की बृहत्कथा प्रतीत होती है। माना जाता है कि कादम्बरी का पूर्वार्द्ध ही कवि बाण द्वारा लिखा गया है। मृत्यु हो जाने से उनके अधूरे गद्यकाव्य को उनके पुत्र पुलिन्द भट्ट या भूषणभट्ट ने पूरा किया है।

कादम्बरी की कथा का सार इस प्रकार है—

विदिशा के राजा शूद्रक को एक चाण्डाल कन्या अपना परम मेधावी तोता भेंट करती है। वह तोता राजा को विन्ध्याटवी में अपने जन्म से लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम में पहुंचने तक का वृतान्त सुनाता है। जाबालि मुनि से शुक अपने पूर्वजन्म का हाल सुनता है; वो इस प्रकार है-उज्जयिनी के राजा तारापीड़ तथा रानी विलासवती को तपस्या से चन्द्रापीड़ नामक पुत्र प्राप्त हुआ। राजा के सुयोग्य मंत्री शुकनास के वैशम्पायन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। दोनों विद्याओं में पारंगत हुए और मित्र बन गये। चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन दिग्विजय के लिए निकलते हैं इन्द्रायुध नामक अश्व पर एक किन्नर युगल का पीछा करते करते वे दोनों रास्ता भूलकर अच्छोद सरोवर पहुंच जाते हैं। वहां वे महाश्वेता नामक एक तपस्विनी देवकन्या को देखते हैं। महाश्वेता ने आत्मकथा वर्णन में बताया कि पुण्डरीक नामक एक ऋषिकुमार से उसका प्रेम हो गया था। परन्तु मिलन से पूर्व ही पुण्डरीक की मृत्यु हो गयी। महाश्वेता भी मृत्युवरण का निश्चय करती है परन्तु एक दिव्याकृति द्वारा भविष्य में उन दोनों के मिलन का आश्वासन दिए जाने पर वह वही अच्छोद सरोवर पर उसकी प्रतीक्षा करती है। चन्द्रापीड़ का परिचय महाश्वेता की सखी कादम्बरी से होता है। प्रथम मिलन में ही वे दोनों प्रणयसूत्र में बंध जाते हैं। तभी चन्द्रापीड़ के पिता राजा तारापीड़ उसे उज्जयिनी वापस बुला लेते हैं। अपने मित्र वैशम्पायन को चन्द्रापीड़ कादम्बरी की देखभाल के लिए छोड़ जाता है। उज्जयिनी वापस आने पर भी चन्द्रापीड़ वियोग की पीड़ा से पीड़ित रहता है। तभी उसके पास कादम्बरी का प्रेम सन्देश जाता है। इसके साथ ही कादम्बरी का पूर्वभाग समाप्त हो जाता है। उत्तरभाग बाण के पुत्र भूषणभट्ट द्वारा लिखा गया है। बहुत समय तक वैशम्पायन के न लौटने पर चिन्तित चन्द्रापीड़ उसकी खोज में अच्छोद सरोवर पर पहुंचता है। वहां महाश्वेता बताती है कि वैशम्पायन मुझ पर आसक्त हो गया था, अतः मैंने उसे तोता (शुक) होने का शाप दे दिया था। अपने प्रिय मित्र की इस करुण नियति पर दुःखी होकर चन्द्रापीड़ भी प्राण त्याग देता है। सुनते ही कादम्बरी भी प्राण देना चाहती है। तभी आकाशवाणी उसे रोकती है कि बहुत शीघ्र तुम दोनों सखियों का अपने प्रेमियों से पुनर्मिलन होगा। यही पर जाबालि मुनि द्वारा वर्णित कथा समाप्त हो जाती है।

जाबालि द्वारा यह विवरण सुनते ही शुक को अपने पूर्वजन्म की स्मृति आने लगती है और वह महाश्वेता से मिलने को अधीर हो उठता है। शुक ने राजा शूद्रक से बताया कि मैं महाश्वेता से मिलने के लिए उड़ रहा था कि मार्ग में चाण्डाल कन्या ने मुझे पकड़ कर आप तक पहुंचा दिया। तत्पश्चात चाण्डालकन्या ने राजा को बताया कि मैं पुण्डरीक (इस जन्म में वैशम्पायन) की माता हूं आप पूर्वजन्म के चन्द्रापीड़ हो।सुनतेही राजा शूद्रक को कादम्बरी की स्मृति हो आई और वे प्राणहीन होगये। उधर चन्द्रापीड़ जीवित हो उठा। तोते की कथा समाप्त होते ही शाप का समय समाप्त हो गया थी। तोता भी पुण्डरीक हो गया। इस प्रकार चन्द्रापीड़-कादम्बरी और पुण्डरीक-महाश्वेता का पुनर्मिलन हो गया। वे दोनों युगल अनेक वर्षों तक सुखमय जीवन व्यतीत करते रहे।

इस प्रकार कादम्बरी का कथानक जटिल होते हुए भी रोचक है। कादम्बरी संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट गद्यकाव्य है। सारी कथा कैतूहल से भरी हुई है। पाठकों की रुचि और उत्सुकता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। शूद्रक की राजसभा में चाण्डाल कन्या का प्रवेश जिस रहस्यमय तरीके से होता है, उसको जानने के लिए कथा क्रम निरन्तर जिज्ञासा के साथ बढ़ता जाता है और कथा के अन्त में रहस्य का उदघाटन होता है। कादम्बरी और महाश्वेता की प्रणय कथाएं स्वाभाविक रूप से एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इससे कवि के कौशल का परिचय मिलता है। सभी पात्र सजीव और विविध व्यक्तित्वों से सम्पन्न हैं। आदर्श मंत्री शुकनास, सुकुमार रानी विलासवती, चन्द्रापीड का अनुसरण करने वाली पत्रलेखा, शुभ्र वदना महाश्वेता, सौम्य युवक हारीत आदि सभी पाठकों के मन-मस्तिष्क पर अपनी-अपनी छाप छोड़ जाते हैं। कादम्बरी के मनोभावों के चित्रण में बाणभट्ट ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण के चातुर्य का परिचय दिया है।

कादम्बरी कथा में विविध वर्णनों की भरमार है। विन्ध्याटवी, जाबालि आश्रम, राजकीय विलास वैभव, महाश्वेता की विरहिणी मूर्ति, कादम्बरी का सौन्दर्य अच्छोद सरोवर, भव्य हिमालय, हर वर्णन मनोहारी, व्यापक और प्रभावी है। कादम्बरी की विशेषता है कि इससे बाणभट्ट-कालीन समाज की परिस्थितियों का ज्ञान भी होता है।

शैली और काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से बाणभट्ट संस्कृत कवियों में सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किए जाते हैं। बाण ने पांचाली रीति अपनाकर भाषा और भाव के अनुपम समन्वय के आदर्श को स्थापित किया है। उनका गद्य-पद्य से अधिक प्रांजल और परिष्कृत है। बाण की सर्वतोमुखी प्रतिभा, व्यापक ज्ञान, अद्भुत वर्णनशैली और वर्णन-विविधता के आधार पर ही यह उक्ति प्रचलित है कि बाण ने किसी विषय को अछूता नहीं छोड़ा है। उन्होंने जो कुछ वर्णन कर दिया है, उससे आगे कहने को कुछ है ही नहीं—'बाणोच्छिष्ट जगत्सर्वम्।

4. अन्य गद्यकार

दण्डी, सुबंधु और बाणभट्ट ने गद्यकाव्यकारों के रूप में संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाया। इनके बाद भी संस्कृत में गद्यकाव्यों का प्रणयन होता रहा। 1000 ई० में **धनपाल** ने तिलकमंजरी नामक गद्यकाव्य लिखा, जिस पर बाणभट्ट की शैली का स्पष्ट प्रभाव है। वादीभ सिंह ने 1000 ई० के लगभग गद्य—चिन्तामणि नामक काव्य का प्रणयन किया, जिसमें बाणभट्ट सी अलंकृत गद्यशैली अपनायी गयी है। 1100 ई० के आसपास **सोडढल** ने उदयसुन्दरीकथा नामक गद्यकाव्य लिखा। 1500 ई० के लगभग हर्षचरित के अनुकरण पर ही **वामनभट्ट** ने वेमभूपाल चरित नामक काव्य लिखा। 1900 ई० में लिखा गया गद्यकाव्य 'शिवराज विजय' आधुनिकयुग की प्रसिद्ध गद्यरचना है, जिसके लेखक पंडित **अम्बिकादत्त व्यास** हैं, इसमें मधुर पदावली और कठोर पदावली दोनों का प्रयोग यथावसर किया गया है। वर्णन प्रभावोत्पादक और सुन्दर है इस काव्य में देशभक्ति की भावना के दर्शन होते हैं। 1915 ई० में **विश्वेश्वर पाण्डेय** द्वारा रचित मन्दारमञ्जरी उल्लेखनीय गद्य रचना है जिसमें कादम्बरी का प्रभाव दिखायी देता है। **पण्डिता क्षमाराव** और **हृषीकेश भट्टाचार्य** का भी संस्कृत गद्यकारों में महत्वपूर्ण स्थान है। पण्डिता क्षमाराव ने विविध विषयों पर लगभग पचास पुस्तकें लिखी, तो हृषीकेश भट्टाचार्य ने सामयिक विषयों पर अनेक निबन्ध। आज भी संस्कृत कवियों द्वारा गद्य साहित्य सततसमृद्ध किया जा रहा है।

II. कथा-क साहित्य

संस्कृत का कथा-साहित्य अपनी मौलिकता, रोचकता और प्रभावोत्पादकता के कारण विश्व साहित्य में प्रसिद्ध है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से संस्कृत के आख्यान-साहित्य को दो भागों में बांटा जा सकता है—

(अ) नीतिकथा (Didactic fables)

(आ) लोककथा (Popular Tales)

वैदिक-वाङ्मय में कथा साहित्य के बीज मिलते हैं। संवाद सूक्तों में कथाओं का संवाद तत्व प्राप्त होता है। उपनिषदों में कई कथाएं हैं, जिनमें रोचक कहानी के साथ-साथ ज्ञान और उपदेश दिया गया है। महाभारत में पशुकथाओं का विकसित रूप देखा जा सकता है। रामायण में भी कुछ कथाओं का उल्लेख है। बौद्धों की जातक कथाएं भी रोचक वर्णनों के साथ उपदेश के लिए प्रसिद्ध है। जैन तीर्थकरों के पूर्वजन्म के वर्णन जैनों के जातक ग्रन्थों में मिलते हैं। स्पष्ट है कि ईसवीय सन् से बहुत पहले से ही भारत में नीति—कथाओं का पर्याप्त विकास हो चुका था। संस्कृत में स्वतंत्र रूप से लिखे गए कथा-ग्रन्थों की परम्परा भी लम्बी है और उनको ही विशेष रूप से संस्कृत आख्यान-साहित्य के अन्तर्गत किया जाता है।

(अ) नीति—कथाएं

नीति, सदाचार आदर्श और धर्म का उपदेश देने की प्रवृत्ति संस्कृत साहित्य में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। इसी उपदेशात्मक प्रवृत्ति का मनोरंजनकारी रूप नीतिकथाओं के उद्भव का आधार है। रोचक कहानियों के द्वारा धर्म, अर्थ और काम नामक 'त्रिवर्ग' की बातों को सरलता से समझाना नीति—कथाओं का प्रमुख उद्देश्य है। इनका मुख्य विषय सदाचार नीति-व्यवहार ज्ञान, राजनीति हैं। इनमें दिन-प्रतिदिन के जीवन, व्यक्ति और समाज के सम्पर्क, कर्तव्य और अकर्तव्य आदि का विवेनच कथा के माध्यम से कराया जाता है। इनमें अधिकतर पशुपक्षी और जीवजन्तु पात्र होते हैं। वे मनुष्यों की तरह कार्य करते हैं, व्यवहार करते हैं और बातचीत भी करते हैं। नीतिकथाओं का प्रमुख प्रयोजन मनोरंजक ढंग से उपदेश देना है, इसलिए इनकी भाषा सरल और शैली अत्यन्त रोचक होती है। दिये जाने वाला नैतिक उपदेश पद्य में संकलित किया जाता है। कभी-कभी प्रधान कथा के भीतर गौण कथाएं भी समाहित होती है। संस्कृत साहित्य के मुख्य नीति—काव्य पञ्चतंत्र और हितोपदेश हैं।

1. पञ्चतंत्र

'पंचतंत्र' विश्व की पशुकथा परम्परा का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह नीतिपरक मनोहर कहानियों का संग्रह है। बीच-बीच में उपदेशात्मक पद्य हैं। जो सूक्तियों और लोकोक्तियों के रूप में अत्यधिक प्रचलित और लोकप्रिय हैं। पञ्चतंत्र का लेखक **विष्णु शर्मा** बताया जाता है, परन्तु यह कहना बड़ा कठिन है कि इस ग्रन्थ की रचना कब हुई। वास्तव में यह ग्रन्थ अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं होता है। परन्तु इसके अनूदित और परिवर्तित संस्करणों से इसके मूल रूप का गठन किया जाता है।

प्रो० एफ० एडगर्टन द्वारा सम्पादित 'पंचतन्त्र' का संस्करण सबसे अधिक प्रामाणिक और मल के समीप का माना जाता है?

पंचतन्त्र में चाणक्य के प्रति सम्मान प्रकट किया गया है और इस पर चाणक्य के अर्थशास्त्र का प्रभाव भी है। चाणक्य का समय लगभग चौथी शताब्दी ई०पू० का माना जाता है। अतः पञ्चतन्त्र को उसके बाद तीसरी शताब्दी ई०पू० के आसपास का माना जा सकता है। कुछ विद्वान ग्रन्थ में प्रतिपादित नीति विषयक सूझबूझ के आधार पर 'विष्णुशर्मा' को 'चाणक्य' मानने के पक्ष में भी हैं।

'पंचतन्त्र' का मूल नाम निश्चित रूप से यही रहा—ऐसा कहना कठिन है, क्योंकि इसके सीरियन अनुवाद में इसका नाम 'कलिलग और दमनग' और अरबी अनुवाद में इसका नाम 'कलिलह और दिमनह' मिलता है। हां, हितोपदेश की प्रस्तावना में इसका नाम 'पंचतन्त्र' ही मिलता है। वस्तुतः 'तंत्र शब्द का अर्थ है 'विभाग और पांच विभागों में बद्ध होने से इस ग्रन्थ को 'पंचतन्त्र' कहना सार्थक है। इन पांच तन्त्रों में पांच मुख्य कथाएं हैं, तन्त्रों के नाम हैं—मित्रभेद, मित्रसंप्राप्ति काकोलूकीय, लब्ध प्रणाश और अपरीक्षित कारक। प्रत्येक मुख्य कथा में अनेक उपकथाएं हैं।

ऐसा कहा जाता है कि महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति एक ऐसे योग्य शिक्षक की खोज में थे जो उनके तीन मूर्ख पुत्रों को अल्पकाल में ही नीतिनिपुण और राजनीनित पारंगत बना दे। विष्णु शर्मा नामक प्रकाण्ड

पण्डित ने ऐसा कर दिखाने का बीड़ा उठाया और छह महीनों में मूर्ख राजकुमारों को नीतिशास्त्र में निपुण बना दिया। 'मित्रभेद' में नीतिशिक्षा है कि किस प्रकार दो मित्रों में झगड़ा करवा दिया जाए। पिंगलक शेर और संजीवक बैल घनिष्ठ मित्र थे। दो चालाक गीदड़ों ने उनमें फूट डलवा दी। और बैल की हत्या करवा दी। 'मित्र संप्राप्ति' में नीति शिक्षा है कि अनेक उपयोगी मित्र बनाने चाहिए। कौआ, कछुआ, हिरन और चूहे साधनहीन होने पर भी मित्रता के बल पर सुखी रहते हैं। 'काकोलूकीय में नीति शिक्षा है कि स्वार्थसिद्धि के लिए शत्रु से भी मित्रता कर लेनी चाहिए और बाद में धोखा देकर उसे नष्ट कर देना चाहिए। कौआ उल्लूसे मित्रता करता है और बाद में उल्लू के किले में आग लगा देता है। 'लब्धप्रणाश' में नीति शिक्षा है कि बुद्धिमान बुद्धिबल से जीता जाता है और मूर्ख हाथ में आई वस्तु से भी वंचित रह जाता है। इसमें बंदर और मगर की प्रसिद्ध कथा है। 'अपरीक्षित कारक' में नीति शिक्षा है कि बिना सोचे समझे कार्य नहीं करना चाहिए अन्यथा उस ब्राह्मणी की तरह पछताना पड़ता है जिसने बच्चे की रक्षा करने वाले नेवले को यह समझ कर मार डाला कि इसने बच्चे को मारा है।

पंचतन्त्र की कथाएं गद्य में हैं और उपदेश पद्य में। भाषा सरल, सादी और मुहावरेदार हैं। ग्रंथ छोटी बुद्धि के बालकों के लिखा गया है, अतः इसमें अल्प समास और सरल शब्दावली का प्रयोग हुआ है। सरल अलंकार भाषा को सुन्दर बनाते हैं। पंचतन्त्र की कथाएं विश्व प्रसिद्ध हैं। इसका प्रमाण है कि भारत से बाहर लगभग पचास में पंचतन्त्र के 250 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

2. हितोपदेश

संस्कृत नीतिकथाओं में पंचतन्त्र के बाद हितोपदेश का नाम आता है। अपने नाम के अनुरूप यह कथाओं के माध्यम से हितकारी उपदेश देने के लिये प्रसिद्ध है। हितोपदेश के लेखक नारायण पण्डित हैं। इन्होंने बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आदेशानुसार यह संकलन तैयार किया था। हितोपदेश का रचनाकाल अनिश्चित है। इसे दसवीं शताब्दी ई० से लेकर चौदहवीं शताब्दी ई० के बीच का माना जाता है।

हितोपदेश की रचना पंचतन्त्र के आधार पर हुई है। इसमें चार परिच्छेद हैं—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि। इनके अन्तर्गत43 उपकथाएं मिलती हैं। इनमें से 25 कथाएं पंचतन्त्र से ही ली गयी हैं। कुछ कथाएं महाभारत, शुकसप्तति तथा वेताल पंचविंशतिका से संकलित हैं। हितोपदेश में पंचतन्त्र की अपेक्षा पद्यों की संख्या अधिक है। कभी-कभी तो पद्यों की अधिकता से कथाक्रम टूट सा जाता है। पद्य उपदेशपूर्ण, सरल और लोकप्रिय हैं। इसीलिए हितोपदेश बालकों को अक्सर पढ़ाया जाता है।

हितोपदेश की शैली सरल व सरस है। भाव, भाषा, कथा प्रवाह, रोचकता आदि सभी दृष्टियों से यह एक प्रतिष्ठित नीतिकथा ग्रंथ है।

(आ) लोक कथाएं

नीति कथाएं उपदेश प्रधान होती हैं, तो लोक कथाएं मनोरंज प्रधान। लोक कथाओं में पात्र मनुष्य आदि होते हैं। इसमें रस परिपाक, काव्य सौन्दर्य, भाषा की प्रौढ़ता आदि पर भी ध्यान दिया जाता है संस्कृत में कई प्रसिद्ध लोक कथाएं उपलब्ध होती हैं।

1. बृहत्कथा

लोकथाओं का प्राचीनतम संग्रह गुणाढ्य द्वारा रचित 'बृहत्कथा' है। इसका उल्लेख दण्डी, सुबन्धु और बाण ने किया है। अतः इसका समय 500 ई० के बाद नहीं हो सकता है। कीथ ने इसका रचनाकाल 78 ई० निर्धारित किया है। किया है। मूल बृहत्कथा अब उपलब्ध नहीं होती है—यह पैशाची प्राकृत में थी और इसमें एक लाख पद्य थे। परवर्ती अनेक साहित्यकारों ने इसका सादर उल्लेख किया है और इसको अद्भुत तथा रोमांचकारी बताया है। मूलकृति गद्य में थी या पद्य में– इस विषय में मतभेद है। बृहत्कथा के कश्मीरी रूपों से ज्ञात होता है कि यह श्लोकों में रही होगी। काव्यादर्श में कवि दण्डी ने इसको गद्यात्मक बताया है।

गुणाढ्य ने अपने समय में प्रचलित रही अनेक लोक कथाओं को संग्रहीत करके बृहत्कथा रची थी। महाराज उदयन का राजकुमर नरवाहनदत इसका नायक है, जिसकी प्रिया मदनमञ्जूषा को मानसवेग हर ले जाता है। अपने मित्र और गोमुख नामक आमात्य की सहायता से वह उसे पुनः प्राप्त करता है। यही बृहत्कथा की मूल कथावस्तु है।

आज बृहत्कथा के तीन संक्षिप्त संस्कृत रूपान्तर प्राप्त होते हैं—बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह, बृहत्कथा मञ्जरी, कथासारित्सागर। **बृहत्कथा श्लोक संग्रह** के लेखक नेपा के बुधस्वामी हैं, जिनका समय आठवीं-नवीं शताब्दी ई० के आसपास रखा जाता है। यह ग्रन्थ खण्डित रूप में अपूर्ण अप्राप्त होता है। विद्वानों की धारणा है कि मूलरूप में इसमें 100 के लगभग सर्ग रहे होंगे, जबकि इसके 28 सर्ग ही प्राप्त होते हैं। संस्कृत के साथ-साथ इसमें कहीं-कहीं प्राकृत का प्रयोग भी किया गया है। इस संस्करण को मूल ग्रन्थ का विशुद्ध रूपान्तर माना जाता है। **बृहत्कथामञ्जरी** के लेखक क्षेमेन्द्र कश्मीर के राजा अनन्त के आश्रित कवि थे। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी ई० निर्धारित किया जाता है। इस ग्रन्थ में 7500 श्लोक हैं, अतः इसे बहत्कथा का संक्षिप्त रूप कहा जाता है। **कथासारित्सागर** के रचयिता सोमदेव हैं, जो कश्मीरी ब्राह्मण राम के पुत्र थे और राजा अनन्त के आश्रित कवि तथा क्षेमेन्द्र के समकालीन थे। अतः इनका समय भी ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास का ठहरता है। नाम के अनुरूप यह ग्रन्थ अनेक कथाओं का समुद्र है। इसमें लगभग 22000 श्लोक हैं। इसमें जीवजन्तु कथाएं, सृष्टि सम्बन्धी कथाएं, प्रेत कथाएं, प्रेम कथाएं आदि अनेक प्रकार की छोटी-बड़ी कथाएं मिलती हैं, जो सभी अपने आप में पूर्ण हैं। सुन्दर कथा—योजना के साथ-साथ रोचक भाषा सरल शैली और रसपरिपाक इस ग्रन्थ की उत्कृष्टता के आधार हैं। इसीलिए तीनों रूपान्तरों में कथासरित्सागर सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

2. वेतालपंचविंशतिका

यह 25 कथाओं का एक रोचक और पर्याप्त लोकप्रिय संग्रह है। इसके दो संस्करण मिलते हैं। पहला **शिवदास** ने 1200 ई० में तैयार किया। जो गद्य और पद्य में है और दूसरा **जंभलदत्त** ने, जो केवल गद्य में है। इस ग्रन्थ की कथाओं का मूलरूप बृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागर में पाया जाता है।

वेतालपंचविंशतिका में एक वेताल वक्ता है और राजा विक्रमादित्य श्रोता है। राजा त्रिविक्रमसेन को कोई सिद्ध पुरुष प्रतिवर्ष एक फल देता है, जिसमें रत्न रहता है। राजा उस भिक्षुक की सहायता के लिए एक वेताल

से अधिष्ठित शव लाने श्मशान जाता है। वेताल इस शर्त पर तैयार होता है कि राजा मार्ग में चुप रहेगा। वह मार्ग में राजा को पहेली वाली कहानी सुनाता है और अन्त में ऐसा प्रश्न पूछता है कि राजा को अपना मौन भंग करके उत्तर देना पड़ता है। 25 बार यही घटना होती है। इस प्रकार 25 पहेली युक्त कहानियां तैयार हो जाती हैं। कहानियां अत्यन्त रोचक हैं और उसमें पूछा गया प्रश्न अत्यन्त विचारणीय। बीच-बीच में नीतिपद्य भी है। राजा त्रिविक्रमसेन बाद के साहित्य में विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। कथाओं से स्पष्ट होता है कि वह एक पराक्रमी, चरित्रवान और बुद्धिमान राजा था।

3. सिंहासन द्वात्रिंशिका

सिंहासनद्वात्रिंशिका को द्वात्रिंशत्पुत्तलिका और विक्रमचरित नाम से भी जाना जाता है। यह एक मनोरंजक कहानी संग्रह है, जिसका संबंध भी राजा विक्रमादित्य से है। यह 32 कथाओं का संग्रह है। इसमें वर्णन है कि राजा भोज को विक्रमादित्य का भूमि में गड़ा सिंहासन मिलता है। उसमें 32 पुतलियां लगी हुई हैं। जैसे ही राजा भोज उस पर बैठने को तत्पर होता है, पुतलियां उसे रोकती हैं और राजा विक्रमादित्य के न्याय और पराक्रम को दर्शाने वाली कहानियां सुनाती हैं। प्रत्येक पुतली ने एक-एक कथा सुनाई। अपनी-अपनी कहानी सुनाकर वे मुक्त होती गयीं।

प्रत्येक कथा में राजा भोज का उल्लेख हुआ है। इसे धारानगरी का राजा भोज माना जाता है जो ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ था। अतः यह कथासंग्रह इस समय में बाद का ही है। भाषा और भाव की दृष्टि से यह वेतालपंचविंशतिका की तरह बहुत प्रशंसनीय नहीं है। विक्रमादित्य का न्याय एवं शौर्य प्रदर्शन कई संस्कृत काव्यों का विषय रहा है।

4. शुकसप्तति

'शुकसप्तति' संस्कृत लोक कथाओं का एक अत्यन्त रोचक और प्रसिद्ध कथासंग्रह है। इसकी रचना चौदहवीं शताब्दी से पहले हो चुकी थी, क्योंकि उस समय इसका एक अनुवाद फारसी में हुआ था। शुकसप्तति का लेखक और उसका समय अज्ञात है। जैसा कि नाम से व्यक्त होता है, इसमें 70 कहानियां हैं, जिनको एक शुक ने सुनाया है।

इसमें वर्णन है कि अरदत्त व्यापारी का मदनसेन नामक मूर्ख पुत्र था, जो अपनी पत्नी में अत्यधिक आसक्त था। कार्यवश उसे बाहर जाना पड़ता है। उसकी पत्नी पति के अभाव में व्यभिचारिणी होना चाहती है। एक बुद्धिमान शुक अपनी स्वामिनी को प्रत्येक रात में एक-एक मनोरंजक कहानी सुनाकर पति के वापस आने तक पथभ्रष्ट होने से रोकता है। वह उसे 70 रात्रियों में 70 कहानियां सुनाता है। अन्त में मदनसेन वापस आ जाता है। शुकसप्तति की शैली रोचक और आकर्षक है। बीच-बीच में संस्कृत और प्राकृत के उपदेशपरक पद्य भी हैं।

5. अन्य कथा — ग्रन्थ

इनके अतिरिक्त लिखे गए कथाग्रन्थों में कतिपय उल्लेखनीय है। 1200 ई० में शिवदास ने **कथार्णव'** नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें मूर्खों और चोरों की 35 कथाएं है। 1400 ई० के आसपास विद्यापति ने **पुरुषपरीक्षा** नामक ग्रन्थ लिखा। जिसमें 44 नैतिक और राजनैतिक कथाएं हैं। 1600 ई० के लगभग वि बल्लालसेन ने **भोजप्रबन्ध** लिखा, जिसमें संस्कृत के महाकवियों की अनेक रोचक दन्तकथाएं दी गई हैं।

बौद्ध लेखकों ने भी कथासाहित्य में अपने योगदान दिया है। इस दृष्टि से **अवदान**-साहित्य का महत्व है। **अवदानशतक** प्राचीनतम कथासंग्रह है। आर्यशूर ने चौथी शताब्दी में बोधिसत्व के पूर्वजन्म की कथाओं का संग्रह **'जातक कथा'** नाम से लिखा। जैन कथासंग्रहों में उल्लेखनीय है। हेमचन्द्र रचित **'परिशिष्टपर्वन'**। मेरुतंगाचार्य का **प्रबन्धचिन्तामणि**, राजशेखर का **प्रबन्धकोश** आदि कई जैन कथा-ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं।

अन्ततः कह सकते हैं कि संस्कृत का कथासाहित्य बहुत विशाल है। आधुनिक युग में भी संस्कृत कथाओं का प्रणयन हो रहा है। प्राचीन कथासंग्रहों में पंचतन्त्र सबसे प्रसिद्ध है। कुछ दूसरी कथाओं का भी देश-विदेश में व्यापक प्रसार हुआ है।

"चूंकि भारतीय एक होकर एक समन्वित संस्कृति का विकास करना चाहते हैं, इसलिए सभी भारतीयों का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे हिन्दी को अपनी भाषा समझकर अपनाएँ"

–डा० बाबासाहब अम्बेदकर

भाषिक न्याय और न्याय की भाषा

— डा० पूरन चन्द टण्डन

स्वाभाविक भाषा का हमको मिला न प्रचुर प्रसाद,
शब्द पराये बोल रहे हैं कर वर्णित अनुवाद।

नाथूराम शर्मा शंकर (शंकर सर्वस्व, पृ० 46)

* * * *

दिव्य भाषा परिज्ञान विकलो यः स तु स्वयम्।
स्वीयामेव वदेद् भाषां न त्वन्यां मनसा पि च ।।

— मार्केण्डे स्मृत

अर्थात् जो व्यक्ति दिव्य भाषा (संस्कृत भाषा) के ज्ञान से रहित है, उसे अपनी भाषा (मातृभाषा) ही बोलनी चाहिए, अन्य भाषा को तो मन से भी नहीं बोलना चाहिए। संभवतः इसीलिए कहा भी जाता है कि स्वदेशाभिमान की एक शाखा यह भी है कि हम अपनी भाषा का मान रखें, उसका ठीक तरह से और गर्व सहित प्रयोग करें। यदि हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करने वाली अपनी मातृभाषा, भाषा जननी 'संस्कृत' की सेवा नहीं करते तो हम स्वतंत्रता के लिए अयोग्य हैं। हमारी स्वतंत्रता छद्म है। हमारा मस्तक यदि हमारी अपनी-अपनी भाषाओं के सामने श्रद्धा से झुक नहीं जाता, तो फिर वह कभी मान से उठ भी नहीं सकता। इसी मंत्र को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी लेखकों को सौंपा था—

निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।।

— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

"गुरु गोविन्द दौउ खड़े, काके लागू पाय" जैसी दुविधा से निकालकर सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का विवेक प्रदान करने वाले "बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो मिलाय" जैसे सूत्र-मंत्र प्रदान करने वाली कबीर की चिंतन धारा में अपना स्वर मिलाते हुए भारतेन्दु ने संस्कृत और हिन्दी पर ही नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं पर जब अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषाओं के आक्रामक-षड्यंत्र को सूंघ लिया तो उनकी व्यंग्य शक्ति प्रखर और मुखर हो उठी—

सब गुरुजन को बुरो बतावै । अपनी खिचड़ी अलग पकावे।
भीतर तत्व न झूठी तेजी। क्यों सखी साजन, नहिं अंग्रेजी।।

(भारतेन्दु ग्रंथावली; पृ० 810)

भाषा मानव-मस्तिष्क की एक ऐसी शस्त्रशाला है जिसमें अतीत की तमाम सफलताओं के जयस्मारक और भविष्य की उपलब्धियों के लिए तैयार किए गए अस्त्र-शस्त्र एक साथ वास करते है। इसीलिए महात्मा गांधी ने 15 तथा 17 अक्टूबर सन् 1917 को भागलपुर के छात्र सम्मेलन में भाषण देते हुए यह कहा था कि— 'मातृभाषा का अनादर मां के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है वह स्वदेशभक्त कहलाने लायक नहीं। .....यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अंग्रेजी के जरिये ही हम अपने ऊंचे विचार प्रकट कर सकते है और उनका विकास कर सकते हैं तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेंगे। जब तक हमारी मातृभाषा में हमारे सारे विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती और जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझाये जा सकते, तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा। हम भाषा को नहीं बनाते, भाषा ही हमें बनाती और स्थापित करती है। भाषा तो कल्पवृक्ष है। परन्तु आस्थापूर्ण मांगने वालों की कमी है। इसी कारण 'अज्ञेय' भी कहते हैं — किसी भी समाज को अनिवार्यतः अपनी भाषा में ही जीना होगा। नहीं तो उसकी अस्मिता कुंठित होगी ही, और उसमें आत्म बहिष्कार या अजनबियत के विचार प्रकट होंगे ही।' (अद्यतन; पृष्ठ 24)

इस समस्त चर्चा के मूल में राष्ट्रीय एवं मातृभाषाओं के प्रति एक भावनात्मक अनुभूति तो है ही किन्तु चिंतन की सुदीर्घ परम्परा भी है। भाषा, व्यक्ति की ही नहीं देश के संस्कार की भी अभिव्यक्ति है। समय, परिवर्तन, विकास तथा आधुनिकता जैसे शब्दों से हम सभ्यता के बदलाव की वकालत तो कर सकते हैं, संस्कृति के बदलाव की नहीं। संस्कृति के मूल में तो संस्कारों का स्थायी भाव वास करता है। इसलिए हमें देश की अनेक भाषाओं को जन्म देने वाली, उन्हें अपने संस्कार-स्रोत का दुग्धपान करने वाली, अपने खून-पसीने से सिंचित "शब्दों" को ऊर्जा प्रदान करने वाली, अर्थछवियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले 'शब्द-श्वास देकर जिलाए रखने वाली विश्वभाषा का अर्थात् 'संस्कृत भाषा' का वर्तमान परिदृश्य अदालत के द्वार पर भाषिक-न्याय की गुहार करने पर विवश कर देता है। ये कैसे 'मूल्य' हैं जहां भावनाओं और आस्थाओं का फैसला बुद्धि और तर्क से कराया तो जाता है पर उसे माना नहीं जाता। यह कैसी राजनीति है जहां स्वयं भाषाओं की लकड़ियां जलाकर आग को उद्दीप्त किया जाता है और विनाश के कगार पर आकर "फायर-ब्रिगेड" को सूचित कर दिया जाता है। आग न लगने के उपायों पर चिंतन करने का समय यहां किसी के पास नहीं, आग लगने का इंतजार सभी करते हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा था—'अपनी मातृभाषा को छोड़कर विदेशी भाषा की सेवा करने वाले अपनी गुणवती माता को रूपवती भिखारिन बनाना चाहते हैं। हमारी संस्कृति है कि 'मां' अपना सब

कुछ मिटाकर भी संतान का शुभ चाहती है। यह विदेशी सभ्यता का प्रकोप है कि आज की संतान अपनी भाषा रूपी जननी को तिरस्कृत कर विदेशी भाषा रूपी रूपवती के हाथों गुलाम हो जाने में ही अपनी सफलता समझती है। हमारे भाषाविदों, मूल्यों के प्रहरी-प्रवर्त्तकों और नेताओं ने भाषा की आग पर रोटियां नहीं सेकीं। अहिन्दी भाषा-भाषियों ने भी हिन्दी को ही राजभाषा माना और मनवाना चाहा। इसी प्रकार हिन्दी इतर-भारतीय भाषाओं को भी राष्ट्र-भाषाओं की श्रेणी में स्थान दिलवाने के लिए अनेक हिन्दी प्रेमियों ने संघर्ष किया। किन्तु दुर्भाग्य कि हिन्दी और भारतीय भाषाओं के विवाद में तथा हिन्दी और अंग्रेजी की लड़ाई में हम सभी भारतवासी, भाषा-प्रयोक्ता, नेता, भाषा विद् तथा अधिकारी, संस्कृति की प्रहरी-भाषा अर्थात् 'संस्कृत भाषा' के अस्तित्व की रक्षा के प्रति उदासीन हो गए। हम उसे इस भाषिक दौड़ से बाहर जानकर उसके प्रति अतिसुरक्षित होने के भाव से इस कदर ग्रस्त हो गए कि हमारे ही घर के भीतर से उस पर आघात प्रारम्भ हो गए। आंख तब खुली तब 'सैन्ट्रल बोर्ड आफ सैकन्डरी एजूकेशन' जैसी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति लब्ध सरकारी शैक्षणिक संस्था ने ही 'संस्कृत' जैसी स्रोत और संजीवनी-भाषा को ही ''इलेक्टिव विषय'' के रूप में स्वीकार न करते हुए अपने पाठ्यक्रम से बाहर निकाल दिया। । अनेक तर्कों में एक तर्क यह भी दिया गया कि 'संस्कृत साम्प्रदायिक एकता को खंडित करती है ।' परिणामतः संस्कृति और संस्कृत के कुछ प्रहरियों ने जनहित को ध्यान में रखकर उच्चतम न्यायालय का द्वार खटखटाया और श्री संतोष कुमार एवं अन्य द्वारा दर्ज की गई रिट याचिका (सी) संख्या 299, वर्ष 1989, तथा संख्या 11303/89, 601/89, 571/89 एवं 1041/89) संबंधी दिनांक 4 अक्टूबर 1994 को सुनाए गए फैसले में न्यायधीश माननीय श्री कुलदीप सिंह एवं श्री बी०एल० हंसरिया ने 'बोर्ड' को यह ऐतिहासिक निर्देश दिया कि वे 'संस्कृत' जैसी महान भारतीय भाषा को भी असमिया, बंगला आदि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह ही पाठ्यक्रम में 'इलैक्टिव' विषय के रूप में शामिल करे।

कबीर को भाषा का डिक्टेटर कहा जाता है,इसीलिए कहा जाता है कि भाषा पर उनका अधिकार था। वे सिद्ध कर चुके थे भाषा को। इसलिए लोक जीवन हो या दर्शन, समाज सुधार हो या रहस्यवादी चिंतन, भक्ति भाव हो या प्रेमानुभूति, सभी के लिए उनके पास शब्द भंडार था। इसी कारण वे भाषा के इस मर्म को जानते थे कि भाषा के जीवित रहने के लिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है कि वह सदैव प्रयोग में रहे प्रवाह में रहे। उसकी रचनाशीलता अथवा सृजनात्मकता सदा बरकरार रहे। अगर वह 'कूपजल' बन जाएगी या बना दी जाएगी तो ठहरे पानी की तरह सड़ जाएगी। उसकी ऊर्जा समाप्त हो जाएगी। संस्कृत को वे भी अनेक भाषाओं की जन्मदात्री मानते थे। किन्तु इस स्रोतस्विनी के व्यवहार बहुल न रहने से वे चिंतित थे। उनके अनुसार युगीन पांडित्यबोध ने इस जीवंत तथा प्रवाहमयी भाषा को बोझिल बनाकर, दुरूहता और क्लिष्टता का भ्रम फैलाकर जन-जन से विलग कर दिया है। जिसका जनाधार कम होने लगता है, उसके लिए संकट के बादल घिरने लगते हैं। इसीलिए कबीर को कहना पड़ा था—

कबिरा संस्कृत कूप जल, भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सत्य है, संतमत गहन गंभीर।।
(चानक को अंग; साखी 17)

'कूपजल' बनकर अन्य भाषाओं की बंजर भूमि को सिंचित कर उर्वरा बनाने वाली भाषा संस्कृत है। साथ ही कबीर की इस उक्ति के मूल में यह चिन्ता भी समाहित है कि 'संस्कृत' को कूप जल अर्थात् कुछ गिने-चुने लोगों की बपौती बना दिया गया है। वह केवल सम्भ्रांत वर्ग की बन कर रह गई है। इसीलिए वह 'भाषा' के गौरव को खोती जा रही है पर विगत छह सौ वर्षों में कबीर की इस चिन्ता के प्रति कोई चिन्तित नहीं हुआ। धीरे-धीरे हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार से, साहित्य लेखन पठन से संस्कृत अपना जनाधार खोती चली गई। परिणामतः हम संस्कृत भाषा की ऊर्जा से भी वंचित होते चले गए तथा संस्कृत साहित्य के मूल्य-मोतियों से भी। वह भाषा जो विशाल सागर-सी थी, जननी और स्रोतस्विनी-सी संजीवनी शक्ति से सम्पन्न और समृद्ध थी, वही भाषा कूप-जल-सी सीमित बना दी गई। क्यों? हमारी भाषा नीति पर अनेक प्रश्नचिह्न इस एक 'क्यों' के माध्यम से लगाए जा सकते हैं। हम क्यों भूल गए कि—

अनुचित है या उचित यह, यह समुझत नहिं कोय।
घर-घर जो बोलत फिरें, भाषा कहिये सोय।।
(पंडित सुधाकर द्विवेदी)

हमने संस्कृत का अहित उसे जन-जन से विलग करके किया तो हिंदी का अहित उसे 'राजभाषा' का खिताब देकर किया। दोनों की परिणति जनाधार खोने में हुई। हमने भुला दिया कि संस्कृत तो सभी भारतीय भाषाओं रूपी नदियों को शब्द, भाव तथा अर्थवत्ता प्रदान करने वाले बादलों के समान है। विश्व के श्रेष्ठ ग्रंथ देने वाली भाषा तथा विलक्षता-प्रतिभा वाले साहित्यकार पैदा करने वाली भाषा की यह दुर्गति क्या हमारे स्वाभिमान को घायल नहीं करती? विश्व की इस महान भाषा को क्या अब कानूनी फैसलों पर निर्भर रहना पड़ेगा? वाह रे। हमारी साक्षरता के बहुआयामी अभिमान। पहले तनिक हम ये तो विचार लें कि 'संस्कृत है क्या? 'संस्कृत एक ऐसी भाषा है जो भारत की क्षेत्रियता, मजहब, जाति, ऊंच-नीच तथा अपने-पराए से ऊपर उठाकर उसे समकृत करती है। समभाव पैदा करके उसे सुकृत करती है। इसलिए सर जौन्स ने तो यहां तक कहा था कि 'संस्कृत की संरचना अद्भुत अपूर्व हैं, वह यूनानी से कहीं अधिक पूर्ण है, लेटिन से कहीं अधिक प्रचुर है और दोनों से कहीं अधिक परिष्कृत है।''

पुराकाल से ही वैचारिक तर्क-वितर्क को संस्कृत ने ही धारण किया है। ज्योतिष, शास्त्र को तथा वैज्ञानिक दृष्टि को इसकी अक्षय सामर्थ्य वाली शब्दावली ने ही शक्ति प्रदान की हैं। अरब देशों के अनेक जिज्ञासुओं ने संस्कृत के औपचारिक ज्ञानार्जन से ही गणित, रसायन तथा आयुर्वेद का बोध ग्रहण किया। मुगलों ने संस्कृत भाषा को साहित्य की ऊर्जा तथा उपादेयता को पहचान कर ही रामायण, महाभारत, वैदिक साहित्य, उपनिषद, पुराण अरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथ, स्मृति ग्रंथ, तथा राजतरंगिणी, भगवतगीता और योगवसिष्ठ जैसे दुर्लभ ग्रंथों के फारसी अनुवाद कराए। यही नहीं, विदेशों में प्रान्तीय भाषाएं सीखने के लिए उनके साहित्य का बोध अर्जित करने के लिए संस्कृत भाषा की संरचना, व्याकरणिक व्यवस्था तथा उसका भाषा-विज्ञान समझने के अथक प्रयास किए।

संस्कृत साहित्य विश्व का श्रेष्ठ साहित्य माना जाता रहा है। अभिजात वर्ग की भाषा होने के बावजूद संस्कृत में लिखे गए नाटक, महाकाव्य,

काव्यशास्त्रीय ग्रंथ, नीति साहित्य श्रृंगार साहित्य, ज्ञान विज्ञान के कोशग्रंथ, विश्वसाहित्य के श्रेष्ठ उदाहरण कहे और माने जाते हैं। अभिज्ञान शाकुंतलम्, रघुवंश, कुमार संभव, बुद्ध चरित्, ऋतु संहार, मालविकाग्निमित्रम् मेघदूत, उत्तररामचरित, किरातार्जुनीय, शिशुपाल वध, हितोपदेश, पंचतंत्र, वृहत्कथामंजरी तथा कथाणीत्सागर साहित्यिक रचनाओं के अभाव में विश्व साहित्य ही दरिद्र हो जाता है। संस्कृत भाषा में उपलब्ध आयुर्वेद ग्रंथों ने भी विश्व चिकित्सा के क्षेत्र में एक नई दिशा दिखाई है।

संस्कृत भाषा को 'देववाणी' भी कहा गया है। इसीलिए यह भी कहा जाता है—

भाषाणां भारतीयानां मूलमेंक हि संस्कृतम्।
मूललोपे चं शाखेव सा सर्वा शोपमेष्यति।।
—(हरिदास सिद्धांत वागीश (शिवाजी चरित-215)

अर्थात् भारतीय भाषाओं का मूल एक मात्र संस्कृत ही है। मूल के लोप होने पर नष्ट हुई शाखा के समान वे सब लुप्त हो जाएंगी। संभवतः इसी मूल मंत्र को दृष्टि में रखकर भारतीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश ने संस्कृत भाषा के शिक्षण का यह ऐतिहासिक निर्णय देते हुए स्पष्ट किया कि 'संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने से देश की धर्म निरपेक्ष छवि पर कोई आंच नहीं आती। अपनी विरासत की रक्षा के लिए संस्कृत पढ़ना अत्यंत आवश्यक है।

संस्कृत को, दिव्यज्योति से प्रकाशमान देववाणी के रूप में ही पूजा जाता है। संस्कृत अध्ययन से दृष्टि, मन और वाणी भी संस्कृत हो जाते हैं। किंतु यह दुर्भाग्य है कि हमारी शिक्षा नीति के निर्धारक कर्णधार ही अदालत-आदेश पर संस्कृत पठन-पाठन के लिए बाध्य हुए हैं। वह 'संस्कृत' जिसके विपय में कहा जाता था—

भावदेव प्रतिष्ठा स्यात् भारतस्य महीतसे।
ज्ञानामृतमयी तावत् सेव्यते सुरभारती।।
—'भवितव्यम्' पत्रिका का शीर्ष वाक्य

अर्थात्-'जब तक पृथ्वीतल पर भारत रहेगा, तब तक संस्कृत ज्ञानामृतमयी देववाणी संस्कृत सेव्य रहेगी। यह भी कहा जाता था—

इस सकल भाषा जन्मदा का? शास्वती सुर भारती
वद, वेदजननी का? जगत्योजस्वती सुरभारती।
अनुपम सरस साहित्य धनिका का? सती सुर भारती।
वद् भारतानुगता भवेत् का भारती? सुर भारती।।

अर्थात् जगत में सब भाषाओं को जन्म देने वाली भाषा कौन है? चमकती हुई संस्कृत है। कहो, वेदों की जननी कौन है? ओजमयी संस्कृत ही है। अनुपम एवं सरस साहित्य से सम्पन्न भाषा कौन है? श्रेष्ठ संस्कृत। कहो भारत की अनुरूप भाषा कौन है? सुर भारती संस्कृत।

खेद की बात है कि वही भाषा-जननी संस्कृत अब अपने ही आंगन से खदेड़ी जा रही है। क्या इसमें भी कोई विदेशी षड्यंत्र है? क्या 'कैक्ट्स ने 'तुलसी' के आंगन को पूरी तरह खरीद लिया है? क्या अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि विदेशी भाषाओं का मूल हमारे दिमाग पर काबिज हो गया है? कब तक अदालतें हमें नीति और आचार सिखाएंगी? कब तक यह राजनीति भाषा, भाव और संस्कारों से खिलवाड़ करेगी? क्या हम अपनी आत्मा और संस्कारों की भाषा को भी विदेशियों के हाथों बेच देंगे? क्या इसमें भी किसी 'मल्टीनेशनल' कम्पनी के व्यय और आय का लेखा-जोखा आधार बनेगा? अपने गाम्भीर्य और गरिमा के लिए विशिष्ट स्थान पर विराजित संस्कृत भी क्या अब हिंदी की ही तरह 'आंख की किरकिरी' बन गई? क्या इस भाषा में साम्प्रदायिकता की 'बू' अब वोटों की राजनीति के कारण जान पड़ने लगी?

उत्तर प्रदेश में भी वोटों की राजनीति और सत्ता के लोभ ने ही त्रिभाषा फार्मूले को लाठी की ताकत से अपना स्वर दे दिया और 'संस्कृत की कीमत पर उर्दू को थोपने का षड्यंत्र बना दिया। इस भाषाई आग पर कितने दिन राजनीति की रोटियां सिकेंगी? अपनी प्रतिभा के मूल स्रोत को ही निकाल बाहर करने की राजनीति क्या भाषाई-आरक्षण की वकालत करने लगी? एक वह समय था जब अकबर ने संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए राजकीय सुविधाएं उपलब्ध कराई थीं। फारसी-संस्कृत कोश का निर्माण कराया था। दारा शिकोह तक ने बनारस के पंडितों की शरण ग्रहण कर संस्कृत भाषा सीखी थी। एक आज का यह स्वार्थ और विकृति का युग है जब संस्कृत को हिंदुओं की और उर्दू को मुसलमानों की भाषा समझा और समझाया जा रहा है। कैसी बिडम्बना है कि भाषाओं की भी जाति बनाई जा रही है। कब तक अदालतें इन्हें रोकेंगी? अपने भीतर की अदालत पर दस्तक कब देंगे हम भारतवासी?

हम क्यों भूल जाते हैं कि किसी भी देश की अस्मिता की पहचान, उसकी इयता की पहचान उसकी जातियां नहीं होती। उसकी पहचान बनती हैं—कला, संस्कृति और धर्म से। यदि हम भारतीय संकृति को विश्व के आकाश पर स्वर्णिम अक्षरों में सदैव चमकते हुए देखना चाहते हैं तो हमें संस्कार निर्मात्री इस देववाणी के महत्व को पहचानना होगा। हमें याद रखना होगा कि संस्कृत ही हमारी संस्कृति का साफ स्पष्ट दर्पण है।

उच्चतम न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने यह ऐतिहासिक निर्णय जिस हृदयस्पर्शी भाषा में दिया है वह भी संस्कृत की अंतःशक्ति और न्यायधीश द्वय पर देववाणी की ही असीम कृपा है कि सरस्वती साक्षात उनकी वाणी पर विराजित दिखाई पड़ती हैं। ऐतिहासिक निर्णय के लिए प्रयोग की गई न्याय की भाषा भी यदि हृदयस्पर्शी, सशक्त, जीवंत एवं साभिप्राय हो तो सोने में सुहागा हो जाता है। कहा जाता है कि भाषा, भाव रूपी आत्मा को वहन करने वाला वह शरीर है जो आत्मा के सौंदर्य के अनुरूप ही सुंदर होता है। हमारे यहां तो 'यथानाम् तथा गुण' की बात भी कही गई है। अतः सम्माननीय न्यायाधीश ने संस्कृत भाषा के महत्व को प्रकाशित और पुनःस्थापित करते हुए अपनी बात को जिस खूबी से प्रारम्भ किया है वह वास्तव में भाषा की सुंदरता द्वारा ही भाषा के साथ किए गए अद्भुत—अपूर्व न्याय का उदाहरण है। माननीय न्यायाधीश श्री जे॰ हंसारिया ने प्रारंभ में ही द्वितीय विश्व युद्ध की सत्य तथा एक ऐतिहासिक घटना को उद्धृत करते हुए जो लिखा है, यहां उसका हिंदी अनुवाद आपके सामने प्रस्तुत है—

"कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का एक प्रोफ़ेसर अपने अध्ययन कक्ष में शांत और एकांत भाव से अध्ययन में रत है। तभी एक क्रुद्ध अंग्रेज सैनिक शस्त्र सहित दौड़ता हांफता उस कक्ष में जबरन घुस आता है और प्रोफ़ेसर को अध्ययनरत देखकर कहता है कि शर्म की बात है प्रोफ़ेसर, देश के

सभी निवासी जर्मन सैनिकों के आक्रमण का सामना कर रहे हैं और देश की रक्षा के लिए सहर्ष-सगर्व प्राणों की बाज़ी लगा रहे हैं और तुम हो कि अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध के लिए प्रस्तुत न होकर यहां अध्ययन कक्ष में छिपकर किताबों से जूझ रहे हो?

प्रोफ़ेसर ने शांत भाव से मुस्कुराते हुए कहा—'हे युवा सैनिक!' जरा बताओ कि तुम क्यों और किसके लिए युद्ध कर रहे हो?

वह सैनिक तत्काल बोला—'अपने देश की रक्षा के लिए।' प्रोफ़ेसर बोला—'ऐसा क्या है तुम्हारे देश में, जिसकी रक्षा के लिए तुम अपना खून बहाने और बलिदान देने तक को तैयार हो?' सैनिक बोला—'मेरे देश की संस्कृति और इसकी अस्मिता।' प्रोफ़ेसर फिर मुस्करा कर बोला—'मैं उसी संस्कृति का निर्माण करने की, उसकी पहचान को प्रगाढ़, उसे समृद्ध करने की लड़ाई लड़ रहा हूं जिसकी रक्षा करने के लिए तुम बलिदान तक देने को तैयार हो। संस्कृति का निर्माण—उसकी परम्परा को जीवित रखने का क्रम भी निरंतर रहना चाहिए। यदि संस्कृति विकासमान न होगी तो तुम रक्षा किसकी करोगे?' सैनिक आर्द्र हो गया और प्रोफ़ेसर को प्रणाम कर युद्ध के मैदान में फिर चला गया।"

माननीय न्यायाधीश महोदय ने इस सार्थक एवं सटीक उदाहरण से जो अर्थगांभीर्य संप्रेषित किया उसमें न्याय की भाषा की ताकत, सामर्थ्य तथा उसकी अर्थवत्ता का सौंदर्य सहज ही उभर आया। ठीक वैसे ही जैसे न्याय आत्मा है और कानून शरीर। भाव-सौंदर्य भी आत्मा है और भाषा उसका शरीर। अपनी बात को आप किस और कैसी भाषा में कह रहे हैं यह जानना-समझना जितना अध्यापक, पत्रकार तथा वकील के लिए आवश्यक है उतना ही एक न्यायाधीश के लिए भी। इस ऐतिहासिक फैसले में माननीय न्यायाधीश महोदय ने अत्यंत सुंदर भाषा एवं उदाहरण से यह बात स्पष्ट की है कि हमारी संस्कृति की दक्षिका है 'संस्कृत'। और यदि संस्कृति की रंक्षा देश के लिए आवश्यक है तो 'संस्कृत' का पठन-पाठन भी अनिवार्य है।

न्यायाधीश महोदय ने हमारी 'शिक्षा-नीति और संस्कृत' के संदर्भ में भी स्पष्ट कहा है कि शिक्षा 'जीने की तैयारी' का एक उपकरण है। शिक्षा को एक सामाजिक तथा राजनीतिक अनिवार्यता के रूप में देखते हुए हमें उसके विविध पक्षों पर सोचना चाहिए। जीवन के आधारभूत सिद्धांत मानव को शिक्षा के माध्यम से ही मिलते हैं और यदि वही नीति तथा जीवन शक्ति से विहीन होगी तो समाज चरमरा जाएगा।

निसंदेह भाषिक न्याय करते हुए न्यायाधीश द्वय ने न्यायिक भाषा के सौंदर्य पर भी बल दिया है और अत्यंत हृदयग्राही पद्धति से यह 'जजमैंट' प्रस्तुत की गई है। इस न्याय के मूल में महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियां गूंजती दिखाई पड़ती है—

> निकला जहां से आधुनिक यह भिन्न भाषा तत्व है,
> रखती न भाषा एक भी संस्कृत—समान महत्व है।
> पाणिनी—सदृश वैयाकरण संसार भर में कौन है?
> इस प्रश्न का सर्वत्र उत्तर उत्तरोत्तर मौन है।
>
> —(भारत भारतीः पृ० 40)

अतः भाषाओं की भाषा संस्कृत को गिरिश्रृंग के रूप में देखा जाता है जहां पहुंचकर कोई भी मनुष्य भूत, वर्तमान और भविष्य की दूरियों को देखने—समझने की दिव्यदृष्टि प्राप्त करता है। हिस्ट्री आफ़ लिट्रेचर (पृ० 105) पर श्लेगेल ने स्पष्ट लिखा है—"संस्कृत में विविध भाषाओं के वैयक्तिक गुणों का समाहार है—ग्रीक भाषा की शब्द-बहुलता, रोमन भाषा की गंभीर स्वर-शक्ति और हिब्रू भाषा की दिव्य उत्प्रेरणा।"

अतः जाति, राष्ट्र, कला, संस्कृत और संस्कार-चरित की सम्पूर्णता को अभिव्यक्त करने की क्षमता यदि किसी भाषा के पास है तो वह है 'संस्कृत'। मन और आत्मा की विशालता का पर्याय बनने वाली इस संस्कृत भाषा को जीवंत, प्रयोगमूलक तथा सृजनात्मक बनाए रखने का गंभीर दायित्व न्यायाधीश मात्र का ही नहीं, हमारा, हम सभी का है।

उच्चतम न्यायालय के ही भाषा संबंधी एक अन्य ऐतिहासिक निर्णय में भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश श्री एम० एन० वेंकटचलैया और न्यायमूर्ति ए० मोहन की खण्डपीठ ने यह मत अभिव्यक्त किया कि बच्चों की चौथी कक्षा तक की शिक्षा केवल उनकी मातृभाषा में ही होनी चाहिए। प्रारंभिक शिक्षा हमारे नौनिहाल बच्चों में संस्कार और नैतिकता के बीज बोती है। इस तर्क के पीछे भी न्यायमूर्ति की अनुभवी सोच तथा मनोविज्ञान के साथ-साथ बच्चों के शरीर विज्ञान का भी मुख्य आधार है। बच्चों के कोमल, मासूम मस्तिष्क पर यह अत्याचार नहीं तो और क्या है कि उन्हें मातृभाषा के स्थान पर माध्यम के रूप में भी और विषय के रूप में भी विदेशी भांषा पढ़ाई जाए? निर्णय, वोटों की राजनीति से जब चालित होते हैं तो कानूनी शरण ही राह दिखाती है। ये बड़े-बड़े राजनेता इतने छोटे हो जाते हैं कि चहुंमुखी विकास की अपेक्षा करने वाले देश के सुकोमल बच्चों को, उनकी बुद्धि और मेधा को कुंठित करने की इस प्रक्रिया से भी ये भयभीत नहीं होते।

दुर्भाग्य, कि हमारे समाज को ही एक निहित स्वार्थी तत्व जो राज करने, प्रशासन चलाने और नियमन करने का अधिकारी बन बैठने का स्वप्न देख रहा है, उसी की अपील—याचिका ने अंग्रेजी माध्यम को प्रारंभिक शिक्षा में अनिवार्य किए जाने पर बल दिया। इंग्लिश मीडियम स्टूडेंट्स पैरेन्ट्स एसोसिएशयन की विशेष अपील याचिका को ही उच्चतम न्यायालय की इस खंडपीठ ने खारीज करते हुए मातृभाषा को ही माध्यम रूप में रखने का निर्देश दिया। अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों के अभिभावकों ने प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में ही देने के बारे में कर्नाटक सरकार के आदेश को पहले उच्च न्यायालय में चुनौती दी थी। कर्नाटक सरकार ने इस विषय में सरकारी आदेश 30 अप्रैल 1982 को जारी किया था। कर्नाटक उच्च न्यायालय ने 25 जनवरी 1992 को दिये निर्णय में इस आदेश को वैध और संविधान की भावना के अनुरूप पाया किंतु हमारे अंग्रेजीदां अभिभावक मोहान्धता के कारण इससे संतुष्ट न हुए और उच्चतम न्यायालय में इस निर्णय को चुनौती दे डाली। इस अपील-याचिका में संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 के आधार पर कर्नाटक राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक संस्थाओं के अधिकारों का सवाल उठाया गया।

अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की जो बाढ़ आज हमारी शिक्षा नीति की अक्षमताओं और त्रुटियों के कारण आई है, स्कूलों में भी सरकारी आदेश के कारण कर्नाटक में कन्नड़ न पढ़ाने वाले अंग्रेजी या पब्लिक स्कूलों में यह बंदिश बन गई कि वे भी अब अंग्रेजी के स्थान पर चौथी कक्षा तक कन्नड़ अथवा बच्चे की मातृभाषा में ही शिक्षा देंगे। इस आदेश से स्कूलों के साथ-साथ तथाकथित आधुनिक अभिभावक भी परेशान हो गए और

स्वार्थ तथा मोह से बाध्य अभिभावकों ने यह कहा कि राज्य सरकार का मातृभाषा में पढ़ाने का आदेश और प्रारंभिक स्तर पर अंग्रेजी में शिक्षा देने पर रोक लगाना संविधान के कई अनुच्छेदों का उल्लंघन है। यहीं यह भी उल्लेखनीय है कि अभी चार-पांच माह पूर्व ही दिल्ली सरकार ने भी प्रारंभिक शिक्षा के माध्यम रूप में अंग्रेजी हटाकर मातृभाषा रखने की घोषणा तो कर दी, किंतु 'पब्लिक' और 'कान्वेंट स्कूल कल्चर' ने तथा विरोधी राजनीति ने इसे ही चुनावी मुद्दा बनाकर सरकार की खूब आलोचना की। पत्र-पत्रिकाओं ने सरकार की इस नीति को जी भर कर कोसा। परिणामतः सरकार को अपना मुंह बंद करना पड़ा। यह कैसी राजनीतिक शतरंज है जिसमें छोटे-छोटे मासूम बच्चों को ही गोट बनाकर पीटा जा रहा है? कहां गई हमारी इंसानियत? हम क्यों पाषाण और स्पन्दनहीन हो गए हैं? यह कैसी आधुनिकता और कैसा विकास है?

हालांकि भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री एम० एन० वैंकटचलैया और न्यायमूर्ति श्री एस० मोहन की खण्डपीठ ने निर्णय देते हुए संदर्भ में यह स्पष्ट कहा था कि विदेशी भाषा में प्रारंभिक शिक्षा देने के परिणाम से तो मातृभाषा का विकास कभी नहीं होगा। बच्चे का मस्तिष्क भी इससे कुंठित और आतंकित होगा। उसकी मौलिकता और कल्पनाशीलता भी कुंठित हो जाएगी। हम स्वाभाविकता को त्याग कर कृत्रिमता को क्यों अपनाएं? आधारभूत शिक्षा की सहज ग्राह्यता जितनी मातृभाषा में संभव है उतनी विदेशी भाषा में नहीं। फिर पांचवीं कक्षा तक आते-आते बच्चे का मस्तिष्क कुछ परिपक्व हो जाता है। अतः वहां जाकर उसे अंग्रेजी या अन्य किसी भी माध्यम से पढ़ाया जा सकता है। खंडपीठ ने यह भी कहा कि यह हर राज्य सरकार का कर्त्तव्य है कि वह अपने क्षेत्र की भाषा को यथासंभव प्रोत्साहित करे। निःसंदेह कर्नाटक सरकार ने प्राथमिक शिक्षा केवल मातृभाषा में दिए जाने के सरकारी आदेश को जारी करके एक महान कार्य किया। विरोध वहां भी हुआ, किंतु सरकार के संकल्प ने इसकी परवाह नहीं की। न जाने दिल्ली सरकार को केन्द्र के राजनीतिक दबाव ने क्यों विचलित कर दिया?

संविधान के अनुच्छेद 350 ए में भी यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि हर राज्य और स्थानीय निकायों की यह जिम्मेदारी है कि वे अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में बच्चों को प्राथमिक शिक्षा मातृ-भाषा में देने के लिए पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करें। ऐसी सुविधाएं भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए भी जुटाई जानी चाहिए। महात्मा गांधी ने भी इसी तथ्य पर बार-बार बल दिया था कि बच्चा पहला पाठ अपनी मां से ही सीखता है, इसलिए उसकी पहली शिक्षा भी मातृभाषा में ही होनी चाहिए। गांधी जी तो प्रारंभिक शिक्षा को विदेशी भाषा में दिया जाना एक अपराध मानते थे।

अतः यह स्पष्ट है कि भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के संबंध में कानूनी-प्रप्रेक्ष्य हमारे बौनेपन के परिचायक हैं। संस्कृत हो या हिन्दी, तमिल, तेलुगु या कन्नड़ अथवा अन्य कोई भी भारतीय भाषा-अंग्रेजी इनमें से किसी भी भाषा का स्थान नहीं ले सकती और न ही उसे लेने देने की छूट होनी चाहिए। 20 मार्च, 1927 को हरिद्वार की राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् में भाषण देते हुए महात्मा गांधी ने भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए संस्कृत के नाम की अनिवार्यता पर बल देते हुए स्पष्ट कहा था—"संस्कृत का अध्ययन करना प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी का कर्त्तव्य है। हिंदुओं का तो है ही मुसलमानों का भी है। क्योंकि आखिर उनके पूर्वज राम और कृष्ण थे और अपने पूर्वजों को जानने के लिए उन्हें संस्कृत सीखनी चाहिए।"

वास्तव में गांधी जी ने यह स्पष्ट कहा था कि संस्कृत के ज्ञान से ही सब भारतीय भाषाओं को सीखने-जानने के द्वार खुलते हैं। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इतालवी या अन्य किसी विदेशी भाषा से नहीं। भाषाएं सभी महान हैं। जितनी अधिक भाषाएं हम सीखें, जानें, उतनी हमारी जीत होगी। किंतु घर की कामधेनु को छोड़कर बाहर किसी गाय को दुहने के लिए भटकना मूर्खता नहीं तो क्या है? संस्कृत मात्र एक भाषा नहीं, वह तो एक सुदीर्घ ज्ञान परंपरा है।

उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति ने संस्कृत के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यदि अपनी समस्त प्राचीन विरासत को, भारतीय ज्ञान और प्रक्रिया की धरोहर को जीवित रखना है, उसकी संरक्षा करनी है तो संस्कृत को भी जीवित रखना होगा। उसे पढ़ना और सिखाना होगा। संस्कृत की शिक्षा को हतोत्साहित करते ही हमारी संस्कृति की तमाम धाराएं, नदियां सूख जाएंगी। संस्कृत किसी धर्म या सम्प्रदाय की भाषा नहीं। यह तो मानव जाति की आस्मिता की भाषा है। आज हम स्कूल स्तर से संस्कृत को निकालने का प्रयास कर रहे हैं तो कल महाविद्यालय और विश्वविद्यालय से भी निकाल बाहर करेंगे। हम भूल गए कि यूरोप में ग्रीक और लेटिन का भी इतना महत्व नहीं जितना भारत की संस्कृति को, उसकी जड़ों को सिंचित करने वाली इस देवभाषा का है जो मनुष्य को देवत्व की गरिमा प्रदान करती है। संस्कृत भाषा की इसी विलक्षणता को देखते हुए हमारे संविधान के अनुच्छेद 351 में यह स्पष्ट कहा गया है कि केन्द्र हिंदी के प्रसार को बढ़ावा देने के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपनी शब्दावली के लिए संस्कृत के आधार को प्रमुखता देगा। उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति ने इस व्यवस्था का भी उल्लेख किया और अपने निर्णय के आधार-स्वरूप इसे उल्लिखित भी किया। इस संदर्भ में 20 अप्रैल, सन् 1935 को हिंदी साहित्य सम्मेलन, इंदौर में दिए गए गांधी जी के भाषण का यह अंश भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यद्यपि मैं इन तमिल, तेलुगु, मलयायम और कन्नड़ भाषाओं को संस्कृत की पुत्रियां मानता हूं, तो भी यह हिंदी, ओड़िया, बांग्ला, असमी, पंजाबी, सिंधी, मराठी, गुजराती से भिन्न हैं, इनका व्याकरण हिंदी से बिल्कुल भिन्न है। इनको संस्कृत की पुत्रियां कहने का अभिप्राय इतना ही है कि इन सब में संस्कृत शब्द काफी हैं और जब संकट आ पड़ता है तब ये संस्कृत माता को पुकारती हैं और उसका नवीन शब्द रूपी दूध पीती है। प्राचीन काल से भले ही ये स्वतंत्र भाषाएं रही हों पर अब तो ये संस्कृत में से शब्द लेकर अपना गौरव बढ़ा रही हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण इनको संस्कृत की पुत्रियां कहने के हैं।

अतः आज एक बार फिर हमें आत्मालोचन करना चाहिए। क्या अपने ज्ञान प्रवाह की इस ऐतिहासिक परंपरा को राजनीतिक दांव-पेंच की चट्टानों को हम रुद्ध या विमुख होने देंगे? संस्कृत की शिक्षा, उसका अध्ययन-अध्यापन धर्म निरपेक्षता के विरुद्ध है,क्या ऐसे तर्कों को हम चुपचाप सुनते रहेंगे? सर्वधर्म समभाव की भावना से ओतप्रोत इस संतभाषा को क्या साम्प्रदायिक चोला पहनाने की इस घिनौनी हरकत को चुपचाप बर्दाश्त कर लेंगे? आज भाषण-बाजी की नहीं समन्वित आस्था

शेषांश पृष्ठ 27 पर

भाषा और उत्पादकता के गहराते रिश्ते

—अशोक कुमार चोपड़ा

अभी कुछ अर्सा गुजरे राजनैतिक परिवेश में आम चुनावों में सबसे बड़ी राष्ट्रीय पार्टी कांग्रेस की पराजय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये उसी पार्टी के एक सशक्त राजनेता श्री प्रणव मुखर्जी ने एक बड़ी ही स्टीक टिप्पणी की थी, "कांग्रेस की इस पराजय का मुख्य कारण यह रहा कि हम अपनी आर्थिक उपलब्धियों और विकास-गतिविधियों को यथोचित भाषा में सही ढंग से जनता के सामने पेश नहीं कर सके और इस तरह उस प्रक्रिया में अभिजात्य-पन के संकेत सामने आये।" मैं समझता हूं कि सूत्र-रूप में एक वरिष्ठ राजनेता की इस बेबाक टिप्पणी से व्याख्या के तौर पर इतने विस्तृत परिणाम समक्ष आते हैं, जिन पर यदि अध्ययन-विश्लेषण किया जाये तो कई सकारात्मक तथ्यों का इजहार हो जाता है। अपने तमाम विकासात्मक कार्यकलापों, वित्तीय उदारवादी व्यवस्था, आर्थिक खुलापन, सेबी के विनियमन, बैंकों के आर्थिक सुधारपरक रुख आदि को अंग्रेजी भाषा में जनता जनार्दन तक स्पष्ट करना कहां तक सार्थक नतीजे देता, यह सर्वविदित हो गया। इस प्रक्रिया में कई बार तो यह भी देखा गया कि विदेशों की बैंकिंग प्रणाली के नियम – विनियम अंग्रेजी में हू-बहू उतार दिए गये, उनमें कोई फेर-बदल नहीं किया गया, भारतीय वित्तीय परिवेश एवं उसके मूल्यों के मद्देनजर उनमें परिवर्तन न करते हुए अंग्रेजी में उन्हें जस-का-तस बरकरार रखने से बड़े-बड़े हवाला कांड और अन्य वित्तीय विसंगतियों की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। अगर ये सब वित्तीय प्रक्रियायें और इनके नियम-उपनियम हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में होते तो संभवतः इन दुष्परिणामों की कुहेलिका से हमारी अर्थ-व्यवस्था कलंकित न होती। और फिर सबसे बेहतरीन और आशान्वित परिणाम तब अधिक सुखद प्रतीत होते कि जब सामान्य जनता इन आर्थिक प्रक्रियाओं को अपनी ही भाषा में समझकर कर ज्यादा लाभान्वित होती। लाभ कुछ बड़े व्यक्तियों तक सीमित न रहते, बल्कि वे समाज के निचले तबके तक उन्हीं की भाषा में सहजता से पहुंच पाते। राजनीति के वर्तमान परिदृश्य को भाषा के साथ जोड़ना अधिक सामयिक इस आधार पर भी बन पड़ा कि काश नेता अपनी विजय के पश्चात् उसी भारतीय भाषा का प्रयोग करते जिसका वे अपने चुनावी क्षेत्र के मंचों पर प्रयोग करते रहते हैं।

इन्हीं पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए देश के उत्पादकता से जुड़े कुछेक मंत्रालयों/विभागों/संगठनों/उपक्रमों/निगमों और अन्य कल-कारखानों का भी परिणामगत मूल्यांकन कर लिया जाये, जिससे और अधिक तर्कसंगत रूप में सिद्ध हो सके कि उत्पादकता और भाषा का प्रत्यक्ष आनुपातिक संबंध है। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साथ जुड़कर ही देश के कार्यालयों और कल-कारखानों के उत्पादन में दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति संभव हो सकती है, अन्यथा मौलिकता तथा स्व-पतन के अभाव में इस प्रकार का संपूर्ण ढांचा चरमराता दृष्टिगोचर होगा। इस चिंतन का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि अंग्रेजी में बोली-लिखी गयी प्रविधि या तकनीक जहां स्व-केन्द्रित और स्वार्थ की ओर उन्मुख होगी वहीं हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में व्यक्त तकनीक जनमानस के माध्यम से बहु-जनोपयोगी और सर्व-सुलभ होगी। इस दिशा में अंग्रेजी के माध्यम से आप दुकान तो चला सकते हैं, परन्तु देश व समाज की विस्तृत परिधि में आने के शुभ-संकेत से वह चिन्तन व वैज्ञानिक-सोच दूर होता चला जायेगा। हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के जरिये ही वैज्ञानिक चिन्तन कर देश में नागरिकों की मृत्यु-दर में कमी आयी है, साफ-सुथरा जीवन-यापन करने से जीवन मूल्यों में नयापन आया है, चिकित्सा और औषधि-विज्ञान की गुत्थियों एवं प्रक्रियाओं को सामान्य जनभाषा में समझकर देश के रहन-सहन में प्रांजलता व निखार आया है। शारीरिक आधि-व्याधि के निराकरण में जन-चेतना जागृत हुई है हिन्दी व भारतीय भाषाओं को अपनाकर। आबादी की वृद्धि और जनसंख्या-विस्फोट की भयावहता और उसके दुष्परिणाम जब जनता को उन्हीं की भाषा में समझाये गये तो 1981—91 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर में उत्साहजनक कमी नजर आयी और यह घटकर 23.85% (पिछले 1971—81 में 24.66%) हो गयी। आशातीत परिणाम तब देखने को मिले जब देश के एक सर्वाधिक साक्षर प्रदेश केरल में यह वृद्धि दर न्यूनतम 14.32% रही। आश्चर्य नहीं कि केरल में यह साक्षरता उन्हीं की भाषा मलयालम द्वारा प्राप्त की गयी। देश के सभी केन्द्रीय मंत्रालयों एवं विभागों में जनहित को ध्यान में रखते हुए द्विभाषिकता की अनिवार्यता के दौर से इनके द्वारा किये जा रहे सभी जनकल्याण संबंधी विकासात्मक कार्यकलाप राजभाषा हिंदी के माध्यम से जब उजागर हुए तो देश की सर्वाधिक जनसंख्या (1981 में देश-भर के हिंदी भाषी जनसंख्या के सर्वाधिक आंकड़े 264.5 लाख) इनसे लाभान्वित हुए बिना नहीं रह सकी। इस प्रकार उन्हें अपने अधिकारों और दायित्वों का बोध अपनी ही भाषा के जरिये हुआ और इस जन उद्बोध एवं चेतना ने अनेकानेक नव विकास प्रारम्भ किये। देश के असैनिक मंत्रालयों/विभागों के अतिरिक्त रक्षा मंत्रालय और उससे जुड़े उपक्रमों/निगमों में भी हिंदी के जरिये नवनवोन्मेष हुआ। देश की सेवाओं के सभी सेना कमांड हिंदी में ही हैं। रक्षा सेनाओं में अपार स्वैच्छिक भर्ती का कारण भी उनकी भाषाएं ही रहीं जहां युवाओं को मौलिक चिंतन पर जोर दिया गया उन्हीं की भाषाओं को माध्यम बना कर। देश-भर में भर्ती अभियान हेतु व्यापक प्रचार-प्रसार उन्हीं की अपनी भाषाओं में संपन्न किया जाता है। "एकता और अनुशासन" जैसे आदर्श वाक्यों को सिरमौर

बनाकर एन सी सी में भी जनभाषा हिंदी के जरिये ही देश के युवकों में चरित्र, अनुशासन, नेतृत्व, धर्मनिरपेक्षता की भावना, जोखिम उठाने की प्रवृत्ति, खेल भावना एवं निस्वार्थ सेवा के आदर्शों का विकास चल रहा है। सैन्य स्कूलों और अकादमियों में भी हिंदी माध्यम तथा एक विषय के रूप में हिन्दी का प्रखर ज्ञान प्रदान किया जाता है। "मिश्र धातु निगम" जैसे रक्षा निगमों के नामकरण के पीछे भी यही राजभाषा हिंदी की नेक-भावना कार्य कर रही है। इन उपक्रमों में विनिर्मित रक्षा साज-सामान और उपकरणों के नामकरण यथा "चीता", "चेतक", "पृथ्वी", "अग्नि", "आकाश", "कावेरी", "नाग" आदि के पीछे भी यही सैन्य भावना कार्यरत है। हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही सेनाओं में अपेक्षित देश-सेवा एवं देश प्रेम की भावना कायम करने में मदद मिलती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद चीन एवं पाकिस्तान से लड़े गये सभी युद्धों में हिंदी माध्यम से ही देश के जवानों में देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी गयी। उस समय रेडियो के जरिये हिंदी में ऐसे-ऐसे कार्यक्रम एवं फिल्मीगीत आदि सुनाये गये जिससे देश के नागरिकों और योद्धाओं ने अपने प्राणों तक की उत्सर्ग की भावना भी हिंदी के ही माध्यम से भरी गयी।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त कृषि-मंत्रालय की गतिविधियों पर एक नजर उठायी जाये तो यह वास्तविकता बड़ी ही आसानी से समझ आ जाती है कि देश की "हरित क्रांति", "श्वेत-क्रांति", उन्नत बीजों के चयन से समुन्नत फसलों की उपलब्धि आदि सब के सब सुखद परिणाम मात्र इसीलिए सामने आ पाये क्योंकि देश के कृषि विशेषज्ञों एवं बागवानी विशारदों आदि ने कृषकों और छोटे किसानों को उन्हीं की भाषा में उर्वरकों और कीटनाशकों के बारे में बताना शुरू किया। परिणामों में उत्पादकता का संवर्धन तो होना ही था। देश की श्रमशक्ति का लगभग 65% इस कृषि क्षेत्र से ही आजीविका अर्जित कर रहा है। बेहतर नतीजे प्राप्त करने के पीछे यह भी एक कारक रहा कि किसानों को उन्हीं की भाषा में फसल-क्रांति की ओर मोड़ा गया। वर्ष 1949-50 में खाद्यान्न उत्पादन 549.2 लाख टन था जो 1993-94 में बढ़ाकर 1,821 लाख टन हो गया। यह मात्रगत वृद्धि मात्र इसीलिए संभव हो पायी कि किसान अपने उत्पादन के बारे में ज्यादा उद्‌बुद्ध और सचेतन हो गया—इस प्रतियोगिता में उसने खुद भी आकर कृषि विशेषज्ञों से संपर्क साधा और अपनी ही भाषा में नयी-नयी जानकारियां हासिल कीं, नतीजे सुखद होने स्वाभाविक थे। इसके साथ ही साथ समुन्नत किस्म के बीज व प्रमाणित बीजों की नानाविध किस्मों के वपन के बारे में उन्हें उन्हीं की भाषा में समझाया गया। इतना ही नहीं कृषक की ही भाषा द्वारा फसल की समुन्नत गुणवत्ता भी प्राप्त की गयी है। गुणवत्ता के इस सुधार हेतु राज्य बीज परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा बीजों की जांच का काम स्वैच्छिक आधार पर किया जाता है। इसी तरह कृषि-क्षेत्र में खाद्यान्न उत्पादन में फर्टिलाइजर के इस्तेमाल का प्रमुख स्थान है। मिट्‌टी की जांच करके कृषक को उसी की भाषा में बताया जाता है कि रासायनिक उर्वरक का इस्तेमाल करें या नहीं। मिट्‌टी के पोषक तत्वों की मौजूदगी इसका मुख्य कारण है। कृषि जगत अब सहकारिता के क्षेत्र में भी प्रवेश कर गया है और सहकारिता में तो भारतीय भाषाओं का ही प्रयोग होता है। इस तरह यांत्रिकी खेती, उर्वरकों की गुणवत्ता, भू तथा जल संरक्षण, पौध संरक्षण, बारानी खेती आदि संकल्पनाओं की सभी तकनीक प्रक्रियाओं को किसान की अपनी भाषा में समझा-बुझा कर अपेक्षित परिणाम प्राप्त किये जा रहे हैं। कृषि के इस विशाल क्षेत्र में पशु-पालन, मांस-उत्पादन/प्रसंस्करण और निर्यात, चारा और दाना, पशुधन स्वास्थ्य, मुर्गी-पालन, भेड़-विकास, मछली पालन व उत्पादन, डेयरी विकास, समुद्री उत्पाद तथा परंपरागत कछुओं के लिए कल्याण कार्यक्रम जैसे विविध कार्यकलाप आते हैं और इन सभी में देश की अपार जनशक्ति कार्यरत है और यह अपार उपलब्धि हिंदी व भारतीय भाषाओं के जरिये आशातीत परिणाम सामने ला रही हैं।

देश के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों में से मूलभूत और आद्योपांत परिवर्तन लाने की क्षमता संपन्न एक मंत्रालय हैं—मानव संसाधन मंत्रालय। मानव संसाधन मंत्रालय की गतिविधियों में व्यक्ति, समाज एवं देश की बहुमुखी उन्नति के सूत्र समाहित हैं। ऐसे संसाधन जुटाना जिससे मानव के व्यक्तित्व का मौलिक संवर्धन हो सके—संभवतः इसका मूलमत्र है। केन्द्र सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित "भारत 1995" में मानव संसाधन में शिक्षा को भी सन्निविष्ट करके उस पर विशेषज्ञ राय इस प्रकार प्रकट की गयी है—

"भारत के स्वाधीनता आंदोलन के लक्ष्यों में शिक्षा भी एक था और महात्मा गांधी ने अनिवेशवादी ताकतों के खिलाफ महान संघर्ष का नेतृत्व करते हुए भी शिक्षा की समुद्‌ग्राय पर आधारित प्रणाली को विकसित किया था।---------- 1947 में जब स्वतंत्रता मिली, तो जो शिक्षा प्रणाली देश को विरासत में मिली, वह जनसंख्या को देखते हुए काफी छोटी तो थी ही, साथ ही उसमें क्षेत्रीय और ढाचागत असंतुलन भी था। इन असंतुलनों और विसंगतियों की क्रामिक रूप में व्याख्या करते हुए लेखक ने निष्कर्षतः लिखा है, "---------- सबके लिए प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पांच प्रमुख क्षेत्रों की पहचान की जाये, ताकि समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा को बनाया जा सके तथा आर्थिक ध्रुवीकरण और उदारीकरण की नयी चुनौतियों का सामना किया जा सके।"

सर्वतोप्रथम प्राथमिक शिक्षा और इसमें "ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड" को प्राथमिकता देना और उसके सही परिणाम हस्तगत करने हेतु हम फिर हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं की ओर ही उन्मुख होते हैं। बिना इनके कैसे प्राप्त होंगे बढ़िया नतीजे ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड अभियान के। सभी बच्चों और विशेषकर लड़कियों को और कामकाजी बच्चों को इस शिक्षा से जोड़ने के लिए जनभाषाओं का सहारा लिया गया। भारत में आज प्रारम्भिक शिक्षा के परिणाम इस कदर बढ़े कि 6—11 वर्ष की आयु के बच्चों की संख्या 1993-94 के अंतर्गत 1082 लाख तक बहुंच गयी।
जोकि 1968-69 में 544 लाख थी। कहना न होगा कि प्राथमिक शिक्षा बुनियादी शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा जैसी क्रमिक रूप से बढ़ती संकल्पनाओं की ओर शिक्षा विशारदों का ध्यान इसलिए भी केन्द्रित होता चला गया कि समाज की एक विस्तृत जनसंख्या शिक्षित एवं प्रशिक्षित होती जाए। इस जन विस्तार के लिए जनभाषाओं से ही पहुँचा जा सकता था। नतीजों के तौर पर इन आयामों हेतु जो परियोजनाएं विर्निमित की गयी उनके बजट अनुमानों की राशियों को जब हम देखते हैं तो दांतों तले ऊंगली दबानी पड़ती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में पैठ बनाने के लिए केन्द्र सरकार ने नवोदय विद्यालयों की स्थापना की। इस बृहत परियोजना की मूल भावना को प्रतिपादित करते

हुए कहा गया, "नवोदय विद्यालय में दाखिला छठी कक्षा से होता है, जिसका आधार राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद् की प्रवेश परीक्षा होती है। प्रवेश परीक्षा मातृ भाषा में होती है। परीक्षा मुख्यतः लिखित प्रकृति की होती है। यह निरपेक्ष कोटि के आधार पर इस प्रकार से विकसित की गयी, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले प्रतिभावान बच्चे बिना किसी नुकसान के प्रतियोगी बन सकें।" और फिर केन्द्रीय विद्यालय जैसी बृहदाकार परियोजना ने शिक्षा जगत में बड़े ही महत्वपूर्ण ढंग से जगह बनायी है। इसके उद्देश्यों में से एक है "राष्ट्रीय एकता की भावना को मजबूत बनाना एवं बच्चों में भारतीय का भाव विकसित करना।" इस प्रकार के सात्विक उद्देश्य की पूर्ति भारतीय भाषाओं के जरिए ही सम्भव है। इस प्रगतिशील संस्थापना में इस समय 818 केन्द्रीय विद्यालय शामिल हैं, जिनमें लगभग 7 लाख छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। प्रौढ़ शिक्षा, साक्षरता दर, महिला समता के लिए शिक्षण, अनुचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए शिक्षा जैसे लोकोन्मुख अभियानों के संवर्धनशील परिणामों में भी हिन्दी व अन्य भारतीय भाषायें सन्निहित हैं।

केन्द्र सरकार के मंत्रालयों/विभागों में से कुछेक अति महत्वपूर्ण मंत्रालयों की उपलब्धियों को हमने जन भाषाओं के माध्यम से प्राप्त कर दिखाने का जो प्रयास किया है उसके पीछे यही मंशा निहित है कि इन उपलब्धियों एवं संवर्धनात्मक परिणाम तभी मिल पाये हैं जब हमने हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को अपनाया, नहीं तो यह स्थिति विपरीतगामी ही होती।

उपर्युक्त विषय के आंकड़े देते हुए इसलिए भी सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है कि कोई भी तकनीकी प्रविधि इस देश में निचले स्तर पर तभी जा पायेगी, जब उसे जनभाषा अर्थात् हिन्दी या अन्य किसी भारतीय भाषा के माध्यम से व्याख्यायित किया जाये। वह प्रौद्योगिकी या प्रविधि देश में तभी "कल्चर" का रूप अख्तियार करेगी, जब उसका प्रचार-प्रसार हिंदी में होगा अन्यथा कुछ लोगों तक सीमित-संकुचित रहने से चन्द दुकानों तक ही उसका अस्तित्व रहेगा। इस प्रक्रिया से उस प्रविधि में आभिजात्यपन की बू आना स्वाभाविक है। देश का अधिसंख्य समाज इन दुकानों तक सीमित प्रविधि के चलते दूर-दूर होता रहेगा और सरकार की असली जनोपयोगी मंशा सफल नहीं हो पायेगी। इसके साथ ही उस प्रविधि पर लगे जनता के पैसे से अभीष्ट परिणाम सामने नहीं आ पाएंगे। परिणामस्वरूप इस अपव्यय से उत्पादकता की गति धीमी पड़ती जायेगी।

सरकारी निगमों में भी जनभाषा की नितान्त अनिवार्यता सामने आती है क्योंकि इनमें उत्पादकता का पैमाना प्रत्यक्षतः जुड़ा है। यहीं पर उत्पादकता और हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं के रिश्ते और गहरे होते चले गये हैं। बैंकिंग, रेलवे और अब निगमित संगठन अर्थात् उपक्रमों के संरचनात्मक ढाँचे क्योंकि सीधे तौर पर उत्पादकता से जुड़े हैं, इसलिए इनकी उत्पादकता के कारकों में से एक भारतीय भाषाओं की अहम भूमिका है। कहना न होगा कि 'नेशनलाइजेशन' की प्रबंधकीय संरचना से जहां ये उत्पादकता के केन्द्र समाज के साथ पूरी तरह से जुड़े वहीं हिंदी एवं भारतीय भाषाओं की अहम भूमिका से इनके विकास एवं प्रगति की रफ्तार में वृद्धि होती चली गयी। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने अभी कुछ वर्ष पूर्व इस दिशा में एक श्लाघ्य प्रयास किया और हिंदी में एक पुस्तक "उत्पादकता की ओर" प्रकाशित की। इसमें देश के चार निगमित संगठनों पर उत्पादकता की दृष्टि से इस विषय के सुधी विद्वानों के स्थिति अध्ययनों पर विचार प्रकट किये गये हैं। 'इस हिंदी संस्करण का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है, क्योंकि इसके माध्यम से श्रमिक संघों और उसकी उपयोगिता को समझने में मदद मिलेगी।'

"उत्पादकता की ओर" शीर्षक पुस्तक में जो ग्राफ आदि उत्पादकता-वृद्धि को घोषित करते हुए दर्शाये गये हैं, उससे सिद्ध होता है कि श्रमिक (संघों) की मानसिक-स्थिति जो उसकी कार्य-संस्कृति को व्यक्त करती है, उसके माध्यम से समस्त सकारात्मक एवं स्वस्थ वातावरण को विनिर्मित करने में जन भाषा अपनी अहं भूमिका निभाती है। देश में उत्पादकता से जुड़े सभी कार्यकलापों एवं अध्ययन-विश्लेषण के लिए उत्तरदायी संस्थान "राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद" ने जो अनेक गोष्ठियां और कार्यशालाएं इस संदर्भ में आयोजित की हैं, उनमें कार्य-संस्कृति में सुधार के लिए कुछ नीति-नियामक निष्कर्ष प्रस्तुत किये गए हैं। संक्षिप्त रूप में कहें तो उत्पादकता और भाषा की अभिन्नता इस तथ्य से भी सिद्ध प्रतीत होती है कि उत्पादकता कभी भी एक-केन्द्रित प्रयास नहीं है, यह सर्वतोभावेन बहुकेन्द्रित उद्यम है, जिससे संगठन के सभी सदस्यों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार पर अत्यधिक बल दिया गया है। उत्पादकता से जुड़े विशेषज्ञों ने यह माना है कि "कार्य-प्रतिबद्धता और उत्पादकता में बढ़ोत्तरी तभी हो सकती है जब संगठन से लगाव की भावना हो और विभिन्न श्रेणी के कर्मचारियों के बीच कम-से-कम दूरी हो।" अब यह दूरी कम-से-कम कैसे संभव हो, आगे के निष्कर्ष भाषा के महत्व को प्रतिपादित करते प्रतीत होते हैं। इसी पुस्तक में यह आशय इस प्रकार प्रतिपादित है—'नीचे संगठन संबंधी ऐसे व्यवहार और तरीकों को दिया गया है,' जिनका कार्य-संस्कृति और प्रतिबद्धता पर असर पड़ा है:

"1. काम की हालात—कार्य प्रणालियां, 2. सुरक्षा तथा हिफाजत, 3. रुपये-पैसे में पुरस्कार, 4. मान्यता और सराहना, 5. शिकायतों को सुनना, 6. सुपरवाइजरों के संबंध, 7. सूचना की आपस में जानकारी, 8. प्रगति की संभावनाएं, 9. प्रशिक्षण और शिक्षण।" ये सभी पहलू श्रमिकों की जनभाषा के साथ अविभाज्य रूप से जुड़े हैं। कार्मिकों में उन्हीं की अपनी भाषा में ही उपर्युक्त पहलुओं का संयोजन-संपोषण ही उत्पादकता में कार्य-संस्कृति को बढ़ायेगा, यह निर्विवाद है। इसी विवेचित पुस्तक में आगे उत्पादकता के एक संवेदनशील संसाधन के रूप में "मानव संसाधन विकास" पर अत्यधिक तर्कसंगत विचार व्यक्त किये गये है। "दुनिया भर में अब यह मान लिया गया है कि संगठन-स्तर पर उत्पादकता बढ़ाने के लिए मानव सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है।"....उत्पादकता आंदोलन के लिए मानव संसाधन के महत्व पर और भी ज्यादा महत्व देने की जरूरत है————सभी लोगों को यह एहसास होना चाहिए कि उत्पादकता बढ़ाने से उन्हें क्या मिलेगा और उत्पादकता बढ़ाने के लिए वे क्या कर सकते हैं।" इस प्रकार उत्पादकता के सवंर्धन में लोगों की भागीदारी का बड़ा ही सीधा-सादा अभिप्राय है—लोगों की भाषा द्वारा उत्पादकता में अभिवृद्धि। स्वयं इस अनिवार्य तथ्य की संपुष्टि आगे चलकर यू होती है जब इस पुस्तक में चार संगठनों की उत्पादकता पर विवेचन करते हुए लिखा गया है, "....इसलिये वे कर्मचारियों की वैचारिक, प्रबंधकीय, व्यवहार-संबंधी और तकनीकी कुशलताओं को ऊंचा उठाकर उनकी गुणवत्ता पर ज्यादा जोर देते हैं। इसे प्रणालियों, कार्यविधियों और प्रौद्योगिकी से अधिक महत्व दिया जाता है।" उत्पादकता विशारदों ने

कबूल किया है कि प्रौद्योगिकी से ज्यादा श्रमिक की वैचारिक चेतना को समझना है, तभी उत्पादकता में संवर्धन संभव है। यह वैचारिक चेतना श्रमिक की अपनी भाषा की अभिव्यक्ति पर निर्भर है।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद द्वारा प्रथमतः प्रकाशित "उत्पादकता की ओर" में किये गये चारों संगठनों के उत्पादकता वृद्धि के सकारात्मक कारकों के अध्ययन-- विश्लेषण से व्यापक कार्य-संस्कृति के जो तथ्य समक्ष आये हैं, उनके संवर्धन में हिंदी एवं संबद्ध भारतीय भाषाओं की भूमिका अपना अहम स्थान रखती है।

इनमें भी हम एक सार्वजनिक उपक्रम "भेल" और एक पराइवेट कंपनी "टाटा आयरन एण्ड स्टील" कंपनी के उत्पादकता संबंधी स्थिति अध्ययनों का ही जायजा लेंगे। इसके जरिये भी यही निष्कर्ष समक्ष लाने के प्रयास किये जायेंगे कि इन दोनों संगठनों के भी कार्य-कलापों का विस्तार हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं पर पुरजोर तौर पर निर्भर है।

"भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड" एक ऐसा उद्यम है जो ऊर्जा उद्योग, यातायात, तेल तथा गैस और दूरसंचार के क्षेत्रों के लिए अनेक तरह के उत्पाद विनिर्मित करता है और सेवाएं प्रदान करता है। विश्व के 12 विनिर्माताओं में इसका दर्जा है। अपने नानाविध उद्देश्यों एवं व्यापारिक गतिविधियों में इसने उत्कृष्टता कैसे प्राप्त की। इस पर अवलोकन किया जाये। उत्पादकता की बढ़ती रूपरेखा को प्रबंधकों और श्रमिक संघों के संयुक्त प्रयास से प्राप्त किया गया है। संयुक्त समिति के माध्यम से यूनियन के सहयोग को प्राप्त करने का काम सरल कर दिया गया है। इस प्रक्रिया में आड़े आने वाली समस्याओं पर जरा एक नजर डालिए:—

1. कर्मचारियों और प्रबंधकों के बीच संप्रेषण की कमी, 2. मानवीय सरोकार और मानवता में कमी, 3. उपकरणों की नाकामयाबी की वजह से काम की जगह पर आने वाली समस्याएं, 4. गलत कार्मिक नीतियों और कार्मिक विभाग की निष्क्रिय भूमिका । इन आड़े आने वाली समस्याओं पर गौर करने पर इनमें पारस्परिक संवाद और अन्योन्य—संप्रेषण की प्रक्रिया निहित दिखायी पड़ती है और इसकी पूर्ति प्रमुखतः हिंदी और जनभाषा के माध्यम से सर्वतोभावेन पूरी होती दिखती है। "भेल" में उत्पादकता में संवृद्धि के लिए जो जुगत और प्रक्रियायें अपनायी गयी हैं उनमें कर्मचारियों के सार्थक विचारों का सहयोग और भागीदारी की अनिवार्यता समक्ष आयी है।

उत्पादकता की वृद्धि हेतु "कर्मचारियों को शामिल करना" श्रमिकों की भागीदारी को स्पष्ट करते हैं। इसके लिए गुणवत्ता केन्द्र तथा सुझाव योजना ये दो तंत्र कार्यान्वित किये गये हैं, दोनों तंत्रों का बारीकी से अध्ययन करने पर एक व्यापक वर्ग में उत्पादकता के सूत्रों को खोजने के प्रयास दिखते हैं। सुझाव योजना को बढ़ावा देना फिर एक बड़े वर्ग की ओर ध्यान आकृष्ट करता है और इसे बड़े वर्ग की भाषा के द्वारा ही उत्पादकता में अभिवृद्धि होगी, यही अभिप्रेत है।

अन्त में देश की अग्रणी प्राइवेट कंपनियों में से एक टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी में उत्पादकता के ऊंचे उठते आंकड़े एक-स्वर में हिंदी एवं भारतीय भाषाओं की भागीदारी को निनादित कर रहे हैं। इस कंपनी की खुली फिलासफी इसके उद्देश्यों को यू प्रकट कर रही है। इस्पात कारखाने की जगह जब अंतिम रूप से तय की गयी उसके पांच वर्ष पहिले 1902 में जमशेद जी ने विदेश से अपने पुत्र को लिखा था कि उनकी कल्पना का इस्पात नगर किस तरह का दिखायी देना चाहिए। इसकी गलियां चौड़ी होनी चाहिए, जिन पर छायादार वृक्ष लगे हैं। जो जल्दी उगने वाली किस्म के हों लॉन्स और बागों के लिए भी काफी जगह हो। फुटबाल, हॉकी तथा पार्कों के लिए भी काफी बड़ा क्षेत्र सुरक्षित रखना। हिन्दू मंदिरों, मुसलमानों की मस्जिदों और ईसाई गिरजाघरों के लिए क्षेत्र भी निश्चित कर लेने चाहिए।

दोरावजी टाटा ने अपने पिता के स्वप्नों को 1917 में साकार करते हुए कहा, "कामगार वर्गों का कल्याण निश्चय ही हरेक सेवायोजक की चिंता का सबसे पहिले विषय होना चाहिए।... संतुष्ट श्रमिक जिनके लिए अच्छे आवास, अच्छे भोजन, अच्छे पोषण और आमतौर से अच्छी देखभाल की व्यवस्था है, वे केवल सेवायोजक के लिए ही लाभप्रद नहीं है, बल्कि ये देश में उद्योग और श्रम के स्तर को उठाने में भी सहायक होते हैं। आज के श्रमिक की अच्छी देखभाल करने से भविष्य के लिए स्वस्थ और समझदार श्रम शक्ति उपलब्ध हो सकेगी।" सभी उत्तराधिकारियों ने आग्रह पूर्वक इसी फिलासफी का अनुसरण किया है। जुलाई, 1942 में श्री जे० आर० डी० टाटा ने एक मैमोरेंडम प्रसारित किया, जिसमें कहा गया है: "औद्योगिक प्रबंध के तीन मुख्य सरोकार हैं—मशीन, सामग्री और मानव, उनमें अंतिम निश्चय ही सबसे जटिल और मुश्किल है। — लेकिन 30,000 ऐसे मानवों को काम पर लगाते समय, जिनका अपना दिलो-दिमाग है, हम यह सोच लेते मालूम पड़ते हैं कि वे स्वयं अपनी सार-सम्हाल कर लेंगे और उनसे जुड़ी मानवीय समस्याओं से निबटने के लिए अलग से संगठन की जरूरत नहीं है।"

इस संपूर्ण मानव-शक्ति की पहिचान ऐसे तर्कसंगत वैचारिक वातावरण की बिना पर और फिर मात्र इसी आधार पर अपने कारखाने की उत्पादकता का अवलंब खड़ा करना—यह एक दूरदर्शी लगनशील, समर्पित एवं यथार्थवादी व्यक्ति की सोच हो सकती है। उत्पादकता का मूल मंत्र है मानव शक्ति और उस मानव शक्ति के विकास हेतु उसी दिशा में पुरजोर प्रयास में उन्हीं की भाषा की भागीदारी छिपी है। कैसे—इसकी व्याख्या पर इस प्रकार अवलोकन किया जा सकता है। टिस्को में "मिलकर काम करने" की संस्कृति के लिये कुछ संयुक्त परिषदों का गठन हुआ है। पारस्परिक समझौते में उत्पादकता के संवर्धन हेतु निश्चित किए कुछ उद्देश्यों में एक प्रमुख उद्देश्य यह भी था—आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा को संतुष्ट करना। पारस्परिक संप्रेषणीयता को और इस प्रकार समझा जा सकता है। सर्वसम्मत सिफारिशों को अमूमन स्वीकार करते हुए अस्वीकृत सिफारिशों की वजह विस्तारपूर्वक बता दी जाती है, जिससे परिपदें इन्हें न मानने के कारणों को समझ सकें। यह दतरफा संप्रेषणीयता हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के माध्यम से यथोचित तथा त्वरित रूप में उपलब्ध की जा सकती है और यही अभिप्रेत भी है। इस प्रकार के विचारों के आदान-प्रदान में चेयरमैन, बाइस चेयरमैन, और यूनियन के पदाधिकारी संयुक्त विभागीय परिषदों के पदाधिकारियों के साथ विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। विचारों की आपसी संप्रेषणीयत सुकरता एवं सहजता अपनी भाषाओं से ही संभव हो पाती है। इस कंपनी की उन्मुक्त वैचारिक प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए श्रमिकों की अभिन्नता और समर्पण की भावना द्रष्टव्य हैं। वे

शेषांश पृष्ठ 34 पर

अनुवाद में गलतियां

— आर०के० मान

राजभाषा अधिनियम की धारा 3(3) लागू हुए 30 साल गुजर गए हैं। तभी से सरकारी कार्यालयों में अनुवाद कार्य चलता आ रहा है, लेकिन इतना लम्बा अरसा बीत जाने पर भी राजभाषा नीति का उस हद तक कार्यान्वयन नहीं हो पाया है जिस हद तक हो जाना चाहिए था। कार्यालयों में हिन्दी सामग्री उपलब्ध है, फार्म आदि प्रायः द्विभाषिक रूप में हैं, परिपत्र आदि सामान्यतः द्विभाषिक रूप में जारी किए जा रहे हैं, प्रशिक्षण केन्द्र कुछ अध्ययन सामग्री द्विभाषिक रूप में/हिन्दी में भी उपलब्ध करवा रहे हैं, लेकिन फिर भी आम स्टाफ हिन्दी के नजदीक नहीं आ रहा हैं और अंग्रेजी का दामन पकड़े रहने में ही सुविधा और सुरक्षा महसूस करता है। उपलब्ध हिन्दी सामग्री का वांछित सदुपयोग नहीं हो रहा है। जहां कहीं द्विभाषिक रूप उपलब्ध है, प्रायः अंग्रेजी पाठ ही पढ़ा जाता है। हिन्दी पर पिछले 30 साल से निरंतर यही आरोप लगते आ रहे हैं कि हिन्दी बहुत कठिन है, क्लिष्ट है, समझ नहीं आती है, हिन्दी में काम करना आसान नहीं है, आदि। आखिर ऐसा क्यों है? सरकारी तौर पर भी बार-बार यही कहा जा रहा है कि सरल हिन्दी का प्रयोग किया जाए, कठिन हिन्दी का प्रयोग न किया जाए। इससे एक यह भ्रांति भी पैदा हो गई है कि हिन्दी के दो रूप हैं — सरल और कठिन। लेकिन अंग्रेजी के लिए किसी ने यह नहीं कहा कि सरल अंग्रेजी का प्रयोग किया जाए, कठिन अंग्रेजी का प्रयोग न किया जाए और न ही अंग्रेजी पर क्लिष्टता, जटिलता, अस्पष्टता आदि जैसे आरोप लगाए गए। हिन्दी जितनी वैज्ञानिक भाषा है अंग्रेजी उतनी ही अवैज्ञानिक भाषा है, लेकिन फिर भी अंग्रेजी क्यों आसान लगती है और हिन्दी कठिन क्यों? आखिर हिन्दी में ऐसी क्या बात है कि 30 साल के प्रयास के बावजूद आम स्टाफ आज भी हिन्दी स्वीकार नहीं कर पा रहा है। यह सही है कि हर स्टाफ सदस्य अंग्रेजी में पारंगत नहीं है, फिर भी अंग्रेजी समझने में और अंग्रेजी में काम करने में उतनी कठिनाई महसूस नहीं होती है जितनी हिन्दी में। विशेष बात तो यह है कि यह कठिनाई गैर हिन्दी भाषियों को ही नहीं है, वरन् उन लोगों को भी है जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, जो हिन्दी माध्यम से पढ़े हैं। सरकारी कार्यालयों में हिन्दी प्रयोग अधिकांशतः आज भी एक हौवा बना हुआ है। आम आदमी हिन्दी प्रयोग से कतराता है। कार्यालयों में उपलब्ध हिन्दी सामग्री पढ़ने में स्टाफ की रूचि नहीं है। तब क्या हिन्दी वास्तव में ही कठिन है और क्या इतनी अधिक कठिन है कि खुद हिन्दी भाषी ही न समझ पाएं? जब हिन्दी भाषी ही नहीं समझ पा रहे हैं, तब गैर हिन्दी भाषी कैसे समझ पाएंगे? निःसन्देह एक अत्यंत गम्भीर समस्या है। यही स्थिति रही तो सरकारी कार्यालयों में हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान लेने में आखिर कितना समय लग जाएगा और क्या कभी ऐसा सम्भव हो पाएगा? आज कार्यालयों में जो हिन्दी उपलब्ध है उसे देखकर तो हिन्दी में उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का भी सिर चकरा जाता है। शुक्र है कि अंग्रेजी पाठ साथ होता है, अन्यथा बहुत बड़ी अव्यवस्था पैदा हो जाती और हिन्दी पाठ के कारण बहुत कुछ ऐसा हो जाता जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। तब क्या अंग्रेजी का सहारा लेना हमेशा जरूरी बना रहेगा? क्या केवल हिन्दी के आधार पर सही और सुरक्षित ढंग से काम कर पाना सम्भव नहीं हो पाएगा? निश्चित रूप से एक अति चिंताजनक स्थिति है।

प्रश्न है कि जब हिन्दी इतनी कठिन है, उसका प्रयोग करने में, उसके आधार पर काम करने में इतना खतरा है और हिन्दी समझने के लिए अंग्रेजी का सहारा लेना जरूरी है, तो फिर हिन्दी किस लिए अपनाई जाए? वास्तविकता यह है कि हिन्दी सरल है न कठिन, हिन्दी तो बस एक भाषा है जो अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक है, अपने में समर्थ है। आज जितने भी आरोप हिन्दी पर लगाए जा रहे हैं वे हिन्दी के कारण नहीं, वरन् गलत अनुवाद के कारण। आज सरकारी कार्यालयों में जो हिन्दी देखने को मिलती है, वह स्वाभाविक हिन्दी नहीं है, अनुवाद की भाषा है और अनुवाद में गलतियों के कारण ही हिन्दी समझ नहीं आ पाती है। यह कृत्रिम भाषा है। कृत्रिमता भाषा का सबसे बड़ा दोष है और स्वाभाविकता भाषा का सबसे बड़ा गुण है। कार्यालयों में जो अनुवाद किया जा रहा है, वह अंग्रेजी से किया जा रहा है। अंग्रेजी और हिन्दी की प्रकृति बिलकुल भिन्न है। इस बात का ध्यान न रखकर अनुवाद करते समय हिन्दी वाक्य अंग्रेजी की नकल पर बनाए जा रहे हैं जिससे भाषा में कृत्रिमता आ रही है, अस्पष्टता आ रही है और परिणामतः सुबोधगम्य और सुग्राह्य नहीं है। इसके अलावा गलत शब्दों का प्रयोग, अधूरा अनुवाद आदि और भी खामियां रहती हैं अनुवाद में जिनके कारण हिन्दी क्लिष्ट लगती है और समझ नहीं आती है। इसके लिए हिन्दी नहीं, अनुवाद करने वाला व्यक्ति जिम्मेदार है। आज कार्यालयों में उपलब्ध हिन्दी आम तौर पर हिन्दी अधिकारियों की भाषा है। उससे कुछ अर्थ हिन्दी अधिकारी ही निकाल सकते हैं। वह अन्य स्टाफ के काम की चीज नहीं है। कभी-कभी तो अनुवाद इतना अधिक गलत होता है कि दूसरे हिन्दी अधिकारी भी अर्थ का अनुमान तक नहीं लगा पाते हैं। क्या सार्थकता है ऐसी हिन्दी सामग्री की? वास्तविकता तो यह है कि यदि कुछ समय बाद अनुवाद करने वाले हिन्दी अधिकारी से ही उसका अर्थ पूछा जाए तो सम्भवतः वह भी नहीं बतला पाएगा। यही है हमारी 30 साल की उपलब्धि। ऐसी स्थिति में

मंजिल तक कब पहुंच पाएंगे। कभी मंजिल तक पहुंच भी पाएंगे, वास्तव में यह भी संदिग्ध है। आम व्यक्ति, चाहे स्टाफ है या बाहरी व्यक्ति, कार्यालयों की हिन्दी से दूर ही रहना चाहता है क्योंकि कार्यालयों की हिन्दी उसकी समझ से बाहर है। यह दोष भाषा का नहीं है, बल्कि इसके लिए गलत अनुवाद जिम्मेदार है। आखिर किस कारण यह अनुवाद की भाषा समझ नहीं आती है अर्थात्, अनुवाद में ऐसी कौन-सी गलतियां हो जाती हैं जिनके कारण राजभाषा के नाम पर आज हिन्दी की यह दुर्दशा हो रही है? अनुवाद में सामान्यतः निम्नलिखित त्रुटियां देखने को मिलती हैं जिनके कारण सरकारी कार्यालयों के कामकाज में हिन्दी लोकप्रिय नहीं हो पा रही है।

1. शब्दशः अनुवाद,
2. अप्रासंगिक एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग,
3. अधूरा अनुवाद,
4. ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनका अर्थ और प्रयोग अनुवादक को भी मालूम नहीं होता है अर्थातः तुक्काबाजी
5. अंग्रेजी वाक्य का अर्थ न समझ पाना,
6. बड़े अंग्रेजी वाक्य को इस प्रकार तोड़ दिया जाता है कि एक दूसरे से संबंधित शब्द अलग-अलग हो जाते हैं, परिणामस्वरूप अर्थ बदल जाता है,
7. अस्वाभाविक ढंग से गढ़े गए शब्द,
8. गलत विभक्ति का प्रयोग कर दिया जाता है जिससे भाव बदल जाता है।
9. एक ही प्रसंग में शब्द विशेष का हिन्दी पर्याय बार-बार बदल दिया जाता है, जिससे पाठक अर्थ नहीं समझ पाता है,
10. हिन्दी वाक्य-रचना अंग्रेजी की नकल पर होती है जिससे अस्पष्टता आ जाती है, वाक्य जटिल बन जाते हैं, भाषा अस्वाभाविक बन जाती है;
11. अंग्रेजी शब्दों के गलत हिन्दी पर्याय बना दिए जाते हैं,

आखिर अनुवाद की क्वालिटी में सुधार क्यों नहीं हो रहा है? हिन्दी अधिकारी अपनी दक्षता क्यों नहीं सुधार रहे हैं? सर्वविदित है कि कार्यपालक प्रायः हिन्दी अनुवाद नहीं पढ़ते हैं। इसलिए उन्हें सामान्यतः हिन्दी अधिकारियों की कारगुजारी की जानकारी नहीं है। जब कभी उन्हें जानकारी करवाई जाती है, वे उपेक्षा कर देते हैं यह सोचकर कि हिन्दी तो महज औपचारिकता है, काम तो चल ही रहा है अंग्रेजी से। आम स्टाफ हिन्दी अनुवाद पढ़ने का प्रयास तो करता है, लेकिन जब उसे यह अनुवाद समझ नहीं आता, तो निराश होकर वह भी हिन्दी से दूर हट जाता है और विवश होकर अंग्रेजी का ही सहारा लेता है। लेकिन गलत अनुवाद के बारे में आवाज नहीं उठाई जाती है। ये बातें हिन्दी अधिकारियों के लिए वरदान सिद्ध हो रही हैं और गलत अनुवाद का इनकी सेहत पर कोई असर नहीं पड़ रहा है। इसलिए इन्हें इस बात की कोई परवाह नहीं है कि विभाग, विषय, पाठक और भाषा के साथ न्याय हो रहा है या नहीं, इनकी नौकरी चल ही रही है, जैसे-तैसे पदोन्नति भी मिल जाती है, फिर दक्षता सुधार लेने की क्या जरूरत है। गलत अनुवाद के कुछ नमूने नीचे दिए गए हैं। इनका काम प्रायः फर्जी आंकड़ों के आधार पर ही चल रहा है। इस प्रकार भारत सरकार की राजभाषा नीति का कार्यान्वयन एक तमाशा बनकर रह गया है।

यह निश्चित है कि जब तक अनुवाद की क्वालिटी में सुधार नहीं होगा, अंग्रेजी की अनिवार्यता बनी रहेगी और जब तक अंग्रेजी पर निर्भरता बनी रहेगी, राजभाषा को महत्व नहीं मिल पाएगा।

गलत अनुवाद की झलक

आज भी इन्हें Under financing के लिए "भूमिगत वित्त पोषण", grounding of units के लिए "इकाइयों को बंद करना", satellite offices of the insured के लिए "बीमाकृत के उपग्रह कार्यालय", renewal of loans के लिए "ऋण वापस मांगना", opening balance के लिए "इतिशेष", refundable के लिए "पुनर्देय", power for clearance of proposals के लिए "प्रस्तावों के निकासी के लिए अधिकार", to register charge with the Registrar of companices के लिए "कंपनियों के रजिस्ट्रार के साथ आरोप पंजीकृत करना" आदि लिखने में कोई संकोच नहीं है। साथ ही ब्याज का उत्क्रमण, अभिभापक, जागतिक व्यापार केन्द्र, विरुद्धार्थी, पूर्वता प्राप्त लेनदेन जैसे प्रयोग भी बेधड़क होकर करते हैं।

आखिर अनुवाद में गलतियां क्यों होती हैं? कुछ मुख्य कारण निम्नवत् हैं

1. स्रोत भाषा का अपर्याप्त ज्ञान
2. लक्ष्य भाषा का अपर्याप्त ज्ञान
3. विषय का अपर्याप्त ज्ञान
4. लापरवाही
5. कई बार काम का बहुत अधिक दबाव रहता है, परिणामस्वरूप सोचने का ही समय नहीं मिल पाता है।

आज सरकारी कार्यालयों में राजभाषा के नाम पर जो गलत अनुवाद देखने को मिलता है, उसके संदर्भ में हिन्दी अधिकारी की भी कुछ विवशता है अर्थात्-

1. उसे विषय की जानकारी नहीं करवाई जाती है,
2. अच्छे शब्दकोशों का अभाव है,
3. स्टाफ का पूर्णतः हिन्दी अधिकारी पर आश्रित हो जाना, जिससे हिन्दी अधिकारी पर काम का दबाव बढ़ता रहता है और वह कार्य को पर्याप्त समय नहीं दे पाता है, परिणामस्वरूप अनुवाद में क्वालिटी नहीं आ पाती है।
4. हिन्दी अधिकारी से जरूरत से ज्यादा अपेक्षा हिन्दी अधिकारी के सामर्थ्य की भी एक सीमा है। अंग्रेजी में परिपत्र तैयार करने में स्टाफ कई दिन लगा देता है, लेकिन हिन्दी अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह एक हाथ से अंग्रेजी में का परिपत्र पकड़े और तुरंत दूसरे हाथ में उसका हिन्दी पाठ दे दे। हिन्दी में टाइप करवाना भी हिन्दी अधिकारी की जिम्मेदारी है जबकि हिन्दी टाइपिस्ट को दूसरे काम पर लगा देना कार्मिक विभाग का अधिकार है।
5. वातावरण बहुत अनुकूल नहीं है। हिन्दी अधिकारी के काम को अपेक्षित महत्व नहीं दिया जाता है। नैतिक समर्थन का अभाव है। अधिकांशतः बस हिन्दी प्रयोग की औपचारिकता पूरी करवाई जा रही है।

6. कार्य रुचिकर नहीं है। इस पर भी उसके काम की कद्र नहीं की जाती है और उसका काम एक फालतू का काम समझा जाता है। परिणामस्वरूप उसे कार्य से संतुष्टि नहीं है।

7. विषय के बारे में हिंदी में अच्छी पुस्तकों की कमी है।

समाधान — प्रत्येक समस्या का समाधान संभव है। अनुवाद की समस्या या राजभाषा प्रयोग की समस्या निःसंदेह अत्यंत गम्भीर समस्या है जिसका समुचित समाधान किए बगैर राजभाषा नीति के सही अर्थों में कार्यान्वयन का कार्य अधूरा रह सकता है। अतः राजभाषा प्रयोग की समस्या या अनुवाद की समस्या का समाधान किया जाना निहायत जरूरी है। समाधान के लिए निम्नलिखित उपाय उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं—

1. हिन्दी अधिकारियों की भर्ती/पदोन्नति में मेरिट की बलि न चढ़ने दी जाए क्योंकि

   'अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजार्हाच व्यतिक्रमः।

   त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं, मरणं, भयं ।।

2. हिन्दी अधिकारियों को विषय की पर्याप्त जानकारी करवाई जाए।

3. हिन्दी अधिकारी के काम की कद्र हो।

4. पदोन्नति के पर्याप्त अवसर हों।

5. कार्यपालक परिपत्रों/फार्मों आदि का हिन्दी पाठ अवश्य पढ़ें ताकि हिन्दी अधिकारी अपना कार्य गम्भीरतापूर्वक करें।

6. उच्च कोटि के शब्दकोश तैयार करवाए जाएं। हिन्दी अधिकारी और विषय के विशेषज्ञ साथ बैठकर हिन्दी शब्दकोश तैयार करेंगे तो क्वालिटी निश्चित रूप से बेहतर होगी।

7. विषय से संबंधित शब्दों का मानकीकरण किया जाए ताकि अनेकरूंपता की सम्भावना न रहे।

8. स्टाफ को भी अपना हिन्दी-ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रेरित किया जाए और हिन्दी अधिकारी पर निर्भरता कम की जाए। जब हिन्दी समझ न आए तो दोष हिन्दी का और जब अंग्रेजी समझ न आए तो कमजोरी अपने अंदर नजर आने लगती है।

9. हिन्दी विभाग को आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाएं।

10. गलत अनुवाद के लिए राजभाषा नीति के कार्यान्वयन से जुड़े प्रत्येक अधिकारी/समिति की जवाबदेही हो।

11. संसदीय राजभाषा समिति निरीक्षण करने का व्यावहारिक तरीका अपनाएं। किसी कार्यालय का निरीक्षण करते समय वहां उपलब्ध हिन्दी सामग्री पढ़कर देखी जाए कि वह समझ में आने लायक है या नहीं।

12. कुछ हिन्दी अधिकारी राजभाषा नीति के कार्यान्वयन से संबंध विच्छेद करके अन्य कार्य कर रहे हैं और वहां खूब फल-फूल भी रहे हैं, लेकिन पदोन्नति हिन्दी के द्वारा ही ले रहे हैं। इससे निष्ठापूर्वक हिन्दी-कार्य करने वाले हिन्दी अधिकारियों का मनोबल गिरना स्वाभाविक है। यह अवसरवादिता रोकी जाए।

13. विषय और भाषा के विशेषज्ञों की समिति बनाई जाए जो संबंधित विभागों में जाकर यह देखे कि जो हिन्दी सामग्री तैयार की जा रही है उसकी कोई सार्थकता भी है या नहीं।

14. हिन्दी अधिकारियों का मुख्य कार्यालय से फील्ड में और फील्ड से मुख्य कार्यालय में स्थानान्तरण किया जाना बहुत जरूरी है ताकि उन्हें राजभाषा प्रयोग संबंधी सभी पहलुओं की समुचित जानकारी हो सके। ऐसा करने पर निश्चित रूप से बेहतर काम हो सकेगा। बहुत-सी अन्य बुराइयों का भी अंत हो जाएगा।

15. कहते हैं कि "जितना गुड़ डालोगे, उतना ही मीठा होगा।" हिन्दी अधिकारी से अपेक्षाएं तो बहुत ज्यादा हैं लेकिन हिन्दी अधिकारी को दिया क्या जाता है? वह निरीक्षण के लिए भी बाहर जाएगा, हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन भी करेगा, अनुवाद भी करेगा, सामग्री तैयार करेगा, रिपोर्टों की समीक्षा भी करेगा। सुबह से शाम तक कोल्हू के बैल की तरह जुता रहता है (यह बात निष्ठापूर्वक कार्य करने वालों के बारे में है, उनके बारे में नहीं जिनके लिए 'क' है 'कमाओं, 'ख' है 'खाओ' और 'ग' है 'गुमराह करों)। उसके पास पढ़ने लिखने का ही समय नहीं है। यदि वह खुद अपना ज्ञान नहीं बढ़ा जाएगा, तो दूसरों का ज्ञान कैसे बढ़ाएगा? अब स्थिति दूसरी ओर की बैंक के प्रशिक्षण केंद्रों में संकाय-सदस्यों के पास समय ही समय होता है। जब प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं होता है तो पूर्णतः निठल्ले और जब प्रशिक्षण कार्यक्रम होता है तो अतिथि वक्ता बुला लिए जाते हैं व्याख्यान देने के लिए। केन्द्र में अपनी सुविधा से आते हैं, बाहर जाना हो तो कोई रोक-टोक नहीं, मर्जी हुई चल दिए। मनमर्जी से पुस्तक खरीद रहे हैं, है कोई पूछने वाला? इसके बावजूद उन्हें विशेष वेतन दिया जा रहा है। क्वालिटी के बारे में इनकी कोई जवाबदेही नहीं है। क्या हिन्दी अधिकारी यह सब नहीं देख रहे हैं? हिन्दी अधिकारी भी प्रशिक्षण देता है, उसका काम संकाय सदस्य के काम से कई गुणा अधिक है और कहीं अधिक कठिन है। फिर भी उसे कोई विशेष सुविधा क्यों नहीं? उसके साथ पक्षपात क्यों? कहां है उसे काम करने की स्वतंत्रता, कहां हैं उसके पास मूलभूत सुविधाएं, कहां हैं उसके पास पर्याप्त समय, किसका समर्थन मिल पाता है उसे? ऐसी निराशाजनक स्थिति में तो स्वाभाविक है कि परिणाम भी निराशाजनक ही होगा। इस बारे में तुरंत गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

राजभाषा को सम्मान तभी मिल पाएगा जब हिन्दी अधिकारी को सम्मान मिलेगा, उसके काम में क्वालिटी तभी आ पाएगी जब उसकी सेवा शर्तों में क्वालिटी होगी। हिन्दी अधिकारी मशीन नहीं है कि जरूरत हुई तो उसका प्रयोग कर लिया, नहीं तो उठा कर रख दिया कोने में। वह भी मानव है, उसकी भी भावनाएं हैं, उसका भी आत्मसम्मान है। जब तक हिन्दी अधिकारियों की स्थिति दयनीय बनी रहेगी, तब तक राजभाषा की स्थिति का भी दयनीय बना रहना स्वाभाविक है। हिन्दी अधिकारियों की उपेक्षा करके राजभाषा को लोकप्रिय बना पाना असम्भव प्रतीत होता है।

सामाजिक परिवर्तन और अनुवाद

—आर॰पी॰ सिंह

विश्व परिदृश्य में आज अनुवाद एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक विधा के रूप में स्थापित होने के साथ-साथ विश्व संस्कृति और सभ्यता का भी पर्याय बन चुका है। परिणामस्वरूप अनुवाद अब न केवल भाषा-विज्ञानियों, व्यावसायिकों, अनुवादकों और भाषा अध्यापकों के अध्ययन और शोध का विषय है वरन् आधुनिक प्रशासकों तथा कूटनीतिज्ञों द्वारा भी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के परिप्रेक्ष्य में अनुवाद की भूमिका का गहन अध्ययन आरंभ हो चुका है। विश्व के कुटुम्ब के समान सीमित होने के फलस्वरूप सांस्कृतिक आदान-प्रदान से सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अत्याधिक तेजी आई है। समाज में सतत् परिवर्तन की यह प्रक्रिया कुछ बाह्य तथा आतंरिक कारणों के आधार पर कभी धीमी तथा कभी तीव्र हो जाती है। सामाजिक परिवर्तन के ये प्रमुख कारक हैं—सांस्कृतिक आदान-प्रदान, आर्थिक विकास तथा राजनीतिक परिवर्तन आदि। इन कारकों ने आदिकाल से ही मानव समाज को प्रभावित किया है। समाज को सामूहिक रूप से प्रभावित करने से पूर्व ये कारक अनिवार्यतः समाज की इकाई अर्थात् व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति और साहित्य का संबंध बहुत आत्मीय है। जहां एक ओर साहित्य व्यक्ति के सुख-दुःख, क्रियाकलापों तथा अभिव्यक्ति का दर्पण है, वहीं दूसरी ओर यह समाज को भी प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति की अभिव्यक्ति साहित्य के रूप में समाज तक पहुंच कर उसे उद्वेलित करती है। साहित्य के द्वारा ही ज्ञान-विज्ञान सामान्य जन तक पहुंचता है। ज्ञान-विज्ञान जैसे ही लोकभाषा में उपलब्ध होता है, जन-सामान्य जागरूक होकर सांस्कृतिक तथा वैचारिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया का अंग बन जाता है। यही सांस्कृतिक तथा वैचारिक आदान-प्रदान अंततः सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक बन जाता है। अतः विभिन्न श्रोतों से ज्ञान-विज्ञान को जन-सामान्य तक पहुंचाने में अनुवाद की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इस दृष्टि से इसकी भूमिका के अध्ययन की अत्यधिक जरूरत है।

साहित्य समाज सापेक्ष होता है और साहित्य और अनुवाद का संबंध भी परंपरागत है। सभ्यता के आरंभ से ही मानव ने अनुवाद का सहारा लिया है। यदि भाषा के विकास से पूर्व अनुवाद विचारों के मूक आदान-प्रदान के रूप में मौजूद रहा तो कालांतर में भाषिक अनुवाद के रूप में स्थापित हुआ। इस प्रकार मानव आदिकाल से ही अनुवाद का सहारा लेकर ज्ञान-विज्ञान को देश-काल की सीमा से निकालकर सार्वभौमिकता प्रदान करता रहा है। प्राचीन वैदिक-संस्कृत साहित्य तथा ग्रीक साहित्य की टीकाएं इसका प्रमाण हैं। विश्व का प्राचीनतम् प्राप्त अनुवाद दूसरी शताब्दी ई॰ पूर्व का है, जो रोजेटा प्रस्तर पर है। इसमें हीरो ग्लाइफिक तथा देमॉतिक लिपियों में मिश्री इतिहास और संस्कृति संबंधी सामग्री तथा उसका यूनानी भाषा में अनुवाद है (डॉ भोलानाथ तिवारीः अनुवाद-विज्ञान) इन प्राचीनतम् भाषाओं/संस्कृतियों का साहित्य एवं दर्शन संपूर्ण विश्व को अनुवाद के ही माध्यम से प्राप्त हुआ। अनुवाद ने विभिन्न संस्कृतियों के मध्य आदान-प्रदान के क्रम को सतत् एवं जीवंत बनाए रखा है। वास्तव में 'अनुवाद ही वह माध्यम है जो व्यक्ति को पर-राष्ट्रों की सभ्यताओं, संस्कृति और रहन-सहन से परिचय कराता है (डॉ॰ आलोक कुमार रस्तोगी, 1984, पृ॰ 17)' और संप्रेषण तथा संपर्क का अत्यंत कारगर माध्यम है। आज अनुवाद के माध्यम से विश्व के किसी भी कोने में घटित घटना अथवा नवीनतम अनुसंधान/अन्वेषण की सूचना तत्काल सार्वजनीन हो जाती है।

मध्यकाल तक प्रायः संपूर्ण यूरोप पर पोप के कैथोलिक चर्च का धार्मिक आधिपत्य था और बाइबिल का अनुवाद वर्जित था। परंतु ब्रिटिश शासकों द्वारा रोम के चर्च से संबंध विच्छेद करते ही मानो सामाजिक परिवर्तन के नये दौर का सूत्रपात हुआ। जर्मनी और ब्रिटेन में बाइबिल के अनुवाद के प्रयास शुरू हुए तथा ग्रीक साहित्य की प्राचीन पांडुलिपियों का भी अनुवाद किया गया। इन ग्रंथों के अनुवादकों ने सामाजिक परिवर्तन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने बाइबिल को जन-सामान्य की भाषा में उपलब्ध कराकर सभी को उसके अध्ययन का अवसर प्रदान किया। इसी के परिणामस्वरूप इंग्लैंड में 'चर्च आफ इंग्लैंड' की स्थापना हुई तथा प्रोटेस्टेंट मत संपूर्ण विश्व में, कैथोलिकों के भारी विरोध के बावजूद, फैलने में सफल रहा। इरैसमस और मार्टिन लूथर आदि के प्रयासों ने जर्मनी को पोप तथा कैथोलिक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाई। इन घटनाक्रमों से प्रेरित होकर ईसाई मतानुयाई बाइबिल के अनुवाद विभिन्न भाषाओं में प्रस्तुत करने में जुट गए। परिणामस्वरूप, बाइबिल आज विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में अनूदित पुस्तक है। बाइबिल के अनुवादों के कारण सोलहवीं-सत्रहवीं शती तक ईसाई धर्म विश्व के अधिकांश भू-भाग पर फैलने में सफल रहा और विश्व के विभिन्न समाजों और संस्कृतियों के विघटन का भी कारण बना।

भारतीय भाषाओं से विदेशी अनुवादों की श्रृंखला में सबसे पहले दूसरी शती में संस्कृत से चीनी अनुवादों का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार छठी शताब्दी में संस्कृत के पंचतंत्र तथा बोधिसत्व का फारसी में अनुवाद हुआ। भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के बाद प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के महत्व को स्वीकार करते हुए सन् 1774 ई॰ में सर विलियम जोन्स ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना करके प्राचीन पौर्वात्य धार्मिक, दार्शनिक तथा साहित्यिक कृतियों के रूपान्तर का मार्ग प्रशस्त किया। इस सोसाइटी ने प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान की खोज, अनुवाद तथा प्रकाशन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसी के तहत सन् 1798 ई॰ में सर मॉनियर विलियम्स ने कालीदास की सुप्रसिद्ध कृति 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का

अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया। भारतीय धर्म एवं दर्शन से प्रभावित होकर पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारतीय ग्रंथों का स्व-भाषाओं में अनुवाद आरंभ किया। मैक्समूलर, शॉपन हावर, श्लेगल, पिशेल आदि विद्वानों ने संस्कृत से जर्मन में अनुवाद किए और संस्कृत वैदिक तथा लौकिक साहित्य के अनुवाद से तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का आरंभ हुआ। इन विद्वानों के प्रयासों से भारतीय आर्यभाषाओं और यूरोपीय आर्यभाषाओं की तात्विक एकता को प्रतिपादित करने के प्रयास आरंभ हुए/परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व के लिए भाषा वैज्ञानिक वर्गीकरण के नए मानदंड स्थापित हुए। इसी प्रकार नालंदा, तक्षशिला, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता के गौरवपूर्ण इतिहास का विश्व की अनेकानेक भाषाओं में अनुवाद होने से विश्व-संस्कृति एवं सभ्यता के इतिहास को समझने के लिए एक नई दृष्टि मिली। इसी तरह पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति ने पूर्वी समाज में भारी उथल-पुथल का भी सूत्रपात किया। साहित्य के क्षेत्र में अंग्रेजी रोमाण्टिक काव्य ने अनुवाद के माध्यम से इटली, यूनान और फ्रांस से होकर एशिया में प्रवेश किया। यूरोप के इस रोमाण्टिक काव्य के प्रेरणादाताओं में महाकवि कालीदास का भी सम्मान सहित उल्लेख किया जाता है। इसी प्रकार इन रोमाण्टिक कवियों ने दाराशिकोह कृत उपनिषदों के अरबी अनुवादों से फ्रांसीसी भाषा में किए गए अनुवादों को पढ़कर भी प्रेरणा प्राप्त की। कालीदास की अनूदित कृतियों का अध्ययन करके ही जर्मन कवि गेटे ने कालीदास की शकुंतला को संबोधित करके कविता लिखी। यह तथ्य भी मात्र संयोग नहीं है कि प्रायः विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में रोमियो-जूलियट, हीर-रांझा, लैला-मजनूं जैसी कथाएं पाई जाती हैं। ये कथाएं प्रत्यक्षतः अनुवाद के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों के मध्य आदान-प्रदान की प्रतीक हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, धार्मिक प्रचार-प्रसार में धर्मग्रन्थों के अनुवाद की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वेद, बाइबिल, कुरान, गीता, उपनिषद तथा बौद्ध और जैन धार्मिक ग्रंथों का संपूर्ण विश्व पर प्रभाव दिखाई देता है। प्रख्यात पश्चिम आलोचक टी०एस० इलियट बौद्ध और उपनिषदीय ज्ञान-परंपरा से प्रभावित एवं प्रेरित दिखाई देते हैं। इसी प्रकार कांटे, हीगल, नीत्से और सार्त्र की कृतियों में भारतीय दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

भारतवर्ष में नवजागरण की चेतना को प्रवाहित करने में अनुवादकों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। इसी माध्यम से हम फ्रांसीसी राज्य क्रांति, यूरोपीय उपनिवेशवाद, अमरीकी पूंजीवाद तथा साम्यवाद जैसी घटनाओं एवं युगान्तरकारी शक्तियों से परिचित हुए। इन शक्तियों/घटनाओं ने संपूर्ण विश्व में सामाजिक परिवर्तन में क्या भूमिका अदा की, इस तथ्य से सभी परिचित हैं। नवीन सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक आंदोलनों ने न केवल मध्ययुगीन जड़ता और रूढ़िवादिता को समाप्त करने में सहयोग दिया वरन् समाज में नव-चेतना का भी संचार किया। हमारे देश में उन्नीसवीं शती के दौरान भारतेन्दु युग के प्रायः सभी साहित्यकार अनुवादक भी रहे हैं। 'स्वतंत्रता से पूर्व लेखन और अनुवाद को अलग-अलग (विधा) नहीं माना जाता था... बड़े-बड़े नामी लेखक मौलिक लेखन के साथ-साथ अनुवाद भी करते थे। लेखन उनके हृदय की धड़कन थी और अनुवाद उनकी प्रेरणा (गार्गी गुप्तः अनुवाद, 1986, पृष्ठ 3)। वास्तव में इस काल के साहित्य का प्रमुख लक्ष्य जन-मानस में ऐसा परिवर्तन लाना था जो देश की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त कर सके। इस कार्य हेतु वे अनुवाद और सृजन दोनों को समान महत्व देते थे। इसी दौरान शेक्सपीयर के नाटकों का काफी बड़ी संख्या में अनुवाद हुआ। यह अनुवाद केवल स्वान्तः सुखाय की भावना से ही प्रेरित नहीं था वरन् नव-जागरण और नवोन्मेष की भावना से ओतप्रोत शेक्सपीयर का यह साहित्य मानव को रूढ़ियों से मुक्त होने की प्रेरणा देता था। इसी प्रकार चेकोस्लोवाकिया के लेखक विंत्सेंत्सलेस्नी ने टैगोर की कृतियों का चेक में अनुवाद प्रस्तुत करके दोनों देशों की संस्कृतियों को निकट लाने का प्रयास किया।

अनुवाद का महत्व भारत जैसे बहुभाषा-भाषी तथा नाना-संस्कृतियों के देश में, जहां कोस-कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी,' की कहावत चरितार्थ होती है, और भी अधिक है। क्योंकि संप्रेषण और संपर्क के माध्यम के रूप में अनुवाद की विधा का प्रयोग करके विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों के लोगों को निकट लाने में सहायता मिलती है। 'भारत के भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण में भारतवर्ष की 179 भाषाओं एवं 554 बोलियों का उल्लेख है। (डॉ० डी०पी० पटनायक, 1994 पृष्ठ 27)' केवल संविधान की आठवीं अनुसूची में ही 18 राष्ट्रीय भाषाओं का उल्लेख है। इस जटिल भाषागत परिवेश में अनुवाद का महत्व और उसकी अपरिहार्यता और भी अधिक हो जाती है। भारतीय भाषाओं में अनुवादों की श्रृंखला में बीसवीं शती के दौरान बंकिम चंद्र, शरत चन्द्र, माइकेल मधुसूदन दत्त और रवीन्द्र नाथ की बंगला कृतियों का हिंदी में अनुवाद, मराठी लेखकों हरिनारायण आप्टे, खांडेकर के हिंदी में अनुवाद तथा श्री एम०एन० सत्यार्थी और वी० वर्मा द्वारा बंगला से मलयालम में अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

पाश्चात्य साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान ने अनुवाद के माध्यम से पौर्वात्य संस्कृति पर अपना प्रभाव डाला जिसके रचनात्मक और नकारात्मक प्रभाव बुद्धिजीवियों की चर्चा का विषय रहे हैं। यद्यपि यह माना जाता है कि पाश्चात्य संस्कृति के आक्रमण ने भारतीय संस्कृति को हानि पहुंचाई है और भारतीय समाज को विघटन की ओर अग्रसर किया है तथापि, सामाजिक परिवर्तन के घटक के रूप में अनुवाद के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सौ वर्ष से भी पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सामाजिक परिवर्तन में अनुवाद की भूमिका के महत्व को समझा था (डॉ० रीता रानी पालीवालः अनुवाद 1986, पृष्ठ 30) उनकी निम्न पंक्तियों से अनुवाद का महत्व उद्घाटित होता है:—

"पै सब विद्या की कहूं होई जुपै अनुवाद।
निज भाषा में तो सबै या को लैहें स्वाद।।
जानि सकैं सब कुछ सबहि विविध कला के भेद।
वनै वस्तुकाल की इतै मिटै दीनता खेद।। "

निज भाषा में संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धि से ही दीनता का विनाश संभव है और यह अनुवाद से ही संभव है। स्वाधीनता संग्राम के दौरान गीता दर्शन ने संपूर्ण भारतीय जन-मानस को एकजुट बनाए रखा। यह गीता के अनुवाद का ही महत्व है। इसी प्रकार संपूर्ण भारतवर्ष में 'आसेतु हिमाचलम' की समाजिक संस्कृति की स्थापना का श्रेय भी बहुत कुछ अनुवाद को देना उचित होगा।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का सबसे कारगर साधन है। शिक्षा के क्षेत्र में अनुवाद का महत्व स्वयं सिद्ध है। शिक्षा में अनुवाद के महत्व के संबंध में डा० जी०डी० सिंघल लिखते हैं—

"Since it is not possible for everyone to learn well more than one or two languages, it is absolutely essential that the scientific and technical literature of more advanced countries should be available to our university students in our languages." (Tips to translators)

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अनुवाद के तीन महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं—कार्यालयीन अनुवाद, व्यावसायिक अनुवाद तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक अनुवाद। तीनों प्रकार के अनुवाद न्यूनाधिक मात्रा में सामाजिक परिवर्तन की गति बढ़ाने के लिए उत्तरदायी हैं। कार्यालयीन अनुवाद का संबंध सरकारी पत्राचार से है। भारत की जटिल भाषिक स्थिति को देखते हुए संविधान द्वारा राज्यों तथा राज्य और केन्द्र के बीच पत्राचार हेतु विभिन्न भाषाओं में अनुवाद की व्यवस्था की गई है। इस प्रक्रिया से न केवल विभिन्न भाषा-भाषियों के मध्य आदान-प्रदान संभव हुआ है वरन् बहुत से शब्द भारत की सभी भाषाओं में आमतौर पर प्रयोग में लाए जाने लगे हैं और सामासिक संस्कृति के अंग बन गए हैं। इसी प्रकार व्यवसायों से संबंधित विज्ञापनों, प्रचार सामग्री आदि ने भी "उपभोक्ता संस्कृति" के प्रभाव से नये-नये शब्द गढ़ने में सहायता दी है और कई बार विभिन्न भाषाओं के विशिष्ट शब्दों को सार्वभौम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्यिक-सांस्कृतिक अनुवादों का समाज पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार के अनुवादों में क्लासिकल साहित्य की कृतियों के अलावा राजनीति दर्शन तथा विज्ञान से संबंधित श्रेष्ठ कृतियों का अनुवाद भी शामिल है। इन सभी प्रकार के अनुवादों ने सामाजिक परिवर्तन की गति को तीव्र करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद को पाप, बेवफा-रूपसी, धोखा जैसे नामों से पुकारे जाने तथा अनुवाद की प्रामाणिकता, भाषा तथा सटीकता पर प्रश्न लगाए जाने के बावजूद यह स्पष्ट है कि अनुवाद वर्तमान समाज की अत्यंत महत्वपूर्ण तथा अवश्यक विधा हैं। इसी कारण आज अनुवाद पर स्वतंत्र विधा के रूप में विचार किया जा रहा है। वर्तमान वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नति तथा संचार और सूचना क्रांति के युग में अनुवाद और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। तकनॉलाजी तथा सूचना के क्षेत्र में प्रत्येक राष्ट्र और समाज शीघ्रातिशीघ्र उन्नति के लिए प्रयासरत है। 'जो पहले आए सो पाए' के प्रतिस्पर्धात्मक युग में यह अनिवार्य हो गया है कि विभिन्न भाषाओं में तुरन्त अनुवाद की व्यवस्था उपलब्ध हो। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में त्वरित गति से अनुवाद के महत्व को देखते हुए कंप्यूटरीकृत अनुवाद के क्षेत्र में भी अनुसंधान किए जा रहे हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि समाज पर अनुवाद का प्रभाव के अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय है और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तेज करने में अनुवाद की महती भूमिका है।

संदर्भ सूची

1. K.Karunakaran, M Jayakumar, (ed): Translation as synthesis, a search for a new gestalt, Bahri publication, New Delhi 1988.
2. प्रो० सूरजभान सिंहः हिंदी भाषा संदर्भ और संरचना, दिल्ली 1991.
3. Dr. O.N. Koul, (ed): Language Development and Administration, creative, New Delhi, 1994.
4. डॉ० आलोक कुमार रस्तोगीः हिंदी में व्यावहारिक अनुवाद, जीवन ज्योति, दिल्ली 1984.
5. मा०गो० चतुर्वेदी, कृष्ण कुमार गोस्वामी, (सं०): अनुवाद-विविध आयाम, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 1986.
6. Dr. O.N. Koul, (ed): South Asian Language Review, creative, New Delhi 1994.
7. डॉ० गार्गी गुप्त, (सं): अनुवाद, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, 1986.
8. आर० पी० सिंहः कार्यालयीन अनुवाद समस्या और समाधान, 1990.

पृष्ठ 17 का शेष

से भारतीय भाषाओं के कार्यान्वयन हेतु जुट जाने की आवश्यकता है। उन्हें प्रयोग से, व्यवहार से रोज़गार और व्यवसाय से जोड़कर जीवित बनाए रखने की आवश्यकता है। सम्मेलन, भाषा-दिवस या पोस्टर चिपकाने वाले आंदोलनों मात्र से नहीं, सृजनात्मक तथा ठोस कार्यों से, योजनाबद्ध कार्यक्रमों को लागू करने से ही हम संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं को सुरक्षित एवं विकासमान रख सकेंगे। विदेशी भाषाओं के हमारी अस्मिता हमारी पहचान पर हो रहे ये चहुंमुखी आक्रमण, हमारी एकता की परख करना चाहते हैं। हमारी एकता और समभाव को शंकित तथा ऊर्जा प्रदान करने वाली दिव्य-भाषा संस्कृत पर ही आक्रमण करने की यह नीति किसी गहरी साज़िश की सूचक है। अगर अभी भी हम सोते रहे तो कोई कानून हमारी रक्षा न कर सकेगा। संभवतः हमारी 'संस्कृति' भी हमें कभी क्षमा न करेगी।

लिखी फाइलों व दस्तावेजों को काम में लाने के आदेश जारी करके कड़ाई से उसका पालन कराना और इस में किसी भी हालत में किसी भी प्रकार के भूल-चूक को गंभीर अपराध एवं दुरव्यवहार मानकर अनुशासनिक कार्रवाई करना इस अंग्रेजी दोष से प्रशासन को हिन्दीमय बनाने में सहायक साबित होंगे।

और एक पहलु भी इस अवसर पर विचारणीय है। सरकारी सेवा से संबंधित सभी नियमावली जैसे कि स्वामी पब्लिकेशन्स सिर्फ अंग्रेजी मे उपलब्ध हैं। सरकारी सेवा में लगे लोगों का प्रशिक्षण भी इन्ही अंग्रेजी नियम पुस्तिकाओं के आधार पर दिया जाता है। रूप-रंग राग-ताल सब अंग्रेजी; फिर हिन्दी का रागालाप कौन करेगा? दुर्भाग्य की बात है कि अब तक हिंदी क्षेत्र में या हिंदी प्रेमियों में, हिन्दी में सेवाशर्तों की पुस्तकों/पुस्तिकाओं के संकलनकर्ता का आविर्भाव नहीं हुआ। राजभाषा विभाग भी इस मुद्दे में चुप्पी साधे बैठा है। राजभाषा विभाग के केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरों में या कार्मिक विभाग में या दोनों के मिले-जुले एकक का सृजन करके उससे यह काम प्राथमिकता के आधार पर किया जाना राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी पहलू में अतीव आवश्यक है। इतना ही नहीं, इन प्रकाशनों को अद्यतन बनाए रखने और भविष्य में भी ऐसे संकलनों को समय-समय पर मुस्तैदी से प्रकाशित कराने की जिम्मेदारी इस एकक को सुपुर्द की जानी चाहिए। क्या राजभाषा हिंदी में नियम पुस्तकें नहीं प्रकाशित की जा सकती? क्या राजभाषा प्रवीण लोग ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन में अप्रवीण है? ऐसा नहीं माना जा सकता। ये सभी काबिलियतें हैं, सिर्फ इन्हें काम में लाया जाना चाहिए। हॉ शीघ्रस्य शुभम।

अजीब लगे तो भी असली बात यह है कि हिंदी अधिकारी, हिंदी अनुवादक, हिंदी सहायक, हिंदी टंकक आदि अलग वर्ग की स्थापना राजभाषा कार्यान्वयन में बाधा साबित हो रही है। बहुत सारे कार्यालयाध्यक्षों की यह राय है कि हिंदी सेल में हिंदी में काम होता है। याद आती है कि आजादी की लड़ाई के समय देशप्रेमी लोगों को जेल के सेलों में डालकर यातनाएं दी जाती थीं। अब उसका आधुनिकतम रूप है हिंदी सेल। यानि हिंदी को ही नहीं हिंदी कार्मियों को भी सेल में डाल रखा है। बेचारी हिंदी व बेचारे हिंदी वाले हिंदी सेल में पड़े लाचार हैं। लाचार होकर हाथ पैर मार रहे हैं; हिंदी को और अपने को बचाने के लिए। कहीं-कहीं हिंदी कक्ष के अंदर बंध होकर दमधुर कर हिंदी मृतप्राय हो गई है और कहीं-कहीं ऐसा हो रही है। जो भी हो, उनके अंदर घुटन है। निरीह हिंदी प्राणी वहां से बचने के लिए तड़प रहे हैं; बहुतों ने हिंदी को दूर किनारे रखकर, अपने को किनारे कर दिया है। जिस हिंदी के सहारे दफ्तर के अंदर ये महाशय आ पाए, उसी हिंदी को धक्का मारकर या पैरों तले कुचल डालकर ये अपने को हिंदीतर ऊँची कुर्सियों पर विराज रहे हैं। उनका कहना है, जाने दो हिंदी को भाड़ में, अरे चलता है, यार चलती का नाम हिंदी है। फलस्वरूप हिंदी की गाड़ी डगमगा रही है, वह कहीं सीधी, कहीं उल्टी चल रही है। राजभाषा का रास्ता, राजमार्ग नहीं; ऊबड़ खाबड़ रास्ता है, कांटों और कंकड़ पत्थरों से भरा दुष्कर मार्ग है। उपर्युक्त स्वार्थी हिंदी कर्मी, राजभाषा के कार्यान्वयन में अभिशाप ही अभिशाप है। इनको राजभाषा विभाग के तत्वावधान में पुनश्चर्या पाठ्यक्रम चलाकर अपने-अपने महान कर्तव्य के प्रति वफादार बनाना ही इस समस्या का समाधान है। हिंदी कर्मियों को निराश-हताश नहीं होना चाहिए; आशावादी बनकर कदम-कदम आगे बढ़ना चाहिए। गंतव्य स्थान राष्ट्रीयता के रंग में जगमगा रहा है। लेकिन फासला काफी है। चलना है यार बहुत दूर। मेहनत का फल मीठा होगा। हम एक न एक दिन पहुंचेगे अपने पड़ाव पर, निस्संदेह। घोर शुद्धतावादी, हिंदी भाषा के पंडित, राजभाषा के कार्यान्वयन में रोड़ा अड़कानेवाले अन्य तत्व हैं। व्याकरण का हौवा दिखाकर, नौसीखे हिंदी प्रेमी कार्यकर्ताओं को निरुत्साहित करने का जघन्य कार्य ये लोग कर रहे हैं जो राष्ट्रहित में या निज भाषा के हित में नहीं। भाषा किसी की बपौती नहीं। भाषा बहता नीर है। जहां से होकर भाषा पयस्विनी का प्रवाह होता है उसकी गंध का उसमें समेट जाना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं भाषा पहले बनती है, व्याकरण बाद में। किसी शब्द के पुल्लिंग-स्त्रीलिंग फर्क को लेकर या इक्के-दुक्के प्रचलित अंग्रेजी शब्दों के हिंदी लिप्यंतरण प्रयोग को लेकर अनावश्यक भवंडर पैदा करने वाले भी राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन के उदार मार्ग में रोड़े अटकाते हैं। इन्हें चेतावनी देकर दूर हटा देना मात्र इस समस्या का समाधान है। इन शुद्धतावादियों को उदार होना चाहिए। राजभाषा हिंदी में नित्य नूतन परिवर्तन-परिवर्धन का सानंद स्वागत करने की सशक्त सलाह देकर इस पहलू का भी निराकरण किया जा सकता है। अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को नागरी लिपि में लिखकर अपनाने से भाषा की श्रीवृद्धि में चार चाँद लग जाएंगे। पवित्र गंगाजी ऊंचे पहाड़ों से नीचे के मैदानों की तरफ अविराम रूप से बह रही है। राजभाषा हिंदी की गंगाधारा को भी ऊपर से नीचे की तरफ बहनी चाहिए। मतलब यह है कि उच्च कार्यनिष्पादकों को इस दिशा में पहल शुरू करनी चाहिए। अर्थात् राजभाषा हिंदी के प्रयोग की शुरूआत प्रशासन के प्रधानों से ही की जानी चाहिए। यथा राजा, तथा प्रजा। जब ऊंचे तबके के अधिकारी हिंदी में टिप्पणी, आदेश, अनुदेश, निदेश आदि लिखेंगे, नीचे के तबकों के कर्मचारी और अधिकारी भी राजभाषा के राजमार्ग से ही चलेंगे। वे सब राजभाषा हिंदी में अपनी-अपनी लिखा पढ़ी करके प्रोत्साहित होंगे। दंड की नीति अपनाकर नहीं; प्रेरणा और प्रोत्साहन के बल पर ही हिंदी लाना, उसे प्रशासन का प्रबल माध्यम बनाना इस संबंध में घोषित सरकारी नीति का सार संक्षेप है। हम सब को मिल-जुलकर राजभाषा हिंदी के मार्ग में आई, आ रही और आने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए कमर कसकर खड़े हो जाना चाहिए।

राजभाषा हिंदी के प्रति जनता-जनार्दन की उपेक्षा खासकर हिंदी भाषी व हिंदी सीखे लोगों की उपेक्षा भी राजभाषा के कार्यान्वयन में अड़चन है। अपकर्षता या हीन-भावना से प्रेरित होकर लोग हिंदी के प्रयोग से कतराते हैं। अंग्रेजी की आबोहवा इतनी तेज़ जबर्दस्त है कि खुद हिंदी भाषी-हिंदी प्रेमी दूसरों के सामने अपना सिक्का जमाने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। इसके लिए नवयुग में सिंहनाद-सा शंखनाद करने के लिए अभिनव भारतेंदुओं को जन्म लेना है। श्रीमद्भगवत गीता में भी है, "यदा-यदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारतः अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम"। निजभाषा उन्नति सभी उन्नतियों का मूल सिद्धांत घोषित करने वाले कलम के धनी साहित्यकारों की सहायता से इस समस्या का भी समाधान किया जा सकता है। हिंदी साहित्यकारों के लिए यह अंग्रेज़ीपरस्त संकट एक चुनौती है। उम्मीद है कि वे जनधर्म को जगाएंगे और जनभाषा को बचाएंगे। □

अवधी की पहली रचनाः मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन'

—विश्वनाथ त्रिपाठी

लौरिक और चांदा की प्रेम कथा उत्तरी भारत में प्राचीन काल से प्रचलित है। 14 वीं शताब्दी में कवि शेखरचार्य ज्योतिरीश्वर की प्रसिद्ध पुस्तक 'वर्णरत्नाकर' में नगर वर्णन के अन्तर्गत 'लोरिक नाचो' अर्थात् लोरिक नृत्य का उल्लेख हुआ है, जिससे प्रकट होता है कि जनता में लोरिक नाच उस समय प्रचलित था। इस लोक-प्रचलित प्रेम-कथा का नायक लोरिक आमीर था। आज भी बिहार और उत्तर प्रदेश में 'लोरिक' आमीरों का जातीय गान है। आमीरों की इस जातीय विशेषता को प्रकट करने वाली एक लोकोक्ति का उल्लेख ग्रियर्सन ने अपने एक लेख 'द बर्थ ऑफ लोरिक' में किया है। लोरिक और चांदा की प्रेम-कथा पर आधारित काव्य की सूचना सर्वप्रथम गार्सां द तासी ने अपनी पुस्तक 'हिस्तोरे द ल' लितरेत्योर हिन्दुई एत हिन्दुस्तानी' में दी थी। इसके पश्चात् हिन्दी साहित्य के कई इतिहासकारों और लेखकों ने अपने नामों से इस प्रेम कथा का उल्लेख किया। किन्तु उनसे इस काव्य पर कोई विशेष प्रकाश न पड़ सका, जिसका कारण सम्भवतः यह था कि काव्य अनुपलब्ध था।

इस काव्य के विषय में प्रामाणिक सूचना सर्वप्रथम बाबू ब्रजरत्नदास ने अपनी पुस्तक 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास' में दी। उन्होंने लिखा कि अल्बदायूनी द्वारा लिखित फारसी के इतिहास ग्रन्थ मुन्तखब उत्तवारीख में इस काव्य की और इसके रचयिता की चर्चा की गई है। मुन्तखब उत्तरवारीख के अनुसार 772 हिजरी में मन्त्री खानजहां की मृत्यु हुई और उसके पुत्र जूनाशाह ने वह उपाधि धारण की। मौलाना दाऊद ने उसके सम्मान में हिन्दी भाषा में 'चन्दायन' नामक मसनवी की रचना की जो लोरिक प्रेमी और उसकी प्रेमिका की कथा पर आधारित है। तवारीख के अनुसार यह काव्य अत्यन्त लोकप्रिय था और जब धर्मोपदेशक मरव्दूम शेखतकीउद्दीन मिम्बर से इस काव्य के अंश पढ़कर सुनाते थे तो लोगों पर इसका विचित्र प्रभाव पड़ता था।

अवध सूबे और रायबरेली जिले के गजेटियरों में डलमऊ के मौलाना दाऊद और उनकी भाषा पुस्तक चन्द्रेनी का उल्लेख है। इन गजेटियारों के अनुसार दाऊद एक ऐसे विद्यालय में काम करते थे जिसकी स्थापना फीरोजशाह तुगलक ने मुस्लिम धर्म और सिद्धांतों के प्रचार के लिए की थी। अवध गजेटियर के अनुसार मुल्ला दाऊद ने चन्द्रेनी की रचना 779 हि० में की थी।

संपादन—

काव्य का संपादन तीन विद्वानों ने अलग-अलग किया है। डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित संस्करण 'लोरकहा' नाम से तथा डा० विश्वनाथ प्रसाद और डा० परमेश्वरी लाल गुप्त के संस्करण 'चंदायन' नाम से प्रकाशित हुए है। नामों पर हम आगे विचार करेंगे। यहां पर तीनों सम्पादित संस्करणों का विवरण उनकी भूमिकाओं के आधार पर इस प्रकार से है—

लोरकहा—

लोरकहा का सम्पादन डा० माताप्रसाद गुप्त ने निम्नलिखित तीन हस्तलेखों के आधार पर किया है।

1. **कला भवन की प्रतिः** काव्य के छः पन्ने भारत कला भवन काशी में हैं; इन पन्नों के एक ओर काव्य के छन्द हैं और दूसरी ओर कथा से सम्बद्ध चित्र। चित्रों के विषय में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का अनुमान है कि उनकी शैली 15 वीं-16 वीं शताब्दी ईस्वी की है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने डा० अग्रवाल के इसी कथन के आधार पर अनुमान किया है कि यह हस्तलेख रचना के सौ वर्ष से अधिक बाद का नहीं होगा। लोरकहा के प्रारम्भिक छः छन्द इसी हस्तलेख के हैं।

2. **मनेर शरीफ के खानकाह की प्रतिः** यह प्रति पटना विश्वविद्यालय के अध्यापक सैयद हसन अस्करी को मनेर शरीफ खानकाह से प्राप्त हुई थी। इसमें कुल 32 पन्ने हैं। प्रति में आरम्भिक 143 पन्ने तथा 178 के बाद के पन्ने नहीं हैं, बीच में एकाध पन्ने गायब हैं। लिपि फारसी है। डा० गुप्त के अनुसार असम्भव नहीं कि (प्रति) सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की है।

3. **शिमला संग्रहालय की प्रतियांः** शिमला संग्रहालय में रचना की दो प्रतियां सुरक्षित हैं। एक प्रति में 9 पन्ने और दूसरी में केवल 1 पन्ना है। इन पन्नों पर भी कलाभवन की प्रति की भांति एक ओर काव्य है और दूसरी ओर कथानक से सम्बद्ध चित्र हैं। 9 पन्नों वाली प्रति की लिपि अरबी है और 1 पन्ने वाली प्रति की फारसी। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार चित्रों की शैली 15 वीं शताब्दी की है। लोरकहा के छन्द क्रं० 70 से 79 इन्हीं प्रतियों पर आधारित हैं।

इनके अतिरिक्त भोपाल प्रति के दो पृष्ठों के फोटोग्राफ भी डा० गुप्ता को भोपाल आर्कियोलाजिकल विभाग के सुपरिटेंडेंट डा० तैमूरी से प्राप्त हो गए थे। इनमें से एक बन्द तो कलाभवन की प्रति में ज्यों का त्यों मिलता

है और एक लोरकहा का अन्तिम (80 वां) बन्द है। इस प्रति में भी कुछ चित्र हैं जो सम्पादक के अनुसार 15 वीं-16 वीं शताब्दी के लगते हैं।

चंदायन (सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद)

डॉ० माताप्रसाद गुप्त को लोरकहा का सम्पादन करते समय भोपाल प्रति के दो ही बन्द प्राप्त हो सके थे। बाद में डा० विश्वनाथ प्रसाद ने उस प्रति को डॉ० मोतीचन्द के माध्यम से प्राप्त कर लिया। डॉ० प्रसाद ने काव्य का सम्पादन उसी प्रति के आधार पर किया है। उनके अनुसार काव्य का नाम चंदायन है न कि लोरकहा। भोपाल वाली प्रति के कुछ बन्द मनेरशरीफ शिमले और कलाभवन की प्रतियों में भी मिल जाते हैं। डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने ऐसे स्थलों का निर्देश यथास्थान कर दिया है।

चंदायन (सं० परमेश्वरीलाल गुप्त)

चंदायन नाम से ही इस काव्य का संपादन डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त ने भी किया है। डॉ० गुप्त ने परिश्रमपूर्वक काव्य की माइक्रोफिल्म मैनचेस्टर के जॉन रीलेण्ड्स पुस्तकालय सें प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उन्होंने अमेरिका निवासी फेसिस होफर के संग्रह से उसके दो पृष्ठ प्राप्त किए। इसके अतिरिक्त पटियाला के पंजाब राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित 10 चित्रों की दूसरी और फारसी लिपि में लिखा हुआ काव्य का कुछ अंश डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त को उपलब्ध हो गया जिसका उपयोग उन्होंने सम्पादन में किया।

इस प्रकार हिंदी के पाठकों के सम्मुख दाऊद की रचना के तीन सम्पादित संस्करण विद्यमान हैं। लोरकहा और चंदायन (वि०प्र०) में काव्य के कथानक का कोई निश्चित स्वरूप नहीं उभरता क्योंकि जिन हस्तलेखों के आधार पर इनका सम्पादन किया गया है उनमें प्राप्त छन्द कथानक की दृष्टि से क्रमबद्ध नहीं मिले हैं। डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा सम्पादित चंदायन में कथानक की क्रमबद्धता है। अतः इसमें काव्य के कथानक का स्पष्ट रूप हमें देखने को मिलता है। यद्यपि उसमें भी अन्तिम अंश अप्राप्त है।

काव्य का नाम

ऊपर प्रसंगतः इस बात का उल्लेख हो गया है कि डा० माताप्रसाद गुप्त ने दाऊद की रचना को 'लोर कहा' और डा० विश्वनाथ प्रसाद तथा डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने 'चंदायन' कहना उचित समझा है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इस काव्य को 'लोर कहा' निम्नलिखित अर्धाली के आधार पर कहा है—

तोर (लोर) कहा मइं यहि खंड गाउं (गावउं)
कथा काव कइ लोग सुनाऊं (सुनवाउं)।

मनेर शरीफ के हस्तलेख में यह अर्धाली स्पष्ट नहीं है। देखने में एक नुक्ता दिया गया है। ऐसी स्थिति में इसे नूर कहा पढ़ा जाना चाहिए था। किंतु फारसी हस्तलेखों में नुक्तों के नियम का पालन पूर्णतः नहीं हो पाता है। इस बात को ध्यान में रख कर इसे 'लोर कहा' भी पढ़ा जा सकता है। डा० विश्वनाथ प्रसाद और डा० माताप्रसाद गुप्त ने उसे तोर कहा पढ़ा है। किंतु डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने नुक्ते को सम्भवतः लिपिकार का प्रसाद मानकर इसे 'लोर कहा' पढ़ना ठीक समझा है। और काव्य को 'लोर' कहा कहा है।

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने इस नामकरण का खंडन करते हुए अनेक प्रमाणों के आधार पर और परमेश्वरी लाल गुप्त ने हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों और मुन्तखबउत्तवारीख तथा रामपुर और बीकानेर के हस्तलेखों का हवाला देते हुए काव्य को 'चंदायन' कहना उचित समझा है।

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे उल्लेख पर्याप्त संख्या में मिलते हैं जिनमें लोरिक और चंदा की प्रेम-कथा पर आधारित इस काव्य को चंदायन कहा गया है। किन्तु रचना में काव्य के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने अवश्य एक ऐसे स्थल का निर्देश प्रस्तावना में किया है। उन्होंने मनेर शरीफ की उक्त अर्धाली वाले छंद की एक अन्य अर्धाली उद्धृत की है और लिखा है कि इसमें दाउद कवि की रचना को चंदा कहा गया है:—

दाऊद कवि जो चांदा गाई
जेंइ ने सुना सो गा मुरझाई।

डॉ० प्रसाद ने लिखा है कि इसमें चांदा या 'चंदायन' नाम का ही उल्लेख है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि दाऊद कवि ने जिस ग्रंथ की रचना की थी उसका नाम 'चांदा' या 'चंदायन' ही था।

यहां 'चांदा' को दाऊद की रचना का नाम समझना उचित नहीं प्रतीत होता। दाऊद की रचना को 'चांदा' अन्यत्र कहीं नहीं कहा गया है।

'चांदा' का अभिप्राय यहां 'चांदा' की प्रेमकथा अधिक उपयुक्त लगता है। डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा सम्पादित चंदायन में इस प्रेमकथा या उससे सम्बद्ध गान विशेष के लिए 'चंदरावल' शब्द का प्रयोग मिलता है। गोवर छोड़ने के पश्चात् चांदा के रूप को देखने के कारण उन्मत्त बने हुए बाजिद ने रूपचंद की नगरी में पहुंचकर एक सुहानी रात में तार ठोंक कर 'चंदरावल' गाया जिससे पूरा नगर झंकृत हो उठा:—

तिहैं रात सुहावन बाजिर ठोका तार।
गाइ गीत चंदरावल नगर भयउ झनकार। 71 चंदायन (सं०प०गुप्त)

राजा नेमी ने यह गीत सुना और बाजिर को बुलाकर उससे फिर वही गीत गाने का अनुरोध करते हुए कहा कि आज रात तूने जो गाया उस चंदरावल से मेरे मन में लहरें उठने लगीं।

आज रात निसहैं तैं गावा
चंदरावल मन रहरां लावा। 72 चंदा० (सं०प० गुप्त)

डा० विश्वनाथ प्रसाद ने प्रस्तावना मे लिखा है कि लोरक चंदा की लोक-कथा भोजपुरी प्रदेश में बहुत प्रचलित है। वहां इसके लिये लोरिकायन, लोरिकी, चनैनी आदि नाम ही व्यवहृत होते हैं। 'चांदा' और 'चंदरावल' को भी इन्हीं लोक-प्रचलित नामों की श्रेणी में मानना उचित है। लोरिक, लोरिकायन, चांदा' चन्दरावल, चनैनी—ये सभी लोरिक और चांदा की प्रेम-कथा पर आधारित गान या नृत्य के नाम प्रतीत होते है। 'वर्ण रत्नाकर' में उल्लिखित 'लोरिक नाचो' इस अनुमान की पुष्टि करता है।

'मुन्तखबउत्तवारीख' में दाऊद द्वारा रचित काव्य का नाम 'चन्दायन' दिया हुआ है। सम्भवतः दो नुक्तों की जगह एक ही नुक्ते के कारण 'चंदावत' या 'चंदाबत' को चंदाबन पढ़ लिया गया है। सम्भवतः सूफी कवियों द्वारा रचित अन्य कई काव्यों की—पद्मावत, मिरगावत—की

भांति इस काव्य का नाम भी वतान्त था। मुझे दो मुसलमान सज्जन ऐसे मिले जो दाऊद की रचना को 'चंदावत' के ही नाम से जानते हैं। लोरिकायन, लोरिकी, लोर-कहा; चनैनी या चंदायन लोक प्रचलित नाम प्रतीत होते हैं, और चन्दावत सूफी काव्यों की परम्परा में प्रचलित नाम।

कवि और रचनाकाल

काव्य में कई स्थानों पर दाऊद का उल्लेख रचनाकार के रूप में हुआ है—

ब (फि) रके चांदा जूझि उपावा।
भई जूझि जद दाऊद गावा। 57 (चं०—सं०वि०प्र०)
सिराजदीन जो खमंद (खामिद) दाऊद कहे संवारि।
25 चे-सं० वि० प्र० दाऊद कवि जो चांदा गाई। 56 लोर कहा।

मुन्तखबउलवारीख के अनुसार 772 हिजरी (सन् 1370 ई०) में मलिक मकबूल के जिसकी उपाधि खानजहां थी, मरने के बाद उसके पुत्र जूनाशाह को भी वही उपाधि मिली। उसके नाम से मौलाना दाऊद ने हिंदवी जबान में लोरिक और चांदा नाम के प्रेमी और प्रेमिका की कथा पर आधारित 'चंदाबन' की रचना की।

इससे प्रकट होता है कि दाऊद मौलाना थे और उन्होंने इस काव्य की रचना हिज़री 772 के बाद की थी। रायबरेली जिले और अवध सूबे के गजेटियरों में उस उल्लेख की चर्चा ऊपर हो चुकी है; जिसमें उन्हें फीरोज़ शाह तुग़लक द्वारा स्थापित धार्मिक विद्यालय से सम्बद्ध बताया गया है। वदाऊनी द्वारा उल्लिखित खानजहां जूनाशाह की प्रशंसा दाऊद ने अपनी रचना में इस प्रकार की है:—

खान जहां खरि जुग जुग खानि। अति नागर बुधवन्त बिनानी
चतुर सुजान भाख सब जाना। रूपवंत मन्तरी सुजाना
एक खम्भ मेदिनी कहं कीन्हा। डोल परै जौ होत न दीन्हा
धकै पैरै लोग चढ़ावई। कर गुन खीचि तीर लई लावइ
हिन्दू तुरुक दुहूं सम राखै। सत जौ होई दुहुन्ह कहं भारवै
गउव सिंह एक पन्थ रेंगावइ। एक घाट दुहुं पानी विपावइ।
एक दीठि देखइ सैंसारु। अचल न चलैं चलै बेवहारू
मेरू धरनि जस भारन जग भारन संस्थार
खानजहानहु कौन बड़ाई बड़ जो कीन्हि करतार
—11, 12 चं० (सं०-प० ला० गुप्त)

प्रशंसित मन्त्री खानजहां जिनके सम्मान में दाऊद ने रचना की थी, दाऊद के आश्रयदाता मालूम पड़ते हैं। डा० विश्वनाथ प्रसाद का यह अनुमान ठीक लगता है कि 'खानजहां' की ऐसी प्रशंसा है जो किसी आश्रयदाता की ही हो सकती है।

दाऊद ने शाहेवक्त के रूप में दिल्ली के सुल्तान फीरोज़शाह की प्रशंसा की है। इसी के साथ साथ कवि ने काव्य का रचनाकाल दिया है और डलमऊ नगर का वर्णन किया है—

वरिस सात सै होइ इक्यासी। तिन्हिं जाह कवि सरसेउ भासी
साहि फिरोज दिल्ली सुलतानू। जौना साहि बजीरु बखानू
डलमऊ नगर बैसे नवरंगा। ऊपर कोट तले बहि गंगा।
—17 चं०-सं०-प०ला० गुप्त

इस बंद से प्रकट होता है कि 781 हि० (1379 ई०) में कवि ने इस सरस काव्य की रचना की। उस समय दिल्ली की गद्दी पर फीरोजशाह विद्यमान था। जूनाशाह उसका वज़ीर था। कवि ने काव्य की रचना डलमऊ में की जो गंगा के किनारे स्थित था। मुन्तखबउतवारीख के अनुसार 772 हि० में खानेजहां वजीर की मृत्यु के बाद जूनाशाह खानेजहां की उपाधि और मंत्रिपद से विभूषित हुआ और उसके सम्मान में दाऊद ने हिन्दी ज़बान में चन्दावत की रचना की। इस बंद से मुन्तखबउत्तवारीख के उल्लेख की पुष्टि हो जाती है। जूनाशाह के शासनकाल के 9वें वर्ष काव्य की रचना हुई।

एक बंद में कवि ने शेख जैनदी को अपना पथप्रदर्शक कहा है। जिससे प्रकट होता है कि शेख जैनदी दाऊद के गुरू थे। डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने लिखा है कि शेख जैनदी से कवि का तात्पर्य शेख जैनुद्दीन से है जो सुप्रसिद्ध चिश्ती संत हज़रत नसीरूद्दीन अवधी चिराग-ए-दिल्ली की बड़ी बहन के बेटे थे। काव्य में प्रसंगतः मलिक मुबारक, मलिक बयां नथन, सिराजुद्दीन और मीर मसूद के नाम आए हैं, जो कवि के जीवन पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डालते।

काव्य की भाषा

दाऊद के काव्य की भाषा के विषय में विद्वान संपादकों में पर्याप्त मतभेद है। डा० माता प्रसाद गुप्त 'लोरकहा' की भाषा को अवधी और ठेठ अवधी कहते है। जबकि डा० विश्वनाथ प्रसाद उसमें खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा ..... इन सबका सम्मिलित रूप पाते हैं। डा० परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार चन्दायन की भाषा को अवध के सीमित प्रदेश में ही बोली और समझी जानेवाली भाषा अवधी का नाम नहीं दिया जा सकता। डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने इस विषय में तनिक विस्तार से विचार किया है तथा उक्ति व्यक्ति प्रकरण और राउलबेल की भाषा का उदाहरण देकर दिखाया है कि 'दाऊद ने अपने काव्य के लिए ऐसी भाषा को अपनाया था जो अपभ्रंश साहित्य की शब्द-परम्परा से विकसित होकर व्यापक रूप से देश के विस्तृत भू-भाग में प्रचलित थी। तात्पर्य यह कि चन्दायन की भाषा के विषय में डा० विश्वनाथ प्रसाद और डा० परमेश्वरी लाल गुप्त के विचार लगभग समान हैं। उनके अनुसार चन्दायन की भाषा का रूप मिश्रित है।

किसी कृति की भाषा का निर्णय विवेचन के आधार पर होना चाहिए न कि इस बात पर उसका प्रचार कहां था? डा० परमेश्वर लाल गुप्त ने डा० श्याम मनोहर पाण्डेय के इस तर्क की, कि दाऊद ने डलमऊ में रह कर अवधी में रचना की है क्योंकि डलमऊ अवधी क्षेत्र में पड़ता है, काटते हुए लिखा है कि अब्दुल कादिर बदायूनी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि 'चन्दायन' दिल्ली सल्तनत के प्रधानमंत्री जूनाशाह के सम्मान में रचा गया था और दिल्ली में मरन्दूम शेख तकीउद्दीन रब्बानी जन-समाज के बीच उसका पाठ किया करते थे। यह कथन इस बात का संकेत करता है कि चन्दायन की भाषा वह भाषा है जिसे दिल्ली के प्रधान मंत्री जूनाशाह से लेकर दिल्ली की सामान्य जनता तक पढ़ और समझ सकती थी। डा० परमेश्वरी लाल का मन्तव्य है (1) चूंकि जूनाशाह दिल्ली के सुल्तान का प्रधान मंत्री था इसलिए वह अवधी न जानता रहा होगा और इसलिए दाऊद ने अवधी रचना न की होगी। डा० गुप्त के मन में संभवत यह बात बसी है कि जिस व्यक्ति के सम्मान में जो रचना की जाती है उसकी भाषा

वही हो सकती है जो सम्मानित व्यक्ति की होती है। स्पष्ट ही यह धारणा अपुष्ट है। (2) चूंकि दिल्ली के जन-समाज में इसका पाठ होता था और लोग इससे प्रभावित होते थे। इसलिए यह दिल्ली की भाषा रही होगी।। इस तर्क के आधार पर रामचरितमानस और सूरसागर की भी भाषा दिल्ली की होनी चाहिए क्योंकि दिल्ली के लोग उसे समझते और उससे प्रभावित होते हैं।

डा० परमेश्वरी लाल गुप्त का इससे भी अधिक भ्रामक वक्तव्य अवधी और छत्तीसगढ़ी के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में है। डा० गुप्त के शब्दों में 'श्याम मनोहर पाण्डेय की यह धारणा कि दक्षिण कोसली अवधी का एक पूर्व रूप है, भाषा विज्ञान और इतिहास दोनों दृष्टियों से अज्ञता का परिचायक और हास्यास्पद है। प्राचीन इतिहास में दक्षिण कोसल उस प्रदेश का नाम है जो आजकल छत्तीसगढ़ के नाम से अभिहित किया जाता है। छत्तीसगढ़ी भाषा का अवधी के साथ किसी प्रकार का नैकट्य है, यह कहना कठिन है।'

छत्तीसगढ़ी और अवधी में 'किसी प्रकार का नैकट्य' के सम्बन्ध में हम ग्रियर्सन का मत उद्धृत कर देना पर्याप्त समझते हैं—

'पूर्वी हिन्दी की तीनों बोलियां (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी) एक दूसरी से अत्यधिक मिलती-जुलती है। वास्तव में बघेली तथा अवधी में इतना कम अन्तर है कि यदि पृथक विभाषा के रूप में बघेली का अस्तित्व जनता में स्वीकृत न होता तो मैं इसे अवधी की ही एक बोली मानता। छत्तीसगढ़ी पड़ोसी की मराठी तथा उड़िया भाषाओं के प्रभाव के कारण पर्याप्त अन्तर प्रदर्शित करती है किन्तु अवधी से इसका निकट सम्बन्ध स्पष्ट है।

अवधी और छत्तीसगढ़ी की निकटता के सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्र वर्मा की पुस्तिका ग्रामीण हिन्दी भी डा० परमेश्वरी लाल गुप्त की पर्याप्त सहायता कर सकती थी। ग्रामीण हिन्दी की व्याकरण तालिका में डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अवधी और छत्तीसगढ़ी रूपों को एक ही शीर्षक 'अवधी छत्तीसगढ़ी' के अन्तर्गत दिखाया है।

डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने चंदायन और उक्ति-व्यक्ति--प्रकरण की भाषा में असमानता दिखाने का जो प्रयास किया है वह भी दोषपूर्ण प्रतीत होता है। उक्ति-व्यक्ति की भाषा अवधी की पूर्वजा भाषा का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु वह सम्पूर्ण अवधी क्षेत्र की तत्कालीन भाषा का पूर्ण रूप नहीं प्रस्तुत करती। इसके अतिरिक्त वह जन-बोली का रूप प्रस्तुत करती है काव्य-भाषा का नहीं। मनोरंजक बात जो यह है कि चंदायन और उक्ति-व्यक्ति की भाषा में जो असमानता सूचक तालिकायें प्रस्तुत की गई है उनमें कई समान है। अन्तर केवल यह है कि चन्दायन में रूपों की संख्या उक्तिव्यक्ति से अधिक है।

चन्दायन के 'दिवावा' मरावा, हंकरावा जैसे रूप उन्होंने उक्तिव्यक्ति के किएसि 'देखिसि' जैसे रूपों से भिन्नता प्रकट करने के लिए प्रस्तुत किए हैं। किन्तु अवधी काव्यों में —वा प्रत्ययान्त रूपों का कितना प्रचलन है यह विद्वानों से छिपा नहीं है—

कतहुं छरहता पेखन लावा। कतहूं पाखंड काठ चनावा।

—391

पद्मावत

आदि अंत कोउ जासु न पावा। 118 बालककाण्ड, रामचरित्रमानस

इसी प्रकार चंदायन के आउब, चलाउब जैसे उत्तम पुरुष सामान्य भविष्यवाणी रूप तथा आयहु जाएसि जैसे भविष्य अनुज्ञार्थ रूप अवधी के परिचित रूप है किन्तु इन्हीं के जैसे रूपों के आधार पर डा० परमेश्वरी लाल गुप्त चन्दायन की भाषा को अवधी नहीं मानते।

□

पृष्ठ 21 का शेषांश

मानते हैं, जब भी हम कम्पनी के ऊंचे-से-ऊंचे अधिकारी के पास जाते हैं, हम कभी खाली हाथ नहीं लौटेंगे।" एक अन्य कर्मचारी द्वारा व्यक्त विचार देखियेः "कंपनी के चेयरमैन हमारी व्यथा और हमारी समस्याओं के सुनते हैं और उनका हल ढूंढते हैं। वे अपनी कार रोककर हमसे बात करते हैं।" चौथी पीढ़ी के नौजवान कर्मचारी का विचारः "टिस्कों में हमारे काम करने के कारण हमारे प्रति काफी सद्भावना है। अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और परिवार के स्वास्थ्य के लिए भी हमें काफी सुविधाएं उपलब्ध हैं। इसलिए हम वफादारी और ईमानदारी से कंपनी की सेवा करते है।" कहने का तात्पर्य यही है कि उत्पादकता की संवृद्धि में कार्य-संस्कृति के समुन्नत और सकारात्मक कारकों में भाषा की भूमिका भुलायी नहीं जा सकती है। इसे गोण नहीं परन्तु अपरिहार्य और महत्वपूर्ण स्थान देना ही समीचीन होगा। टिस्कों के सहयोगी श्रमिक "खुले दरवाजे" की नीति के अन्तर्गत अपनी तकलीफों को दूर करवाने के लिए सीधे वरिष्ठ प्रबंधकों तक पहुंच सकते हैं—अपनी भाषा के माध्यम द्वारा।

उत्पादकता से जुड़े विशेषज्ञ मानते हैं कि एक संगठन के 'लोग' जितने सफल होंगे उतना ही वह संगठन भी सफल होगा। इसलिए हर अच्छा संगठन लगातार अपने सभी स्तर के कर्मचारियों के वैचारिक प्रबंधकीय, व्यवहार संबंधी तथा तकनीकी कुशलताओं को लगातार ऊपर उठाकर उनकी गुणवत्ता में सुधार लाने पर विशेष बल देता है। इसे ही देश के कल-कारखाने में "मानव संसाधन विकास" की संकल्पना माना गया है। कहना न होगा कि मानव संसाधन विकास की इसी विचारधारा में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का सन्निवेश स्वयमेव सहज रूप में अनुस्यूत है। देश की उत्पादकता में हिन्दी की अक्षुण्णं भागीदारी को भुलाये नहीं भूला जा सकता, यह वैचारिक स्थापना जिस दिन देश के नीति-नियामक कर्णधार समझ लेंगे, यह देश औद्योगिक क्रांति का अग्रदूत होगा। राज्याश्रय के चलते इस प्रक्रिया में अधिक त्वरा एवं स्थायित्व आयेगा नहीं तो देर-सबेर देश के हर आयाम में जहां-जहां भी उत्पादकता जुड़ी है वहां सरकार की पारदर्शिता, लचीलेपन और अद्यतन उदारवादी दृष्टिकोण अपनाने से हिंदी का आगमन स्वयमेव सहज ढंग से होता चला जायेगा, यह एक निर्विवाद तथ्य है। यही प्रजातंत्र का तकाजा भी है।

"हर क्रान्ति कलम से शुरू हुई....."

गोपाल सिंह नेपाली का काव्य संसार

—डा॰ मनोरंजन शर्मा

11 अगस्त, 1911 को बिहार राज्य के बेतिया जिले में जन्मे जिस कवि ने अपने गीतों से देश के कोने-कोने में बसे भारतीयों का हृदय जीत लिया था, उसका नाम गोपाल सिंह नेपाली है। एक सैनिक पिता के पुत्र नेपाली में स्वभाव से स्वाभिमानी व्यक्ति की अक्खरता ही नहीं एक देशभक्त सैनिक के समान साहस और समर्पण भी था। जीवनपर्यन्त अभावों से जूझने वाले इस कवि ने जनता के पक्ष को प्रस्तुत करते हुए कभी भी किसी स्तर पर सत्ताधारियों अथवा जनता का शोषण करने वाले धनिकों से कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने एक ईमानदार मनुष्य तथा कवि के रूप में यह अनुभव किया था कि जनता के दुख-दर्द को अभिव्यक्त करने वाला कवि सदैव जन्म-मुक्ति के संघर्ष में शामिल होता है। उन्हें अपने कवि-कर्म की महत्ता और महिमा ज्ञात थी इसीलिए उन्होंने लिखा है:—

राजा बैठे सिंहासन पर
यह ताजों पर आसीन कलम
मेरा धन है स्वाधीन कलम
तुझसा लहरों से बह लेता
तो मैं भी सत्ता गह लेता
ईमान बेंचता चलता तो
मैं भी महलों में रह लेता।

नेपाली, हिन्दी के उन थोड़े-से कवियों में से है जो न केवल कवि-कर्म की महत्ता एवं गंभीरता से परिचित थे वरन् उन्होंने अपनी काव्य यात्रा में उसे निरंतर चरितार्थ किया है। जहां राष्ट्र कवि कहलाने वाले कवि ने कविता के क्रांतिकारी लक्ष्य को अस्वीकार किया है, वहीं नेपाली मानते हैं कि कविता अन्याय एवं उत्पीड़न के विरूद्ध शंखनाद करने वाली वह वाणी है जो प्रगतिकारी परिवर्तन का सूत्रधार होती है। नेपाली ने लिखा है:—

हम धरती क्या, आकाश बदलने वाले हैं।
हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।
हर क्रांति कलम से शुरू हुई, संपूर्ण हुई।
चट्टान जुल्म की टकराकर उससे चूर्ण हुई।
ना मानों तो विश्वास बदलने वाले हैं।

यही कारण है कि नेपाली ने एक ओर पराधीन भारत में स्वतंत्रता के लिए ब्रिटिश सत्ता से लड़ने वाले क्रांतिकारी देशभक्तों के समान अपनी कविता के द्वारा लोहा लिया है। उनकी देशभक्ति का एक छोर पराधीन भारत से जुड़ा है तो दूसरा छोर स्वतंत्र भारत में जनशोषण करने वाली व्यवस्था की आलोचना से भी जुड़ा है। भाई-बहन, टुकड़ी, सत्याग्रह, भारतमाता जैसी कई दर्जन कविताओं में उनकी राष्ट्रभूमि के दर्शन होते हैं, स्वतंत्र भारत में निर्धन जनता की समस्याओं पर केन्द्रित उनकी कविताओं में रोटियों का चन्द्रमा, भूदान के याचक से और चन्द्र किरण में झोपड़ी जैसी कविताएं जनता के प्रति उनके रागप्रेम का प्रचार है। इनके शब्दों में—

जब चन्द्र किरण में महलों की दीवार चमकती रहती है,
झोपड़ियों से चांदनी लिपट भर रात सिसकती रहती है।
यदि दूर कुटी के घेरे से, आजादी की परिभाषा है,
जनतंत्र कहो या प्रजातंत्र, यह सारा तंत्र तमाशा है।
जब भी अपना हक मांगों तो तलवार लटकती रहती है,
जब चन्द्रकिरण में महलों की दीवार चमकती रहती है।

देशभक्ति को व्यापार बनाने वाली व्यवस्था के उस अन्तर्विरोध को नेपाली जी ने बहुत ही पहले पढ़ लिया था जिसके अंतर्गत आजादी की लड़ाई के दिनों में जेल गये लोगों को स्वतंत्रता सेनानी पेंशन आदि सुविधाएं दी जाने लगी। नेपाली ने सन् 1956 में ही लिखा था:—

जेल से जो आ गये वो इनाम पा गये
जो न जेल थे गये आज मात खा गये
जेल में जो चल बसे सब उन्हें भुला गये
दल के पक्षपात की धारणा गयी नहीं
रोटियां गरीब की, प्रार्थना बनी रही।

नेपाली जी ने हिन्दी के एक सच्चे पुजारी की तरह हिन्दी को संविधान के द्वारा दर्जा दिए जाने के बावजूद व्यावहारिक स्तर पर अंग्रेजी को बनाये रखने की राजनीति पर गहरा असंतोष व्यक्त किया है।

दो वर्तमान का सत्य सरल, सुन्दर भविष्य के सपने दो
यदि हिन्दी है भारत की बोली, तो उसे अपने आप पनपने दो
प्रतिभा हो तो सृष्टि करो, सदियों की बनी बिगाड़ो मत
कवि सूर-बिहारी-तुलसी का, यह बिरवा नरम उजाड़ो मत
साहित्य फलेगा-फूलेगा, पहले पीड़ा से पकने दो
श्रृंगार न होगा शासन से, सत्कार न होगा भाषण से
यह सरस्वती है जनता की, पूजो, उतरो सिंहासन से।

कहना न होगा कि कवि नेपाली की काव्य-यात्रा एक ऐसे समर्पित कवि की काव्य-यात्रा है जो अवसरवादी कवियों के समान व्यक्तिवादी प्रेरणा के प्रतिकूल जनता के हितों का सच्चा प्रहरी है। उनकी कविताएं भारत की जनता के दुख-दर्द का दर्पण है, उसका जीवित दस्तावेज है। □

समकालीन हिन्दी आलोचना का मध्यम पुरुष

—राजकुमार सैनी

प्रगतिशील आलोचक, लेखक और पाठक समुदाय डा० देवी शंकर अवस्थी को 'प्रगतिशील आलोचक' कहने में संकोच का अनुभव करते हैं, दक्षिण-पंथी साहित्यिक भी उन्हें अपना पक्षधर नहीं मानते, लेकिन यह भी सच है कि सभी तरह के अदीब उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। डा० देवीशंकर अवस्थी साहित्यिक दलों के दलदल की उपज थे लेकिन वे कीचड़ से ऊपर उठे हुए कमल थे। धर्मवीर भारती के काव्य-ग्रंथ 'सात गीत वर्ष' की समीक्षा करते हुए वे अपने बारे में कहते हैं—'सौभाग्य से प्रस्तुत समीक्षक विविध दलीय दलदलों से अलग ही रहा है, अतः उसे विश्वास है कि जो कुछ वह कह रहा है, अपने विवेक की कसौटी पर कस कर ही कह रहा है। विवेक और संविवेक, ज्ञान और संवेदना, विचार और भाव, बौद्धिकता और भावुकता, परम्परा और प्रयोग, प्राचीनता और आधुनिकता, वाम और दक्षिण—इस प्रकार नाना प्रकार के विरुद्धों के बीच समन्वय करने के निश्छल प्रयासों में रत रहने वाले डा० देवीशंकर अवस्थी अपने समय की हिन्दी आलोचना के मध्यम-पुरुष थे।

एशिया में एक श्रेष्ठतम महापुरुष हुए हैं जिन्हें गौतम बुद्ध के नाम से दुनिया जानती है। बिना किसी तरह की हिंसा का रास्ता अपनाए उन्होंने लगभग अस्सी वर्ष का जीवन जिया और यह प्रामाणित कर दिखाया कि बिना किसी की हत्या किए भी आप एक लम्बा सार्थक जीवन जी सकते हैं। भगवान राम ने रावणादि की हत्या की, भगवान कृष्ण ने कंसादि की, लेकिन भगवान बुद्ध ने किसी की हत्या नहीं की। उन्हें ऐसा करने की जरूरत ही नहीं पड़ी। उनके श्रेष्ठतम जीवन का निष्कर्ष था———मध्यम मार्ग। किसी भी तरह के अतिवाद से परे रहकर उन्होंने एक स्वस्थ, सुरुचिपूर्ण और जागरूक दृष्टि अपनाई। मेरा आशय यहां भगवान बुद्ध के साथ डा० देवीशंकर अवस्थी की तुलना या मिलान करना हर्गिज नहीं है। मेरा अभीष्ट केवल यह इंगित करना है कि डा० देवीशंकर अवस्थी ने अपनी समकालीन हिन्दी आलोचना के द्वंद्वों, अन्तर्विरोधों और विरुद्धों को सहानुभूति, संविवेक और विवेक के साथ जाना और परखा था तथा अपनी जान-पहचान और परख के पश्चात उन्होंने तत्कालीन हिन्दी आलोचना में एक सहृदयतापूर्ण उदारवादी मध्यम मार्ग का विकल्प प्रस्तुत किया। उनका यह विकल्प आज भी हिन्दी आलोचना में सर्वाधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक माना जा रहा है। इसीलिए वे आज भी चर्चा का विषय बने हुए हैं।

डा० देवीशंकर अवस्थी अपने समय के उन प्रबुद्ध, जागरूक, सहृदय और सजग आलोचकों में अग्रगण्य थे जिन्होंने नए साहित्य को सबसे पहले आगे बढ़ कर स्वीकारा। इस स्वीकरण को वे स्वयं नई आलोचना का प्रमुख लक्षण मानते थे। 'रचना और आलोचनाः अन्तराल के प्रश्न पर पुनर्विचार' शीर्षक अपने लेख में वे कहते है—'लेखक और पाठक के मध्य के इस द्वंद की स्थिति में ही आलोचना का दायित्व अत्यंत प्रखर रूप से सामने आया। **यह दायित्व था नए साहित्य की पहचान का।** नए साहित्य के प्रति जब तमाम बड़े लेखक, आलोचक, संस्कृति के ठेकेदार और सामान्य पाठक संदेहाल, ही नहीं, प्रतिकूल दिखाई दिए, तब इस साहित्य की प्रतिश्रुति में एक प्रबुद्ध आलोचनात्मक चेतना इसे स्वीकारती है, उसे पहचान देती है' [रेखांकन उनका नहीं है]। इसी संदर्भ में थोड़ा आगे चलकर वे अपना निष्कर्ष—कथन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—'और **इस** स्वीकरण से ही नई आलोचना जन्म लेती है।'

डा० देवी शंकर अवस्थी का यह भी कहना था कि समसामयिक साहित्य की आलोचना को पूरे ऐतिहासिक परिदृश्य में मूल्यांकित करने का प्रश्न प्रधान नहीं, प्रधान बात यह है कि नए साहित्य की तात्कालिक पहचान की जाए। ऐतिहासिक परिदृश्य में साहित्य के मूल्यांकन को उन्होंने नकारा नहीं था। न ही परम्परा के पुनर्मूल्यांकन के प्रति कोई उदासीनता बरती थी, तथापि नए साहित्य की तात्कालिक, पहचान (यानी, तत्काल-पहचान) और उसके अविलम्ब स्वीकरण को अपने आलोचन कर्म का एक अहम नुक्ता बनाया था। फिर वह नया साहित्य चाहे वाम-क्षेत्र में लिखा जा रहा था अथवा दक्षिण-क्षेत्र में। उस समय यह एक तरह से ऐतिहासिक अनिवार्यता थी क्योंकि दोनों खेमों के ययाति नई पीढ़ियों से उनका यौवन, उनकी ऊर्जा छीन लेना चाहते थे। यह एक तरह की ऐसी अनिवार्यता थी जो समकालीनता का आग्रह (दुराग्रह नहीं, सत्याग्रह नहीं, पूर्वाग्रह भी नहीं) और तकाज़ा ले कर उपस्थित हुई थी। यह वह युग था जब छायावाद तक के साहित्य का ही जायज़ा लिया जाता था। डा० देवी शंकर अवस्थी के ही शब्दों में 'हजारी प्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र, नन्द दुलारे वाजपेयी और रामविलास शर्मा जैसे नितांत भिन्न आलोचक नए साहित्य की चर्चा करते समय अपनी प्रशंसा अधिक से अधिक गिरिजाकुमार माथुर को दे पाते हैं जो कि नए साहित्य के सबसे पुराने भावबोध वाले कवि थे।'(रचना आलोचना : अंतराल के प्रश्न पर पुनर्विचार)।

नए साहित्य के प्रति आग्रहशील होने के साथ-साथ वे साहित्य में **परम्परा की अविच्छिन्नता के प्रति भी कम आग्रहशील नहीं थे।** मध्यम मार्गी होने के नाते वे किसी भी मत्तव्य को अतिवाद की सीमा पर नहीं जाने देते थे। यही उनकी द्वंद्वात्मकता और मध्यस्थता का लक्षण था। उदाहरण के लिए उनका अभिमत था कि नई आलोचना समसामहिक साहित्य के प्रति अपने दायित्व को पूरा कर रही है, पर उसका एक दूसरा दायित्व भी है कि **तमाम नए साहित्य के अनुकूल पुराने साहित्य की भी पुनर्व्यस्था दे,** उसका पुनर्मूल्यांकन करे। और पुनर्मूल्यांकन संबंधी दायित्व एकदम उपेक्षित रहा है। ऐसी धारणा उसी व्यक्ति द्वारा व्यक्त की जा सकती है जो उभयपक्षी हो, द्वंद्वात्मक हो और मध्यस्थता करने की योग्यता रखता हो; जिसकी मन्शा निश्छल हो तथा जो अपने विवेक और संविवेक का भरसक उपयोग करने में सक्षम हो।

समकालीनता संबंधी उनकी अवधारणा यह थी कि वे समकालीन साहित्य को प्राचीन काल से चले आ रहे साहित्य की अविच्छिन्न परंपरा के एक अंग के रूप में देखते थे लेकिन वे **अतीत के साक्षात्कार को समकालीन साहित्य के अन्तर्गत तभी शामिल करते थे जब वह साक्षात्कार समकालीनता** के सांचे में ढल कर प्रस्तुत हो। 'समकालीनता का संदर्भ और आंतरिक अध्ययन विधि' शीर्षक अपने लेख में वे कहते हैं— 'उर्वशी की अपेक्षा 'साकेत' इसीलिए मुझे महान रचना लगती है कि 'उर्वशी' कार उस कारण को जीवन की प्रसंगानुकूलता नहीं दे सका; जबकि 'साकेत' कार ने काव्य को संयुक्त परिवार के जिस-जिस घटन-विघटन के आधार पर अर्थवान बनाया है, वह उसे 'मानस' कार से एकदम भिन्न भूमि पर खड़ा करता है। यानी इस लेख की शब्दावली में 'उर्वशी' की अनुभूति अपेक्षाकृत अप्रामाणिक है। समकालीनता की इस पड़ताल में इस प्रकार अनुभव की प्रामाणिकता ही नहीं अनुभव की अद्वितीयता भी एक अंश तक निहित है।'

अनुभव की प्रामाणिकता और अद्वितीयता का वे चलताऊ मुहावरे की तरह प्रयोग नहीं करते। इस प्रयोग के पीछे अवस्थी जी **साहित्यकार की साधनावस्था के प्रति अपना गहरा सरोकार व्यंजित कर जाते हैं।** यहां आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की याद आ जाना और साहित्य की सिद्धावस्था और साधनावस्था वाला उनका प्रकरण मस्तिष्क में कौंध उठना स्वाभाविक है क्योंकि इस संदर्भ में डा० देवी शंकर अवस्थी ने जो उदाहरण दिया वह उनके उपर्युक्त गहरे सरोकार की पुष्टि तो करता ही है उसे खुलासा भी कर देता है।

'मान लीजिए कि एक व्यक्ति पहाड़ की तलहटी में खड़ा हो कर ही यह कहता है कि पहाड़ के उस ओर भी ऐसी ही तलहटी है और एक व्यक्ति तमाम ऊंचाई को चढ़कर, भाग कर उस ओर की तलहटी को देखता है। क्या दोनों का अनुभव एक ही होगा— निष्कर्ष भले ही एक हो। ..... मेरे लिए यह 'च्यूइंग गम' (Chewing gum) नहीं है, प्रखर बौद्धिकता एवं गहरी संवेदन शीलता, यात्रा और खोज द्वारा आयत्त करने की साधना है, और इसका कोई शार्टकट नहीं है।' ('आधुनिकता और भारतीयता' शीर्षक लेख)

आधुनिकता के जंगल से गुज़रकर ही हम भारतीयता की यात्रा कर सकते हैं। उनके अनुसार आधुनिकता से बचाव का कोई रास्ता नहीं है। वे स्टेफन स्पेंडर वाले आधुनिकतावादी अर्थ में समकालीनता और आधुनिकता को विभाजित नहीं करते। आधुनिकता और आधुनिकतावाद में यूं भी अंतर करना ज़रूरी है उसी तरह जैसे प्राचीनता और प्राचीनतावाद में, कला और कलावाद में; विचार और विचारवाद में, भाव और भाववाद में, बुद्धि और बुद्धिवाद में तथा रीति और रीतिवाद में।

कलाओं की काल सापेक्ष अभिलक्षणाओं की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि मध्ययुग की कलाओं का स्वर धार्मिक था। उसी प्रकार आधुनिक कलाओं का मूल स्वर 'विडंबना' (आयरनी) हो गया है। किन्तु 'किसी वस्तु का विडंबित प्रयोग उसका मज़ाक उड़ाना नहीं होता, वह ऐसी कलात्मक दृष्टि भी देता है जो तमाम मानदंडों को नियंत्रित या संक्रमित करती है—वह 'अतिमा दृष्टि' भी होती है।' ('आधुनिकता और भारतीयता') ज़ाहिर है कि **अतिमा दृष्टि** को पहचान लेने वाला दृष्टिकोण आधुनिकता-वादी नहीं होता, अलबत्ता आधुनिक वह हो सकता है।

डा० अवस्थी **'भारतीयता'** को प्राचीनता का पर्याय नहीं मानते। वे उसे एक अविच्छिन्न परम्परा के संदर्भ में ही स्वीकार करते हैं। साहित्य के क्षेत्र में 'परंपरा' के प्रभावशाली प्रयोग के लिए वे भाषा के माध्यम को तरजीह देते हैं। कुंवर नारायण की एक कविता 'नीली सतह पर' का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि 'नई कविता के सबसे अधिक विदेशी लगने वाले कवि कुंवर नारायण की भाषा में निषेधात्मक शब्दों और ऐसे प्रयोगों का बाहुल्य है, जो भारतीय चिंतन परम्परा के परिचायक हैं।

इसी तरह साहित्य में **'ईमानदारी'** का प्रयोग वे मूल्य निर्णय के लिए करते हैं जिससे यह मालूम किया जा सके कि रचनाकार कविता के विविध तत्वों को संघटित करने में कितना सफल हुआ है।

'भावुकता' के बारे में उनका दृष्टिकोण यह है कि नए साहित्य में पुराने ढंग की भावुकता का चित्रण नहीं होना चाहिए। तथापि हर सामाजिक सहानुभूति, करुणा और संवेदना को व्यंजित करने वाली भावमयता या भावुकता का वे बहिष्कार नहीं करते। त्रिलोचन के सानेटों के संग्रह 'दिगंत' की समीक्षा करते हुए कहते हैं—आज का कवि पुरानी भावुकता से दूर हटता है, पर प्यार और सहानुभूति जैसी भावनाएं उसके हृदय की वैसी ही अमूल्य निधियां हैं, वह उनका प्रदर्शन नहीं करता तथा तटस्थ भाव से देख भी सकता है। यह **तटस्थता** तथा निर्लेपता रचनाकार की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है और नए काव्य के सबसे **सशक्त** स्वरों में से एक है। तथापि विष्णु प्रभाकर की 'विवादास्पद' कहानी 'धरती अब भी घूम रही है' संबंधी विवाद में वे विष्णु प्रभाकर के प्रति सहानुभूति का परिचय देते हैं और उस कहानी को गलदश्रु भावुकता की कहानी मानने वाले समीक्षकों से असहमत होते दिखाई देते हैं।

''समकालीनता का संदर्भ और आन्तरिक विधि'' शीर्षक अपने लेख में वे दो प्रकार के लेखकों का उल्लेख करते हैं—

—समसामयिक चतुर कलाकार और प्रतिभाशाली कलाकार। इतिहास साक्षी है कि समसामयिक नए साहित्य में ऐसे कई लेखकों ने अपने इर्द-गिर्द चकाचौंध का प्रभामंडल बुना या बुनवा लिया, तथापि यह उजागर हो ही गया कि वे जितने चतुर हैं उतने प्रतिभाशाली नहीं। यही बात कुछ समीक्षकों पर भी लागू होती है। देवी शंकर अवस्थी 'चतुर' और 'प्रतिभाशाली' दोनों तरह के लेखकों के अन्तर को बखूबी पहचानते थे।

देवीशंकर अवस्थी अपने ढंग के एक मौलिक साहित्यचिंतक थे।

मौलिकता उन्होंने व्यावहारिक समीक्षाओं द्वारा अर्जित की थी। अपने तत्कालीन अन्य समीक्षकों की भांति वे केवल सैद्धान्तिक आलोचन की परिधि में नज़रबंद रहने वाले आलोचक नहीं थे। किसी भी महत्वपूर्ण रचना की व्यावहारिक पड़ताल करने और पुस्तक समीक्षाएं लिखने में वे किसी तरह की हत्तक महसूस नहीं करते थे। भारत भूषण अग्रवाल के कविता -संग्रह 'ओ प्रस्तुत मन', धर्मवीर भारती के कविता-संग्रह 'सात गीत वर्ष' नरेश मेहता के कविता संग्रह 'वन पारवी सुनों, श्री कांत वर्मा के कविता संग्रह 'भटका मेघ' भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र', अमृत लाल नागर के उपन्यास 'बून्द और समूद्र', भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास 'सत्ती मैया का चोरा' हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'चारू चद्र लेख' आदि पर लिखी गई अपनी पुस्तक समीक्षाओं द्वारा उन्होंने व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किए और पुस्तक समीक्षा जैसी उपेक्षित विद्या को गरिमा प्रदान की। अपने समय की कुछ महत्वपूर्ण कृतियों पर सहज और मौलिक ढंग से विचार विमर्श करके जहां एक ओर उन्होंने नए साहित्य के प्रति अपने सजग सरोकार व गहरी सम्पृक्ति का परिचय दिया वहीं दूसरी और उन्होंने हिन्दी की व्यावहारिक समीक्षा को एक गुणात्मक मंज़िल तक पहुंचाया।

देवीशंकर अवस्थी की उपर्युक्त व्यावहारिक समीक्षाएं रचना और आलोचना के बीच उसी गहरी सम्पृक्ति का प्रमाण और परिणाम थीं जिसका कि वे अपने लेखों में बारंबार ज़िक्र करते हैं। कुछ आलोचक अपने लेखों में रचना और रचनाकार के प्रति निर्मम रहने की दुहाई देते हैं, जो एक तरह का अतिवाद ही है। इस निमर्मता का ही तकाजा था कि नामवर सिंह जैसे आलोचक निर्ममता के प्रतिमान पर अश्वारोही की तरह कुलांचें भरते हुए विष्णु प्रभाकर की कहानी 'धरती अब भी घूम रही है' की लगभग खिल्ली उड़ाते हैं जबकि देवीशंकर अवस्थी रचनाकार के साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं करते। इस संदर्भ में देवी शंकर अवस्थी कहते हैं—"कहानियों की बात करते समय नामवर सिंह के मन में 'उपन्यास' रहता है। लोगों ने उन पर कविता के नज़रिए से कहानी पढ़ने का आरोप लगाया है, पर इन टिप्पणियों से मुझे लगता है कि वह उपन्यास की दृष्टि से कहानी पढ़ते हैं। इसी कारण 'एक' की कहानी का खंडन, जीवन सत्य की उपलब्धि या विराट ताजमहल की समग्रभावना की इतने महत्वपूर्ण ढंग से चर्चा, करते हैं तथा अनुभूति के चित्रण से तनिक घबराते से दिखते हैं। (कहानी अच्छी और नई' शीर्षक लेख से)

यहां देखना यह है कि नामवर सिंह 'मार्क्सवादी आलोचक' होकर भी बुद्धिवाद के शिकार हो जाते हैं, परम बौद्धिक होकर लगभग संवेदन-शून्य होने लगते हैं (यानी बुद्धि और संवेदना के द्वंद्वात्मक निर्वाह का अनुशासन त्याग देते हैं)। यह एक अतिवाद से डट कर दूसरे अतिवाद की ओर बहने जैसा है जिसे लेनिन ने Floating between two extremes कह कर विवेचित किया था। यानी ऐसे बुद्धिजीवी तैरते नहीं, मात्र बहते हैं। (They never *swim*, they *float* and *float* अथवा यूँ कह सकते है कि वे चेतनाशून्य पदार्थ की भांति तिरते रहते हैं। नामवर सिंह की दूसरे अतिवाद की ओर तिरने जैसी प्रवृत्ति का उदाहरण निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' के बारे में की गई उनकी टिप्पणी है जिसमें कहानी में उभरे प्रश्न 'क्या करें' की तुलना वे लेनिन के प्रश्न 'हम क्या करें' (What is to be done) से करने लगते

दूसरी ओर, मार्क्सवादी न होते हुए भी, देवीशंकर अवस्थी अपनी समीक्षाओं में अतिवादी रूझानों का परिचय नहीं देते और बराबर द्वंद्वात्मकता का निर्वाह किए रहते हैं—भाव और विचार, ज्ञान और संवेदना, प्राचीनता और आधुनिकता, तटस्थता और सहानुभूति आदि विरूद्धों की द्वंद्वात्मकता का संजीदगी के साथ निर्वाह करने का निश्छल और सजग प्रयास उनके आलोचन कर्म में प्रायः विद्यमान रहता है। यह गुण एक आलोचक को यथार्थवादी कहने के लिए मुझे विवश करता है। देवीशंकर अवस्थी अपनी समीक्षाओं में न तो बुद्धिवाद से ग्रस्त दिखाई देते हैं न भाववाद से, न ज्ञानवाद से न संवेदनावाद से, वे बुद्धि और भाव अथवा ज्ञान और संवेदना का द्वंद्वात्मक निर्वाह करने से जान पड़ते है। करते और आलोचना के बीच गहरी सम्पृक्ति, लगाव और सरोकार का ही यह गुणनफल है। उनकी समीक्षाओं में ये गुण व्यवहारिक समीक्षा करते रहने के निश्छल और सजग सर्जनात्मक कर्म के कारण विकसित हुए।

जब देवीशंकर अवस्थी अपने उपर्युक्त सर्जनात्मक कर्म में तल्लीन होकर कार्यरत थे तभी काल ने उन्हें कवलित कर दिया। असमय में उनका परिदृश्य से अकस्मात अनुपस्थित हो जाना हिन्दी आलोचना के लिए अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण रहा। उसी समय पश्चिम में उत्तर आधुनिकतावाद का श्रीगणेश होने लगा था लेकिन भारत में उसकी पदचाप अभी सुनाई नहीं पड़ी थी। यह वह समय था जब हमारे बहुत से प्रगतिशील और गैर-प्रगतिशील आलोचक/समीक्षक **आधुनिकतावादी** रूझानों से अभिभूत होने लगे थे। नामवर सिंह की 'कविता के नए प्रतिमान' ऐसे ही आधुनिकतावादी रूझानों से अभिभूत प्रगतिशील एवं गैर प्रगतिशील आलोचकों/समीक्षकों के 'सहयोगी लेखन' का परिणाम थी। लेकिन उनके पूर्व देवीशंकर अवस्थी अपने मौलिक सहज और सर्जनात्मक साहित्यालोचन द्वारा कुछ ऐसे निष्कर्षों की ओर अग्रसर हो रहे थे जो मुझे **उत्तर आधुनिकतावादी** निष्कर्षों से तुलना करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने 'रचना और आलोचना' शीर्षक लेख में यह मान्यता प्रस्तुत की—

"इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि रचनाकाल में कोई कृति कर्त्ता का अनुभव ही है, पर रच जाने के बाद उसका एक स्वतंत्र अस्तित्व हो जाता है और उस समय स्वयं रचनाकार एक विशिष्ट पाठक मात्र बन जाता है..... उस रचित कृति को छोड़कर हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं होता जिसके आधार पर उस सचेत अनुभव या अभिप्रायः को हम प्रामाणिक रूप से जान सके। ..... वास्तव में कृति लेखक द्वारा पाठकों को दिया गया कोई संदेश विशेष न होकर एक स्वतंत्र सत्ता है।"

उपर्युक्त कथन को **उद्धत करने** का यह आशय नहीं है कि वे **उत्तर-आधुनिकतावादी** चिन्तन की ओर अग्रसर थे; यह भी नहीं कि उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन में कमियां नहीं हैं। आशय केवल इतना है कि देवीशंकर अवस्थी अपने साहित्य चिंतन में उत्तर-आधुनिकतावादी चिन्तकों के समानान्तर (उनके अनुयायी नहीं) निजी, मौलिक और सहज सर्जनात्मक ढंग से कुछ ऐसे निष्कर्षों की ओर आगे बढ़ रहे थे जो विवादास्पद होते हुए भी हिन्दी आलोचना के लिए अर्थवान और प्रासांगिक होते तथा हिन्दी साहित्य।लोचन की समकालीन स्थिति को देखते हुए गुणात्मक रूप से मौलिक, मूल्यवान, तर्क-संगत, द्वंद्वात्मक और रचना-सापेक्ष होते। यदि आज वे हमारे बीच होते तो मार्क्सवादी, आधुनिकतावादी, उत्तर-आधुनिक

शेष पृष्ठ 48 *पर*

विश्व हिंदी दर्शन

पंचम विश्व हिंदी सम्मेलनः एक रिपोर्ट

—अरूणाचल प्रदेश के महामहिम
राज्यपाल श्री माता प्रसाद

[भारत से हजारों मील दूर दक्षिणी अमेरीका के कैरेबियन सागर के द्वीप त्रिनीडाड एवं टुबैगो की राजधानी में पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन 4 अप्रैल से 8 अप्रैल, 1996 तक आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के लिए विभिन्न देशों ने अपने-अपने प्रतिनिधि मंडल भेजे। भारत के प्रतिनिधि मंडल में देश के गणयमान्य हिंदी विद्वान, लेखक और शिक्षा शास्त्री सम्मिलित थे। इस प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व अरूणाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री माता प्रसाद ने किया। उन्हीं की लेखनी से राजभाषा भारती के पाठकों के लिए प्रस्तुत है उक्त सम्मेलन के संबंध में एक विस्तृत रिपोर्ट।

संपादक]

ट्रिनीडाड-टुबैगो की राजधानी पोर्ट आफ स्पेन में पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन 4 अप्रैल से 8 अप्रैल, 1996 ई॰ को संपन्न हुआ। इसके पूर्व चार विश्व हिन्दी सम्मेलन संपन्न हो चुके थे। पहला विश्व हिन्दी सम्मेलन सन् 1975 ई॰ में नागपुर (भारत), सन् 1976 ई॰ में दूसरा सम्मेलन मारीशस के महात्मा गांधी संस्थान में संपन्न हुआ था। सन् 1983 ई॰ में तीसरा विश्व हिन्दी सम्मेलन नई दिल्ली और सन् 1993 ई॰ में चौथा विश्व हिन्दी सम्मेलन मारीशस में सम्पन्न हुये।

चौथे विश्व हिन्दी सम्मेलन, मारीशस में ही ट्रिनीडाड-टुबैगो के भाषा निधि के अध्यक्ष श्री चंका सीताराम जी ने सन् 1996 ई॰ में अपने देश की राजधानी पोर्ट आफ स्पेन में पांचवां विश्व हिन्दी सम्मेलन करने का निमंत्रण दिया। ट्रिनीडाड-टुबैगो में 30 मई सन् 1995 ई॰ से 30 मई सन् 1996 ई॰ तक डेढ़ सौ वर्षों पूर्व यहां भारतवासियों के आगमन के उपलक्ष्य में विभिन्न समारोह आयोजित होने थे। उसी अवसर पर विश्व हिन्दी सम्मेलन का प्रस्तावित समय रखा गया था।

ट्रिनीडाड-टुबैगो में श्री चंका सीताराम ने भाषा निधि के सदस्यों और वेस्ट इंडीज यूनीवर्सिटी के सहयोग से विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजन समिति का निर्माण किया। ईस्टर की छुट्टियों में वेस्ट इंडीज यूनीवर्सिटी में ही 4 अप्रैल से 8 अप्रैल, 1996 ई॰ तक विश्व हिन्दी सम्मेलन करने का निर्णय किया। इसकी सूचना आयोजन समिति ने भारत सरकार और ट्रिनीडाड-टुबैगो की सरकारों को दी। श्री चंका सीताराम जी इसी संबंध में भारत भी आये।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के कुछ दिनों पूर्व ही भारत एवं ट्रिनीडाड-टुबैगो के सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत बनाने के लिये, भारत से गुलाब बाई नौटंकी कला केन्द्र, कानपुर के कलाकार और कुछ चुनी हुई फिल्में वहां भेजी गई जिन्होंने वहां विभिन्न क्षेत्रों में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन संबंधी भारतीय प्रतिनिधि मंडल

भारत सरकार के आदेशानुसार ट्रिनीडाड-टुबैगो की राजधानी पोर्ट आफ स्पेन में 4 अप्रैल से 8 अप्रैल, 1996 ई॰ तक होने वाले पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लेने के लिये भारत सरकार के प्रतिनिधि-मंडल के रूप में निम्न लोगों ने भाग लियाः—

1. श्री माता प्रसाद, राज्यपाल, अरुणाचल प्रदेश — नेता
2. श्री जी॰ आर॰ मट्टु, संसद सदस्य राज्य सभा, जम्मू और कश्मीर — सदस्य
3. डा॰ हिमांशु जोशी, कवि, लेखक एवं पत्रकार, नई दिल्ली — सदस्य
4. डा॰ केदारनाथ सिंह, प्रो॰ हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली — सदस्य
5. श्री गिरीराज किशोर, लेखक, कानपुर — सदस्य
6. प्रो॰ इन्द्रनाथ चौधरी, सचिव केन्द्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली
7. श्री वी॰ पी॰ मुहम्मद कुंजु मेतरो, प्रोफेसर, —सदस्य विभाग केरल विश्वविद्यालय — सदस्य
8. डा॰ परमानन्द पाचाल, संपादक, नागरी संगम, नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली — सदस्य
9. श्री शेषेन्द्र शर्मा, प्रसिद्ध कवि, हैदराबाद — सदस्य
10. श्री गोविन्द मिश्र, उपन्यासकार, नई दिल्ली — सदस्य
11. श्रीमती कमला सिंधवी, कवयित्री, राजस्थान — सदस्य
12. डा॰ रमा सिंह, लेखिका एवं कवयित्री, लखनऊ — सदस्य

स्वयं सेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि

13. श्री राहुलदेव, संपादक, जनसत्ता, नई दिल्ली
14. श्री जी॰ एल॰ अग्रवाल, संपादक, पूर्वांचल प्रहरी, गोवाहाटी, असम

हिन्दी निधि की ओर से सम्मान हेतु विशेष आमंत्रित

15. डा० विद्यानिवास मिश्र, पूर्व संपादक, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली
16. डा० रामचन्द्र राव, हिन्दी विद्वान, केरल

अधिकारीगण

17. श्री देव स्वरूप, संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग, नई दिल्ली
18. श्री अभिमन्यु सिंह, संयुक्त सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय
19. डा० गंगा प्रसाद विमल, निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।

प्रतिनिधि मंडल के निम्नलिखित सज्जन किन्हीं कारणों से सम्मेलन में भाग लेने नहीं जा सके:—

1. श्री सी० डी० त्रिपाठी, सचिव, राजभाषा विभाग — सदस्य
2. श्री सुधाकर पाण्डेय महामंत्री, नागर प्रचारिणी सभा, वाराणसी — सदस्य
3. डा० श्रीलाल शुक्ल, उपन्यासकार, लखनऊ — सदस्य
4. श्री पी० आर० श्रीनिवास शास्त्री, हिन्दी विद्वान — सदस्य
5. श्री बेलायुधन नायर, अध्यक्ष, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मैसूर — सदस्य
6. श्रीमती मृणाल पाण्डेय, पत्रकार, संपादक, विचार हिन्दुस्तान — सदस्य
6. श्री आलोक मेहता, पत्रकार, संपादक, हिन्दुस्तान — सदस्य

इनके अतिरिक्त निम्न विद्वान भी जो सम्मान हेतु आमंत्रित किये गये थे किन्हीं कारणों से वहां नहीं जा सके:—

1. डा० नामवर सिंह,
2. डा० लोकेश चन्द्र
3. डा० नगेन्द्र

पोर्ट आफ स्पेन पहुंचने पर सर्वप्रथम मैं भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता की हैसियत से 4 अप्रैल, 1996 ई० को ट्रिनीडाड-टुबैगो के राष्ट्रपति महामहिम नूर मोहम्मद हसनाली से मिलने श्री इन्द्रनाथ चौधरी और श्री जी० एल० अग्रवाल के साथ उनके निवास पर गया। उन्हें मैंने भारत सरकार के सद्भावना के रूप में महात्मा गांधी की एक मूर्ति, एक कलात्मक बिदरी बाक्स भेंट करते हुये भारत के महामहिम राष्ट्रपति भारत के माननीय प्रधान मंत्री और भारत की जनता की ओर से वहां के महामहिम राष्ट्रपति, माननीय प्रधान मंत्री और जनता के लिए शुभकामनायें दी। अरूणाचल प्रदेश की तरफ से भी उनका यहां की पारम्परिक वेश-भूषा तथा खाता, गालुक, गाले और ऊनी शाल देकर सम्मनित किया। वहां के महामहिम राष्ट्रपति ने भी भारत के महामहिम राष्ट्रपति, माननीय प्रधान मंत्री और यहां की जनता के लिये अपनी शुभकामनायें दीं।

5 अप्रैल, 1996 ई० को ट्रिनीडाड-टुबैगो के प्रधानमंत्री माननीय बसुदेव पाण्डेय को सम्मान देने के लिए श्री इन्द्रनाथ चौधरी और श्री जी० एल० अग्रवाल के साथ मिला, और उन्हें भी भगवान बुद्ध की प्रतिमा, बिदरी बाक्स, भारत की ओर से भेंटकर भारत के प्रधानमंत्री और जनता की ओर से शुभकामनाएं दी। अरुणाचल प्रदेश की तरफ से मैंने वहां के प्रधानमंत्री का अरुणाचल की परम्परा के अनुसार खाते, गालुक, गाले और ऊनी शाल द्वारा सम्मानित किया। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की।

पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन का उद्घाटन 4 अप्रैल, 1996 ई० को सान फरनांडो, ट्रिनीडाड में नपरीमा बाउल में सम्पन्न हुआ। उद्घाटन कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्वलन और दोनों देशों के राष्ट्रीय गान से हुआ। उद्घाटन के अवसर पर ट्रिनीडाड-टुबैगो गणराज्य के राष्ट्रपति महामहिम श्री नूर मोहम्मद हसनाली, प्रधान मंत्री श्री बसुदेव पांडेय, विदेश मंत्री श्री राल्फ माराज, मारीशस प्रतिनिधि मंडल के नेता माननीय धर्म ज्ञान नाथ, व्यापार और जहाजरानी मंत्री, नेपाल के आपूर्ति मंत्री माननीय गजेन्द्र नारायण सिंह, सुरीनाम प्रतिनिधि मंडल की नेता सुश्री इंदिरा देवी, सदस्य, दी नेशनल एसेम्बली आफ दी रिपब्लिक सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि मंडल के नेता श्री फारुक हसन, निदेशक, शिक्षा विभाग, ट्रिनीडाड-टुबैगो में भारत के उच्चायुक्त श्री जे० डोडा मणि, वेस्ट इंडीज विश्व विद्यालय के कुलपति प्रो० जी० रिचर्ड्स, भारत के ब्रिटेन में उच्चायुक्त श्री लक्ष्मीमल सिंधवी, बेनेजुइला में भारत के राजदूत श्री बी० पी० सिंह तथा भारत एवं विश्व के अनेक देशों से आए जाने-माने हिन्दी लेखक और विद्वान उपस्थित थे। वेस्ट इंडीज विश्व विद्यालय के उप-कुलपति प्रो० जी० रिचर्ड्स ने स्वागत भाषण दिया। हिन्दी निधि के अध्यक्ष श्री चंका सीता राम ने भारत सरकार द्वारा दी गई सहायता के प्रति आभार व्यक्त करते हुये पोर्ट आफ स्पेन में महात्मा गांधी सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना और सक्रिय रूप से कार्य आरंभ करने के लिए भारत की सराहना की। इसके उपरान्त मैंने भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता के रूप में श्रोताओं को संबोधित किया और विश्व धरातल पर हिन्दी की भूमिका पर प्रकाश डाला। अपने स्वागत भाषण में जब मैंने कुछ वाक्य अवधी मिश्रित भोजपुरी में बोले तो सूरीनाम और मारीशस के प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों ने तालियां बजाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। ट्रिनीडाड-टुबैगो गणराज्य के प्रधान मंत्री ने अपने उद्घाटन भाषण में सम्मेलन के लिये भारत सरकार द्वारा दी गई सहायता की प्रशंसा की और कहा कि इससे दोनों देशों के बीच परम्परागत रूप से चले आ रहे सौहार्द्रपूर्ण सांस्कृतिक संबंध और मजबूत होंगे। उन्होंने पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन के शुभारंभ की घोषणा की, इसके बाद उन्होंने पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर भारत सरकार (विदेश मंत्रालय) द्वारा प्रकाशित स्मारिका का भी विमोचन किया । इस अवसर पर भारत और ट्रिनीडाड-टुबैगो के लोक कलाकारों ने सांस्कृतिक कार्यक्रमों का प्रदर्शन किया।

5 अप्रैल, 1996

प्रातः 9 बजे सम्मेलन की कार्यवाही शुरू हुई। वेस्ट इंडीज विश्वविद्यालय के जे० एफ० सभागार में, 'हिन्दी के बढ़ते चरण' नामक चित्र व पुस्तक प्रदर्शनी जो भारत सरकार के डी० ए० वी० पी० द्वारा लगाई गई थी, का उद्घाटन ट्रिनीडाड-टुबैगो के शिक्षा मंत्री को करना था, लेकिन वे संसद की बैठक मे व्यस्त होने के कारण वहां नहीं आ सकें। अतः इस प्रदर्शनी का उद्घाटन मेरे हाथों संपन्न कराया गया। इस प्रदर्शनी में 60 पैनलों में हिन्दी के विकास की चित्रमय झांकी प्रस्तुत की गई थी, जिसमें देवनागरी लिपि, प्राचीन पाण्डुलिपियों से लेकर आधुनिक यांत्रिक सुविधाओं, हिन्दी की ऐतिहासिक एवं अद्यतन पत्रिकाओं, मूर्धन्य साहित्यकारों के चित्र-कोलाज और म्युरल प्रस्तुत किये गये थे। विभिन्न विषयों पर हिन्दी की पुस्तकें जिनमें विदेशी विद्वानों द्वारा हिन्दी में लिखी गई पुस्तकें भी थीं, प्रदर्शित की गई थी। प्रदर्शनी समाप्त होने पर

वहां की हिन्दी निधि को चित्र एवं पुस्तकें भारतीय हाई कमीशन द्वारा दिया गया, जिससे वे उसका उपयोग वहां कर सके।

इसी दिन भारत सरकार के उपक्रम सी-डेक की ओर से एक कम्प्यूटर साफ्टवेयर प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था, जिसमें हिन्दी में कार्य करने के लिए विकसित विभिन्न साफ्टवेयरों का प्रदर्शन किया गया। मैंने नेपाल से आए सरकारी प्रतिनिधि मंडल के नेता वहां के आपूर्ति मंत्री श्री गजेन्द्र नारायण सिंह से इस प्रदर्शनी का उद्घाटन करने का अनुरोध किया जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार करके इस प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। तत्पश्चात सामूहिक सत्र हुआ जिसकी अध्यक्षता भारत के पं० विद्यानिवास मिश्र ने की। पं० विद्यानिवास मिश्र ने हिन्दी को एक जीवन शैली, एक आस्था, एक विश्वास की संज्ञा देते हुये कहा कि जिस व्यक्ति में विश्वास है वह किसी से पराजित नहीं हो सकता और उसी विश्वास का नाम हिन्दी है। उन्होंने कहा हिन्दी ने उपनिवेश के खिलाफ आवाज उठाकर सब से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है लेकिन अभी तक यह व्यवहार की भाषा नहीं बन पाई है। इसके बाद अपरान्ह 1.20 बजे दो समानान्तर 12 शैक्षिक सत्र हुए, जिनमें एक का विषय था 'लॉगवेज आइडेंटिटी' तथा दूसरे का 'एक्सपेरीमेन्ट्स विद् दी ड्रामा'।

इसी दिन रात्रि में सम्मेलन की आयोजक संस्था हिन्दी निधि ने प्रसिद्ध हिल्टन होटल में ट्रिनीडाड-टुबैगो और विश्व के अन्य देशों के हिन्दी विद्वानों के सम्मान में अभिनंदन समारोह आयोजित किया। जिसमें 18 विद्वानों को सम्मानित करना था, लेकिन उक्त अवसर पर 14 विद्वान ही उपस्थित थे। इस अवसर पर न पहुंचने वालों में तीन भारत के और एक डॉ० ओदेलन स्मेकल थे। अभिनंदन समारोह मे ट्रिनीडाड और टुबैगो के प्रधान मंत्री, विदेश मंत्री, हिन्दी निधि के अध्यक्ष श्री चंका सीताराम, वेस्ट इंडीज विश्वविद्यालय के उप-कुलपति प्रो० जी० रिचर्ड्स, विभिन्न देशों से आये सरकारी और गैर-सरकारी प्रतिनिधि मंडलों के सदस्य और हिन्दी विद्वान उपस्थित थे। ट्रिनीडाड-टुबैगो के प्रधान मंत्री श्री बसुदेव पाण्डेय, विदेश मंत्री श्री राल्फ माराज, भारत के हाई कमिश्नर श्री जे० डोडा मणि और मेरे द्वारा विद्वानों को सम्मानित कराया गया। सम्मान में एक-एक ऊनी शाल, एक-एक स्मृति चिन्ह और उसके साथ-साथ एक सम्मान पत्र प्रदान किये गये। करतल ध्वनि से विद्वानों का स्वागत हुआ। उस समय का वातावरण बड़ा मनोहारी और आकर्षक था।

आयोजन समिति के अध्यक्ष श्री चंका सीताराम ने सभी के प्रति आभार व्यक्त किया।

6 अप्रैल, 1996

दिनभर वेस्ट इंडीज विश्वविद्यालय के सभाकक्ष में सामूहिक सत्र के पश्चात अन्य कक्षों मे विभिन्न विषयों पर समानान्तर सत्र चले, जिनमें 40 विषयों पर विचार विमर्श हुये। इनमें अप्रवासी भारतीयों में हिन्दी चेतना पर विचार विमर्श का विषय प्रमुख रहा। देश-विदेश के विद्वानों ने इसमें भाग लिया। कई विषयों के अध्यक्ष मंडलों में भारतीय विद्वानों की भी भागीदारी रही। डॉ० वी० पी० मुहम्मद कुंजु मेत्तर ने भी विचार-विमर्श में भाग लिया।

अपरान्ह में ट्रिनीडाड-टुबैगो के प्रधान मंत्री माननीय बसुदेव पाण्डेय पुस्तक, चित्र और कम्प्यूटर प्रदर्शनी देखने आये । वहां चित्रों के माध्यम से उन्होंने नागरी लिपि के विकास को देखा। पुस्तक प्रदर्शनी में जब उनको, रामचरित मानस (हिन्दी) की दोहा चौपाइयों का अंग्रेजी में अनूदित ग्रंथ भेंट दिया गया तो उसे उन्होंने माथे पर चढ़ा लिया और कहा कि इसका अंग्रेजी में अनुवाद भी पद्यमय होना चाहिये।

कम्प्यूटर प्रदर्शनी में प्रदर्शित साफ्टवेयरों में उन्होंने विशेष रुचि दिखाई। आधे घंटे तक वह इसे देखते रहे। इनमें रोमन लिपि में टाइप करने पर उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ ही साथ टाइप होता देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी साफ्टवेयरों में रुचि को देखते हुये, उनके व्यक्तिगत कम्प्यूटरों में ये साफ्टवेयर लगा दिये गये।

सायंकाल 7 बजे कवि सम्मेलन का आयोजन श्रीमती कमला सिंधवी तथा अध्यक्ष मंडल के अन्य सदस्यों की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें देश-विदेश के कई कवियों ने अपनी रचनायें सुनाई। इनमें ब्रिटेन में भारत के उच्चायुक्त श्री लक्ष्मीमल सिंधवी जी भी थे।

7 अप्रैल, 1996

सारे दिन विभिन्न विषयों पर शैक्षिक सत्र हुए। सत्रों के समन्वय कर्त्ता भारतीय विद्वान प्रो० जगन्नाथ थे। इस दिन 60 विषयों पर विभिन्न कक्षाओं में अलग विचार विमर्श हुए। दोनों दिन के विभिन्न सत्रों के अध्यक्ष मंडलों में भारतीय प्रतिनिधि के सदस्य सर्व श्री डॉ० हिमांशु जोशी, डॉ० विद्यानिवास मिश्र, डॉ० केदारनाथ सिंह, श्री गिरिराज किशोर, श्री गोविन्द मिश्र, डॉ० शेषेन्द्र शर्मा, डॉ० इन्द्रनाथ चौधरी, श्री जी० आर० मट्टू सांसद, डॉ० रमासिंह, श्रीमती कमला सिंधवी भी सम्मिलित थे। इन सभी ने अपनी विद्वता से हिन्दी विद्वानों को प्रभावित किया।

इसी दिन श्री देव स्वरूप संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग के संयोजकत्व में एक मंतव्य प्रारूप समिति का गठन किया गया जिसमें तीन हिन्दी विद्वानों के साथ ही, शिक्षा विभाग के संयुक्त सचिव श्री अभिमन्यु सिंह एवं विदेश विभाग के उप-सचिव (हिन्दी) श्री पी० के० गोरावारा थे। समिति ने मंतव्यों का एक प्रारूप तैयार किया जो अगले दिन विचारार्थ सामूहिक सत्र में रखा गया।

8 अप्रैल, 1996

प्रातः 9 बजे, पहले विभिन्न कक्षों में अलग-अलग विषयों पर सत्र संपन्न हुए। इन सत्रों में 60 विषयों पर चर्चा हुई।

अपराह्न के सामूहिक सत्र की अध्यक्षता भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता द्वारा की गई। इसमें पारित होने वाले मंतव्यों का प्रारूप प्रस्तुत किया गया। मुख्य प्रस्ताव हिन्दी के सचिवालय की स्थापना और एक कोआर्डिनेशन कमेटी भारत और मारीशस की सरकारों द्वारा बनाने का सुझाव था। प्रतिनिधियों में केवल सरकारी प्रतिनिधियों को ही इसमें रखने का विरोध किया। बाद में सरकारी प्रतिनिधियों के साथ ही पर्याप्त मात्रा में गैर-सरकारी प्रतिनिधियों को, कोआर्डिनेशन कमेटी में रखने का संशोधन सर्व-सम्मति से स्वीकार कर लिया गया। इस प्रस्ताव के विचार-विमर्श में श्री राहुल देव और श्री लक्ष्मीमल सिंधवी ने विशेष रुचि ली। अन्य प्रस्तावों पर बहस नहीं हुई, उन्हें सर्व-सम्मति से मान लिया गया।

सम्मेलन में आगामी विश्व हिन्दी सम्मेलन करने के संबंध में दक्षिणी अफ्रीका के फारूक अहमद, नेपाल के आपूर्ति मंत्री श्री गजेन्द्र नारायण सिंह और अमरीका के प्रतिनिधियों द्वारा आमंत्रित किया गया।

आयोजक संस्था—भाषा-निधि और वेस्ट इंडीज यूनिवर्सिटी के तत्वाधान में आयोजित किया गया था। तिथि निर्धारित होने के बाद आयोजकों ने कई कठिनाइयां बताई। एक स्थिति तो यह भी आई कि यहां सम्मेलन हो सकेगा भी या नहीं। वहां की अधिकांश व्यवस्था भारत सरकार द्वारा ही की गई। यहां तक कि विश्व हिन्दी सम्मेलन के प्रचार के लिये हिन्दी अंग्रेजी के बैनर तक यही से भेजे गये।

अभी तक विश्व हिन्दी सम्मेलनों के संचालन के लिये विभिन्न कार्यक्रमों के को-आर्डिनेशन के लिये कोई भी संस्था नहीं है, जिससे किसी पर यह उत्तरदायित्व नहीं है कि विश्व हिन्दी सम्मेलन के स्थान का निर्धारण कौन करे? सम्मेलन में विभिन्न विषयों की गोष्ठियों में किन-किन विषयों पर चर्चा हो? पारित होने वाले मंतव्यों की रूप रेखा कौन तैयार करे? सम्मेलन का संचालन कौन करे? गोष्ठियों की अध्यक्षता या अध्यक्ष मंडल में कौन-कौन विद्वान होंगे? पिछले सम्मेलनों में पारित मंतव्यों के कार्यान्वयन के लिये कौन कार्यवाही करे? सम्मेलन की रिपोर्ट कौन तैयार करे और संबंधित लोगों को भेजे? जो संस्थाएं सम्मेलन का आयोजन करना चाहती हैं, उनकी आर्थिक या सांगठनिक क्षमता का पता कौन लगाये? सम्मेलन होने वाले देश की सरकार का इसमें कितना और किस तरह का सहयोग होगा। हिन्दी के विद्वानों को सम्मानित करना है तो इसे कौन तय करे? इस प्रकार कोई समन्वयक संस्था न होने से सम्मेलन में अव्यवस्था हो जाती है। पोर्ट आफ स्पेन में भी इसी कारण सम्मेलन में कुछ अव्यवस्था रही।

इसीलिये भारत के कुछ विद्वानों का विचार था कि भारत सरकार नई दिल्ली में ही एक समिति बनाकर इस कार्य को उसी के द्वारा सम्पन्न कराये, किन्तु मारीशस के प्रतिनिधि मंडल को आपत्ति थी। उनका कथन था कि पिछले सम्मेलन में मारीशस में विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना का प्रस्ताव पारित हो चुका है, इसलिये यह प्रस्ताव उसके विरुद्ध होगा। उनका यह कथन भी था कि तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में मारीशस के तत्कालीन प्रधान मंत्री सर शिवसागर राम गुलाम ने मारीशस में विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना का प्रस्ताव इसीलिये रखा था कि भारत तो हिन्दी भाषी देश है ही, मारीशस में हिन्दी सचिवालय खुलने से विश्व के अन्य देशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अधिक सहायता मिलेगी। यद्यपि अभी तक मारीशस में हिन्दी सचिवालय खोलने के संबंध में समुचित कार्यवाही नहीं हो सकी है। इस संबंध में वहां के प्रतिनिधियों ने बताया कि अब श्री शिव सागर राम गुलाम के पुत्र वहां प्रधानमंत्री बन गये हैं, इसलिये अब उस पर कार्यवाही होगी।

मारीशस की भावनाओं को ध्यान मे रखते हुये इस सम्मेलन में पारित मंतव्य के अनुसार यह निश्चय किया गया कि भारत और मारीशस हिन्दी सचिवालय खोलने के लिये और विश्व हिन्दी सम्मेलन के समस्त कार्यों के संचालन के लिये एक अन्तर -सरकारी समिति का गठन करें। इस समिति में दोनों देशों के हिन्दी के प्रति निष्ठावान गैर-सरकारी साहित्यकार पर्याप्त मात्रा में रखे जाएं। यह समिति सचिवालय और सम्मेलनों के संबंध में भारत और मारीशस सरकारों को एक विस्तृत कार्यक्रम/योजना प्रस्तुत करे।

भारत सरकार से अपेक्षा

पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन में पारित प्रस्ताव संख्या-2 पर तुरन्त कार्यवाही की जाय, जिसमें भारत और मारीशस की सरकारों को मिलकर एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकारी एवं गैर-सरकारी हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की एक समिति बनाकर उससे विश्व हिन्दी सचिवालय और विश्व हिन्दी सम्मेलनों और हिन्दी को विश्व में प्रचार-प्रसार एवं मान्यता दिलाने के संबंध में कार्य योजना प्रस्तुत करने को कहा जाय।

विश्व हिन्दी सम्मेलन या उससे संबंधित अन्य कार्यों को भारत के माननीय प्रधानमंत्री के विभाग के अन्तर्गत होना चाहिये। अभी यह कार्य भारत सरकार का विदेश मंत्रालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय और राजभाषा विभाग देखते हैं। इससे विभिन्न विभागों के समन्वय में सुविधा होगी। अच्छा हो इस कार्य को देखने की जिम्मेदारी एक ही विभाग को सौंप दी जाय।

ट्रिनीडाड-टुबैगो में स्तरीय पुस्तकों का अभाव है, वहां हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित नहीं होती हैं। इसलिये भारत से वहां हर प्रकार की पाठ्य-पुस्तकें भेजी जाय, वहां पर मैक्स मूलर भवन की तरह गांधी भवन खोलने पर विचार कर सकते हैं जहां पर हर प्रकार की हिन्दी पुस्तकें उपलब्ध हों।

भारत में एक हिन्दी सेन्टर खोला जाय, जिसमें विभिन्न देशों में हिन्दी पढ़ाने के लिये स्कालर तैयार किये जाएं। वे संबंधित देशों में जाकर हिन्दी टीचर तैयार करें।

ट्रिनीडाड—टुबैगो में 4 अप्रैल, 1996 ई० को पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह के अवसर पर भारतीय शिष्टमंडल के नेता श्री माता प्रसाद (अरूणाचल प्रदेश के राज्यपाल) का अभिभाषण

हिज एक्सीलेंसी प्रेसीडेंट, ऑनरेबल प्राइम मिनिस्टर आफ ट्रिनीडाड एण्ड टुबैगो, ऑनरेबल मिनिस्टर्स, प्रेसीडेंट ऑफ हिन्दी निधि, डिस्टिंगविश्ड स्कालर्स फ्राम वेरियस कंट्रीज, लेडीज एण्ड जेंटलमैन,।

आई हैव कम हेयर फार द काज आफ हिन्दी एण्ड एज सच इट उड बी प्रापर दैट आई शुड स्पीक इन हिन्दी, इंगलिश ट्रांसलेशन आफ वाट आई विश टू से इज बीइंग मेड एवेलेबल टू यू।

इस मनोरम द्वीप में भारतीयों के आगमन की 150 वीं जयंती के अवसर पर होने वाले इस पांचवे विश्व सम्मेलन में आप सबका अभिनंदन करते हुए मुझे परम हर्ष हो रहा है।

विश्व हिन्दी सम्मेलनों की परंपरा में इस पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन का महत्व इस कारण भी बढ़ जाता है कि भारत से बाहर उत्तर तथा दक्षिण अमरीका के ठीक मध्य में इसका आयोजन हो रहा है। इससे पहले जो चार सम्मेलन हुए हैं, उनमें से दो भारत में और दो मारीशस में हुए हैं। भारत की जनता तथा वहां की सरकार हमारे राष्ट्रपति महामहिम डा० शंकर दयाल शर्मा तथा प्रधान मंत्री माननीय पी० वी० नरसिंह राव की ओर से एवं अरूणाचल प्रदेश के राज्यपाल के नाते स्वयं मैं अपनी ओर से हार्दिक बधाई यहां की सरकार और जनता को देता हूं।

डेढ़ सौ वर्ष के इस जयंती वर्ष में ट्रिनीडाड और टुबैगो की मिलीजुली संस्कृति की मैं सराहना करता हूं कि जनतांत्रिक परंपरा में भारतीय संस्कृति के कैरिबियन स्वरूप का विकास हुआ है। हमें अपने भाइयों पर अपार गर्व होता है कि वे मजदूर होकर आए और उन्होंने न केवल राजनीतिक दासता

के विरूद्ध संघर्ष किया बल्कि उन्होंने इन द्वीपों को नया रूप दिया और इस भूमि को उर्वर बनाया। इसके साथ ही उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखते हुए दूसरी संस्कृतियों के साथ सौहार्द्र और सौमनस्य के साथ जीने का पथ प्रशस्त किया। यहां के भाइयों ने विश्व संस्कृति के नये रूप के विकास में उज्ज्वल भूमिका निभायी है।

मित्रों, यहां यह बताना उचित होगा कि भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र "अयं निजः परोवेत्ति, गणनां लघुचेतसाम्। उदार चरितानाम् वसुधैव कुटुम्बकम", की भावना रही है। वह जातीय या धार्मिक रूप से क्षेत्रीय और संकीर्ण नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने तो वनस्पति और अंतरिक्ष तक में शांति के लिए प्रार्थनाएं की हैं। अतः ट्रिनीडाड और टुबैगो की इस सुन्दर भूमि में उस भाषा के बोलने वाले लोगों की ओर से आपका स्वागत करता हूं जो अपनी-अपनी शैली में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। विशाल हिन्दी परिवार की झलक आपको कल ही उद्घाटित होने वाली "हिन्दी के बढ़ते चरण" नाम की प्रदर्शनी में मिलेगी, जिसका आयोजन भारत सरकार की ओर से किया गया है। कुछ चुनी हुई भारतीय हिन्दी फिल्में और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी प्रदर्शन किया जा रहा है। इन सारे आयोजनों से आप हिन्दी के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप के बारे में जान पाएंगे।

यह प्रसन्नता देने वाली बात है कि भारत से बाहर ट्रिनीडाड और टुबैगो में बहुत संख्या में भारतीय मूल के लोग हैं। मेरा अनुरोध है कि आप अपने देश के विकास के लिए जिस तरह डेढ़-दो सदियों से जी-जान से लगे हैं वैसे ही भविष्य में भी लगे रहें। हमें यह भाव गौरव देता है कि भारतवंशी जहां भी रहते हैं तन-मन से वहां के विकास में जुट जाते हैं। चूंकि यहां के भारतवंशी भारत के भोजपुरी क्षेत्र से आए थे। इसलिए कुछ शब्द मैं भोजपुरी में बोलना चाहता हूं।

'ट्रिनीडाड अउर टैबैगो के भारतबंशी भाइन से भारत भर से सभी लोगन के परेम बा। हमके ई अउर खुशी बा, कि इहां जवन भारतवंशी भाई रहत अहें, ओनकर पूर्वज भारत के जउने भाग से, डेढ़ सौ साल पहिले आइ रहेन, भारत के उही भाग के हम हूं रहई वाला हई। हम आजु के मौके पर, आपके ओही पुर्वुजन के हाथ जोरि के परनाम करत बानी कि ओनके तियाग तपस्या का ई नतीजा अहई कि आप लोगन यहि पियारी भुई माता के कोख में पलत रहे। यहि मोका पर जब कि डेढ़ सौ साल की बरसि गांठ मनाहू जात बा इहां के सबइ रहइ वालन के बधाई देत बानी।

मुझे ज्ञात हुआ है कि यद्यपि यहां के अधिकांश भारतवंशियों की व्यवहार की भाषा अंग्रेजी है फिर इनके अंदर अपने पूर्वजों की भाषा हिन्दी सीखने की ललक है। इससे इन्हें अपनी मूल संस्कृति के बारे में बेहतर जानकारी मिलेगी। आशा है कि इस सम्मेलन से उनके अभीष्ट की पूर्ति होगी।

जैसा आप जानते ही हैं, वर्तमान समय में हिन्दी एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। भारत के बाहर अनेक देशों में यह साहित्य, संस्कृति और विद्या की भाषा है। हमने भारत में अंतःप्रांतीय संवाद के लिए हिन्दी का प्रयोग कई सौ वर्षों से जारी रखा हुआ है। आज हमारे महादेश में, और दक्षिण एशिया के कई देशों में ज्यादा लोग हिन्दी बोल तथा समझ लेते हैं। भारत में तो 72% लोग मानक भाषा का प्रयोग करते हैं। हिन्दी की प्रमुख विशेषता ही इसे विश्व भाषा का दर्जा प्रदान करती है। वह गुण इसे आम आदमी से जोड़ देता है, और इसकी यह विशेषता है कि अन्य अनेक भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करना और उन्हें हिन्दी की प्रकृति के अनुसार ढाल लेना। आज विश्व में जितनी भाषाएं विश्व स्तर पर मान्य हैं, उनमें से कुछ में ही यह क्षमता है। हिन्दी ने एक ओर संस्कृत, प्राकृत पालि के स्रोतों से सीधे शब्द लिए हैं तो दूसरी और लोक भाषाओं, उर्दू और अन्य भारतीय भाषाओं से आवश्यकतानुसार शब्द लिए हैं। हिन्दी की शब्द संपदा निरंतर बढ़ रही है। हिन्दी में यह लचीलापन हिन्दी की संग्राहक क्षमता और दूसरी भाषा के संपर्क को पचाकर अपनी अस्मिता को दृढ़ करने की क्षमता बढ़ाता है।

हिन्दी भाषा का इतिहास बताता है कि फिजी, मारीशस, दक्षिण अफ्रीका, पूर्व अफ्रीका, ट्रिनीडाड, सूरीनाम, गयाना आदि अनेक देशों की राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता में इसने सर्वाधिक योगदान दिया है। आज हमारी सबकी आवश्यकता है कि भारत से बाहर की हिन्दी सेवा का आकलन किया जाय और अनेक प्रकार के प्रभावों को आत्मसात करने वाली विश्व भाषा हिन्दी को मान्यता दिलाने की भरपूर कोशिश की जाय।

मुझे पूरा विश्वास है कि पांचवा विश्व हिन्दी सम्मेलन अपने उद्देश्य में सफल होगा। पिछले विश्व हिन्दी सम्मेलनों में प्रथम नागपुर, द्वितीय मारीशस, तृतीय दिल्ली तथा चतुर्थ मारीशस में स्वीकृत प्रस्तावों के आलोक में यह सम्मेलन एक स्थायी सचिवालय की स्थापना के लिए सकारात्मक भूमिका प्रस्तुत करेगा और इसके लिए आधारभूत तैयारी यहीं से प्रारंभ हो जायेगी। याद रहे आज हिन्दी केवल साहित्य के प्रयोग की भाषा नहीं है। यह विज्ञान, तकनीकी एवं विधि जैसे क्षेत्रों में भी माध्यम बन रही है। इस सम्मेलन में विश्व के अनेक देशों के विद्वान आए हैं। विश्व हिन्दी सम्मेलन की आयोजन समिति इस अवसर पर विश्व के कुछ प्रख्यात हिन्दी विद्वानों का सम्मान कर रही है जिनमें प्रो॰ बारनिकोव, प्रो॰ ली॰, डा॰ स्पर्ट स्रेल, डा॰ बिर्स्की, डा॰ ओदोलन स्मेकल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सम्मानित किये जाने वाले विद्वानों में पांच हिन्दी विद्वान भारत से भी हैं जिनमें से दो हिन्दी विद्वान पं॰ विद्यानिवास मिश्र और प्रो॰ रामचन्द्र देव यहां उपस्थित हैं। प॰ विद्यानिवास मिश्र भी उसी पूर्वज भाषा को बोलने वाले स्थान के हैं जो ट्रिनीडाड-टुबैगो या मारीशस या फिजी में बहुसंख्यक समाज बोलता है। वे हिन्दी की सार्थक लोक शक्तियां है। प्रो॰ रामचन्द्र देव का परिचय भी मैं देना चाहता हूं। वे भारत के अहिन्दी भाषी प्रांत केरल के हैं। भारत के हिन्दीतर विद्वान का सम्मान हमारी सामासिक संस्कृति का भी सम्मान है। हम एक ऐसे देश से हैं जहां सभी धर्मों को समान आदर भाव से देखा जाता है। भारत सरकार की ओर से जिस प्रतिनिधि मंडल का मुझे नेतृत्व करने का गौरव प्राप्त हुआ है उसमें कोई कश्मीर से है तो कोई दक्षिण से, कोई उत्तर भारत से। मैं स्वयं अरुणाचल प्रदेश से आया हूं। यह भी हमारे राष्ट्रीय सामासिक संस्कृति का ही परिचायक है।

आपने विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन करके हिन्दी की जो गरिमा बढ़ाई है उसके लिए मैं आपको साधुवाद देता हूं।

मित्रों, भाषा वास्तव में लोकशक्ति की ही प्रतीक है। मेरा अनुरोध है कि आप इस सम्मेलन में इन बिन्दुओं पर गंभीर विचार-विमर्श करें:—

1. हिन्दी को अब राष्ट्रीय मंच से अंतर्राष्ट्रीय मंच पर लाने के प्रयास किये जाने चाहिए और इसके लिए हिन्दी विद्वानों को एक अहम भूमिका निभानी होगी।

2. हिन्दी के माध्यम से भारत की महान सांस्कृतिक संपदा के बारे में जागरूकता बढ़ाने के प्रयासों में गति आनी चाहिए।

3. सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए हिन्दी को बढ़ावा देना चाहिए।

4. विश्व की दूसरी भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी को ज्ञान, विज्ञान के माध्यम के रूप में स्वीकृति दिलाने के प्रयास किये जाएं।

5. विश्व मंच पर हिन्दी भारतीय भाषाओं के संसर्ग में विकसित हो। भारतीय संविधान में हम ऐसी भाषा के विकास के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं जिसमें भारतीय भाषाओं की शब्द संपदा और शैलियों का समावेश हो। हिन्दी लिखने के लिए हम देवनागरी लिपि अपनाते हैं। यह लिपि हर दृष्टि से वैज्ञानिक लिपि है। इसमें जो बोला जाता है वही लिखा जाता है व जो लिखा जाता है वही पढ़ा भी जाता है। इसके अक्षरों से आप विश्व की किसी भी भाषा को शुद्ध रूप से लिख सकते हैं और उसका उच्चारण भी सही कर सकते हैं। इसलिए अन्य भाषाओं को उनकी लिपि के साथ ही नागरी लिपि में भी लिखने पर विचार किया जाना चाहिए।

भारत के राष्ट्रपति की ओर से भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में नियुक्त अरूणाचल प्रदेश का राज्यपाल होने के नाते मेरा अपना एक अनुभव है। यह प्रदेश चीन से 1030 किलोमीटर, म्यानमार से 440 किलोमीटर और भूटान से 160 किलोमीटर घिरा है। यह अहिन्दी भाषी प्रदेश है। यहां की प्रमुख 25 आदिवासी जातियां हैं और उनकी अपनी-अपनी जन-बोलियां है। लेकिन इस प्रदेश के लोग हिन्दी बोल और समझ लेते हैं। मेरा प्रयास है कि उनके लोक गीतों, लोक कथाओं और पूजा-पाठ संबंधी संस्कृति को देवनागरी लिपि में अंकित कर प्रकाशित किया जाए। इसमें मुझे कुछ सफलता भी मिली है। इससे हिन्दी से उनका लगाव बढ़ रहा है। यह प्रयोग अन्य क्षेत्रों में भी किया जा सकता है।

हिन्दी विद्वानों से एक निवेदन मैं अवश्य करना चाहता हूं कि वे अहिन्दी भाषी क्षेत्रों और देशों में ऐसी हिन्दी का प्रचार-प्रसार और प्रयोग करें जो स्थानीय भाषाओं के प्रचलित शब्दों को अपने में समाहित कर सके। भाषा का ज्ञान बढ़ने पर ही साहित्य की उपयोगिता ऐसे क्षेत्रों और देशों के लोगों के बीच बढ़ेगी और वे हिन्दी को समझने में समर्थ होंगे। इसके लिए अनेक दिशाओं से कार्य आरंभ करने पड़ेंगे। जिन देशों में भारतवंशी रहते हैं, मेरा उनसे अनुरोध है कि वे अपने राष्ट्रीय साहित्य का हिन्दी में अनुवाद करने में भरपूर सहयोग करें। दूसरे देशों के साहित्य को देवनागरी में रूपांतरित करने से भी हिन्दी का प्रचार बढ़ेगा और वे हिन्दी के प्रति वहां के जनमानस का ध्यान आकर्षित करने में सफल हो सकेंगे

मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस पांच दिवसीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के दौरान विद्वानों के बीच गंभीर विचार-विमर्शों से महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आयेंगे। सभी सम्मानित विद्वानों का पुनः अभिनंदन करते हुए मैं ट्रिनीनडाड टुबैगो की भूमि को सम्मेलन आयोजित करने के लिए प्रणाम करता हूं।

धन्यवाद।

जय जगत, जय हिन्दी।

ट्रिनीडाड-टुबैगो में 5 अप्रैल, 1996 ई० को पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन में पुस्तक एवं चित्र प्रदर्शनी के उद्घाटन समारोह के अवसर पर भारतीय शिष्टमंडल के नेता श्री माता प्रसाद (अरूणाचल प्रदेश के राज्यपाल) का सम्बोधन

आनरेबल मिनिस्टर्स, डिस्टिंगविशुड स्कालर्स, लेडीज एण्ड जेन्टलमैन

आज चित्र एवं पुस्तक प्रदर्शनी का उद्घाटन यहां के माननीय शिक्षा मंत्री को करना था, किन्तु पार्लियामेंट चलने के कारण वे यहां नहीं आ सके हैं, इसलिए मैं इस पुस्तक और चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन करता हूं। हम हिन्दी साहित्य की गंगा के चुल्लू भर जल, भाषा के विश्व सागर में डालने के लिए लाएं हैं। उम्मीद है कि आपको इस प्रदर्शनी से भारत की साहित्य-संस्कृति की झलक तो मिलेगी ही, साथ ही हिन्दी भाषा की सबलता और समृद्धता की भी। मैं अपने शिष्टमंडल में भी अपने देश के उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम के जाने माने साहित्य सृजक भी लाया हूं। यही लोग साहित्य सलिला के स्रोत हैं। भाषा के पालक-पोषक हैं। यहां आए विश्व के कोने-कोने से हिन्दी विद्धानों से इस अवसर पर सार्थक विचार-विमर्श होगा और हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में आगे बढ़ने का अवसर मिलेगा। इस तरह हिन्दी सभी देशों के सहयोग से विश्व फलक पर फलेगी-फूलेगी।

मैं इस प्रदर्शनी के आयोजन के लिए भारत सरकार के डी०ए०वी० पी० के अधिकारियों और कर्मचारियों को भी धन्यवाद देना चाहूंगा।

इस प्रदर्शनी में पुस्तकों के चयन के लिए जिन विद्वानों ने सहयोग दिया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

जय जगत, जय हिन्दी।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर सम्मानित होने वाले विदेशी एवं भारतीय विद्वानों की सूची।

1. महामान्य प्रो० डॉ० एम० क्रिजीस्तोप ब्रिस्की
2. डॉ० रूपर्ट स्नेल
3. महामान्य डॉ० ओदोलेन स्मेकल
4. प्रो० हरिशंकर आदेश
5. प्रो० पी० अलेक्सेविच बरान्निकोव
6. डॉ० अभिमन्यु अनत
7. प्रो० चिन तिंगहान
8. स्तेपान इवानोविच नालिवायको
9. डॉ० ज्ञान हंसदेव अधीन
10. डॉ० रामभजन सीमाराम
11. डॉ० राम दयाल रक़ेश,
12. प्रो० जोंग हो ली
13. प्रो० गोका (इनका नाम बाद में जोड़ दिया गया)

भारतीय विद्वान

14. डॉ० विद्या निवास मिश्र
15. डॉ० रामचन्द्र राव
16. डॉ० नामवर सिंह

17. डॉ॰ लोकेश चन्द्र
18. डॉ॰ नगेन्द्र

निम्नलिखित विद्वान सम्मान समारोह में किन्हीं कारणों से उपस्थित नहीं हो सकेः—

1. महामान्य डा॰ ओदेलेन (विदेशी)
2. डॉ॰ नामवर सिंह, (भारतीय)
3. डॉ॰ लोकेश चन्द्र
4. डॉ॰ नगेन्द्र

ट्रिनीडाट-टुबैगो में 5 अप्रैल, 1996 को पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन में हिन्दी विद्वानों के सम्मान समारोह के अवसर पर भारतीय शिष्टमंडल के नेता श्री माता प्रसाद (अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल) का संबोधन

माननीय प्रधान मंत्री जी, अन्य माननीय मंत्रीगण, विदेशों से आये हुये हिन्दी के विद्वानगण, डेलीगेशनों के नेतागण, भाषा निधि के अध्यक्ष श्री चंका सीताराम जी एवं मित्रों।

संस्कृत में एक श्लोक है जिसका अर्थ है कि राजा की पूजा केवल अपने देश में ही होती है, लेकिन विद्वान की पूजा सर्वत्र होती है। आज का समारोह इसका ज्वंलत उदाहरण है। आज यहां पर विश्व के कोने-कोने से आये हुये हिन्दी विद्वानों के गुलदस्ते से ट्रिनीडाड-टुबैगों महक रहा है। इस मुक्ता माला का दर्शन कर में अपने को धन्य मानता हूं।

महात्मा गांधी ने कहा था — भाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है। किसी देश की राष्ट्र भाषा उस देश में अधिक संख्या में बोलने और समझने वालों की एक या दो भाषाएं होती हैं। इसी तरह विश्व में हिन्दी बोलने वालों की और समझने वालों की संख्या तीसरे स्थान पर है। इसलिये कोई कारण नहीं है कि इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा न बनाया जाय। यहां लगी हुई पुस्तक प्रदर्शनी संसार भर से आये हुये हिन्दी विद्वानों की कृतियों का दर्शन कर मुझे इस बात का विश्वास है कि हिन्दी अब विश्व पथ पर आगे बढ़ती जायेगी, रुकेगी, नहीं।

इस सम्मेलन में आने पर मैं हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य के बारे में पूरी तरह से आश्वस्त हूँ।

मैं आज उन सभी विद्वानों को जिनका यहां सम्मान किया जा रहा है, भारत सरकार, भारत की जनता, अपने प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों, भारत की विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं तथा अपनी ओर से हार्दिक बधाई ही नहीं देता हूं, बल्कि उनका अभिनंदन भी करता हूं।

धन्यवाद।

जय जगत, जय हिन्दी।

ट्रिनीडाड में संपन्न पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन दिनांक 4-8 अप्रैल, 96 में पारित मंतव्य

1. यह सम्मेलन भारतवंशी समाज एवं हिंदी के बीच एक जीवंत समीकरण बनाने का प्रबल समर्थन करता है और यह आशा करता है कि विश्वव्यापी भारतवंशी समाज हिंदी को अपनी संपर्क भाषा के रूप में स्थापित करेगा एवं एक विश्व हिंदी मंच बनाने में सफल होगा।

2. सम्मेलन चिरकाल से अभिव्यक्त अपने मंतव्य की पुनः पुष्टि करता है कि विश्व हिंदी सम्मेलन को **स्थाई सचिवालय** की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। सम्मेलन के विगत मंतव्य के अनुसार यह सचिवालय मारीशस में स्थापित होना निर्णीत है। **इस त्वरित कार्यान्वयन के लिए एक अंतर-सरकारी समिति का गठन किया जाए।** इस समिति का गठन मारीशस एवं भारत सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। इस समिति में सरकारी प्रतिनिधियों के अलावा प्रर्याप्त संख्या में हिन्दी के प्रति निष्ठावान साहित्यकारों को सम्मिलित किया जाय। यह समिति अन्य बातों के साथ-साथ सचिवालयी व्यवस्था के अनेकानेक पहलुओं पर विचार करते हुए एक सर्वांगीण कार्यक्रम/योजना भारत तथा मारीशस की सरकारों को प्रस्तुत करेगी।

3. यह सम्मेलन सभी देशों, विशेषकर उन देशों, जहां भारतीय मूल तथा आप्रवासी भारतीय बसते हैं, की सरकारों से आग्रह करता है कि वे अपने देश में विभिन्न स्तरों पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करें।

4. यह सम्मेलन विश्व स्तर पर हिंदी भाषा को प्राप्त जनाधार और उसके प्रति जनभावना को देखते हुए सभी देशों, जहां भारतीय मूल तथा अप्रवासी भारतीय बसते हैं, मैं हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न स्वयंसेवी संस्थाओं/हिंदी विद्वानों से आग्रह करता है कि वे अपनी-अपनी सरकारों से आग्रह करें कि वे हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के लिए राजनयिक योगदान तथा समर्थन दें।

5. यह सम्मेलन भारत सरकार द्वारा महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय स्थापित करने के निर्णय का स्वागत करता है और आशा करता है कि इस विश्वविद्यालय की स्थापना से हिंदी को विश्वव्यापी बल मिलेगा।

6. यह सम्मेलन भारत तथा ट्रिनीडाड एवं टुबैगो की सरकारों तथा हिंदी निधि, ट्रिनीडाड एवं टुबैगो के प्रति पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन के इस सफल आयोजन के लिए आभार व्यक्त करता है। जिन देशों से सरकारी प्रतिनिधि मंडल इस सम्मेलन में भाग लेने आए हैं वहां की सरकारों को यह सम्मेलन साधुवाद देता है।

ट्रिनीडाड—टुबैगो में 8 अप्रैल, 1996 को पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन के समापन समारोह में भारतीय शिष्टमंडल के नेता श्री माता प्रसाद (अरुणाचल प्रदेश, के राज्यपाल) का अभिभाषण

आदरणीय श्री गणेश राम दयाल जी। स्पीकर आफ द सीनेट, द स्कालर्स एंड डिगनिटरीज।

आज पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन का समापन समारोह है। बल्कि यूं कहिए इस महाकुम्भ के महास्नान का दिन है। विश्व के कोने-कोने से आये हिन्दी विद्वानों/हिन्दी प्रेमियों ने यहां आयोजित विभिन्न शैक्षिक सत्रों में सारगर्भित तथा सूचनाप्रदायी आलेख पढ़कर और उन पर सार्थक चर्चा करके हिन्दी भाषा एवं उसके समृद्ध साहित्य और उसमें निहित मिली-जुली सांस्कृतिक भावना के महासागर का मंथन ही नहीं किया बल्कि अनेकानेक

सार्थक निष्कर्षों पर भी पहुंचे हैं। उम्मीद है कि ये निष्कर्ष हिन्दी के और अधिक विकास में सहायक सिद्ध होंगे। हिन्दी सहज और सरल भाषा है। इसी कारण इसे शुरू से ही सभी वर्गों का समर्थन मिला है। इसे जहां एक ओर तुलसीदास ने अपनी लेखनी से समृद्ध किया और रामचरित मानस के द्वारा जन-जन तक पहुंचाया वहीं कबीर ने अपने पदों से इसे आम आदमी की वाणी में व्यक्त किया। जायसी, रसखान, रहीम तथा खुसरो से इसे उतना ही प्यार और स्नेह मिला जितना सूरदास, घनानन्द और बिहारी से।

किसी भी भाषा के विकास में उसकी बोलियों और उप-भाषाओं का विशेष योगदान रहता है। हिन्दी के विकास में भी भोजपुरी, ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि का सहयोग तो है ही साथ ही उसे फारसी, अरबी से भी पर्याप्त शब्द सम्पदा मिली है। इसके अतिरिक्त उसने अन्य भारतीय भाषाओं के भी बहुत से शब्द अपने में समाहित कर लिए हैं। आज हिन्दी, मारीशस, ट्रिनीडाड-टुबैगो तथा गयाना में भोजपुरी एवं सूरीनाम में सरनामी भाषा के रूप में व्यवहार में लाई जाती है।

अब हिन्दी राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर चुकी है तथा अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर अग्रसर है। हिन्दी के संवर्धन में मारीशस, गयाना सूरीनाम, फिजी, नेपाल, दक्षिण अफ्रीका आदि का विशेष योगदान है।

यह वह समय है जब इसे अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में विकसित होना है। इसे इतना उदार होना है कि अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं की शब्द सम्पदा को अपने में आत्मसात कर ले और इसका एक सर्वमान्य स्वरूप विकसित हो, ताकि लोग इसके माध्यम से विश्व की एक सामासिक संस्कृति का विकास कर सके। पंडित जवाहर लाल नेहरु ने कहा था "हिन्दी एक जानदार भाषा है, वह जितनी बढ़ेगी उतना ही लाभ होगा"।

यहां आए विभिन्न देशों के विद्वानों से बात कर उन्हें हिन्दी के विकास पर विचार-विनिमय करते देख मुझे सहज ही मारीशस के श्री सोमदत्त बखौरी का यह कथन स्मरण आता है—उन्होंने कहा था, "मारीशस को हम अपनी जन्म-भूमि मानते हैं किन्तु हिन्दी को अपनी मां"। इस बात से अब मैं आश्वस्त हूं कि हिन्दी के द्वारा सारे संसार को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

अप्रवासी भारतीयों में हिन्दी के प्रति प्रेम-आस्था को देखकर मैं गदगद हो गया हूं। यह इस बात का धोतक है कि वे अपने पूर्वजों के देश से हजारों मील दूर बैठकर भी अप्रवासी भारतीय हिन्दी और भारतीय संस्कृति से अलग नहीं हुए। वे इसे आगे ले जाने के लिए उतने ही आतुर हैं जितने कि हम भारतवासी। विश्व हिन्दी सम्मेलन के लिए सिद्धांततः एक समिति के गठन से संबंद्ध जो मन्तव्य पारित हुआ है उससे हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आगे बढ़ाने में पर्याप्त मदद मिलेगी।

मैं आज यहां मौजूद सभी हिन्दी प्रेमियों/विद्वानों को पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन को सफल बनाने, सम्मेलन के दौरान सार्थक विचार-विनिमय के लिए धन्यवाद देता हूं। मैं उन देशों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने अपने यहां से प्रतिनिधि मंडल भेजे हैं। वे स्वयंसेवी संस्थाएं भी साधुवाद की पात्र हैं जिन्होंने अपने सीमित साधनों के बावजूद प्रतिनिधिमंडल भेजे हैं। मैं उन विद्वानों को विशेष धन्यवाद देता हूं जो अपने प्रयासों से इस सम्मेलन में भाग लेने आए हैं। ट्रिनीडाड-टुबैगो के प्रधान मंत्री और उनकी सरकार ने सम्मेलन के आयोजन के लिए जो सहयोग-समर्थन दिया उसके लिए भी मैं उनका धन्यवाद करता हूं। सम्मेलन की आयोजक संस्था 'हिन्दी निधि' ने जिस लगन और निष्ठा से सम्मेलन के आयोजन को मूर्त रूप दिया उसकी मैं मुक्त कंठ से सराहना करता हूं। इसके लिए निधि के अध्यक्ष श्री चंका सीताराम और समन्वयकर्ता प्रो॰ जगन्नाथन विशेष रूप से बधाई के पात्र हैं। साथ ही ट्रिनीडाड-टुबैगो अन्य देशों तथा भारत सरकार के संचार माध्यमों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूं। पोर्ट आफ स्पेन में भारत के उच्चायोग ने इस संबंध में जो कार्य किया है उसके लिए वह धन्यवाद का पात्र है। भारत सरकार के जिन अधिकारियों/कर्मचारियों ने इस सम्मेलन को सफल बनाने में अपना भरपूर सहयोग दिया वे भी विशेष सराहना के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि यहां आए हिन्दी विद्वान और हिन्दी प्रेमी अपने देश लौटकर सम्मेलन में पारित मंतव्यों को कार्यरूप देने के कार्य में भी तन्मयता से जुट जाएंगे और अगले विश्व हिन्दी सम्मेलन तक हिन्दी को उसका उचित स्थान दिलवाने में सफल होंगे।

इन्हीं शब्दों के साथ एक बार पुनः आप सबको धन्यवाद देता हूं।

जय हिन्दी, जय जगत।

पृष्ठ 38 का शेष

—तावादी चिंतन की उपलब्धियों और कमियों का निश्चल सजग, सहज तथा तटस्थ रंग से नीर-सीर विवेचन करते और हिन्दी साहित्यालोचन का एक स्वस्थ, जागरुक मध्यम मार्ग तलाश रहे होते। वे एक सहज ढंग के अद्वितीय, सर्जनात्मक और मौलिक साहित्य चिंतक थे जो अपने समय के लगभग सभी 'पूर्वाग्रहों', 'दुराग्रहों' और 'सत्याग्रहों' से मुक्त थे। उनका साहित्यालोचन परिमाण में भले ही कम हो, गुण की दृष्टि से वह पठनीय, ज्ञानवर्धक और रचनात्मक है तथा नए साहित्य के प्रति गहरे लगाव, सरोकार और सम्पृक्ति को व्यंजित करता है।

पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन के बारे में सरकारी प्रतिनिधि मंडल में सम्मिलित मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग) के अधिकारियों की रिपोर्ट—

पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन "हिंदी निधि ट्रिनीडाड और वेस्ट इण्डीज विश्वविद्यालय, ट्रिनीडाड, पोर्ट आफ स्पेन, के संयुक्त तत्वावधान में 4 अप्रैल से 8 अप्रैल तक ट्रिनीडाड में आयोजित किया गया।

पिछले चार सम्मेलनों की परम्परा में सम्मेलन ऐतिहासिक महत्व का सम्मेलन सिद्ध हुआ। इस सम्मेलन में देश-विदेश के 300 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

इससे पूर्व प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में 1975 में आयोजित किया गया जिसमें देश-विदेश के 30 से अधिक देशों के 122 अधिकारिक प्रतिनिधियों ने अपनी भागीदारी से इस सम्मेलन को सफल बनाया। इस सम्मेलन में 3000 भारतीय प्रतिनिधि एवं पर्यवेक्षक सम्मिलित हुए थे।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्घाटन भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया तथा सम्मेलन की अध्यक्षता मारिशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय सर शिवसागर रामगुलाम ने की थी। इस सम्मेलन में 3 प्रस्ताव पारित हुए:

(1) संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को भी अधिकारिक स्थान दिया जाए।

(2) वर्धा में विश्व हिंदी विद्यापीठ स्थापित हो, एवं

(3) विश्व हिंदी सम्मेलन में लिए गये निर्णयों को कार्यरूप देने के लिए योजना बनायी जाए।

इसके उपरांत द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन 28 अगस्त से 30 अगस्त, 1976 को मारिशस में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन का उद्घाटन सर शिवसागर रामगुलाम ने किया और भारत सरकार के मंत्री डा० कर्ण सिंह ने इसकी अध्यक्षता की थी। इसमें पांच सौ भारतीय प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा 20 से अधिक देशों के प्रतिनिधियों ने भागीदारी की थी। इस सम्मेलन में मुख्य रूप से दो प्रस्ताव सामने आए—

(1) मारिशस में विश्व हिंदी केंद्र स्थापित हो, तथा

(2) एक अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका का प्रकाशन हो।

तदनन्तर तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन 28 से 30 अक्तूबर तक 1983 में नई दिल्ली में आयोजित हुआ। इसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया। समारोह की अध्यक्षता कैम्ब्रेज विश्वविद्यालय के प्रो० मैग्रेगर ने की। सम्मेलन में पिछले सम्मेलनों में पारित संकल्पों की सम्पुष्टि की गई तथा 25 सदस्यों की एक समिति को सम्मेलन की संस्तुतियां प्रस्तुत करने का कार्य सौंपा गया।

चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन 2 से 4 दिसम्बर, 1993 को मारिशस में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में हिंदी भाषा के प्रतिनिधि कदमों की एक महत्वपूर्ण प्रदर्शनी लगाई गई। इस सम्मेलन में भी पिछले संकल्पों को कार्यरूप देने की बात सम्पुष्ट की गई तथा प्रमुख रूप से तीन मंतव्य पारित किए गए—

1. विश्व हिंदी सम्मेलन का स्थायी सचिवालय स्थापित किया जाए
2. विश्व हिंदी विद्यापीठ स्थापित किया जाए, एवं
3. मारिशस में एक विश्व हिंदी केंद्र स्थापित किया जाए।

ट्रिनीडाड में आयोजित पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रथम दिन उद्घाटन के अवसर पर भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता महामहिम श्री माता प्रसाद का भाषण अत्यन्त गर्मजोशी से सराहा गया। महामहिम श्री माता प्रसाद जी ने ट्रिनीडाडवासियों को इस सम्मेलन को आयोजित करने के लिए बधाई दी। उद्घाटन के अवसर पर ट्रिनीडाड के राष्ट्रपति तथा उनकी पत्नी, मंत्रिमंडल के सदस्य एवं सांसद व ट्रिनीडाड में स्थित अनेक देशों के राजदूत दर्शकदीर्घा में बैठे थे। लगभग 2000 पर्यवेक्षक और प्रतिनिधि इस अवसर पर उपस्थित थे। मंच पर ट्रिनीडाड के प्रधानमंत्री श्री वासदेव पाण्डे व विदेश मंत्री तथा ब्रिटेन में भारत के उच्चायुक्त मौजूद थे। इस अवसर पर गयाना के प्रतिनिधिमंडल के नेता (वहां के मंत्री) तथा नेपाल के प्रतिनिधिमंडल के नेता (नेपाल के मंत्री) भी उपस्थित थे।

5 अप्रैल को सामूहिक सत्र से पूर्व हिंदी के बढ़ते कदम नामक पुस्तक प्रदर्शनी का उद्घाटन हुआ। तदनतर एक कम्प्यूटर प्रदर्शनी का भी उद्घाटन किया गया।

सामूहिक सत्र की अध्यक्षता हिंदी के प्रख्यात विद्वान डा० विद्यानिवास मिश्र ने की थी। इस सत्र में विद्वानों ने भारत से बाहर भारतवंशियों की जन-स्मृति में भारतीय संस्कृति तथा भारतीय भाषा हिंदी के प्रति नये आकर्षण का उल्लेख किया। इस सत्र में ट्रिनीडाड के प्रतिनिधियों ने भारत और भाषा के बारे में अपने वैज्ञानिक निबंधों का प्रस्तुतीकरण किया तथा हालैण्ड के विद्वान डा० मोहन कांत गौतम ने भारतवंशियों के भाषा प्रेम एवं नवभाषा के उदय पर अपने विचार प्रस्तुत किए।

दक्षिण अफ्रीका : इन्द्रधनुषी राष्ट्र दक्षिण अफ्रीका के सरकारी प्रतिनिधि श्री फारूख हुसैन ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की उपस्थिति, महात्मा गांधी के योगदान तथा भारतीय भाषाओं के अध्ययन जैसे बिन्दुओं पर अपना व्याख्यान दिया। उन्होंने सूचित किया कि भाषा का अध्ययन कक्षा-स्तर 6 से आरम्भ होता है तथा 10 स्तर तक नियमित चलता है। भारतीय संस्कृति की गहरी छाप दक्षिण अफ्रीका में देखी जा सकती है और भारत नाट्यम जैसी नाट्य शैली वहां एच्छिक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में है। दक्षिण अफ्रीका के मनोलोक में भारत का विशेष स्थान है। दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि ने छठे सम्मेलन के लिए दक्षिण अफ्रीका का प्रस्ताव किया था जिसका करतल ध्वनि से स्वागत किया गया।

मारिशस: मारिशस के प्रतिनिधि मंडल के नेता, वहां के मंत्री ने सभा को संबोधित करते हुए कहा कि मारिशस में बहुसंख्यक समाज अल्पसंख्यक समाज की फ्रांसीसी भाषा का उपयोग करता है, परन्तु मारिशस में हिंदी के प्रचार में आर्यसमाज, हिन्दू महासभा और गांधी जी का बहुत बड़ा योगदान है। हिंदी सभी प्राथमिक शालाओं में पढ़ाई जाती है और हिंदी अध्यापकों के प्रशिक्षण की सुविधाएं भी वहां उपलब्ध हैं। आज हिंदी

विश्वविद्यालय के स्तर पर स्वीकृत है । मारिशस में अनेक पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित होती है।

गयाना: इस सामूहिक सत्र को गयाना के प्रतिनिधि मंडल के नेता, वहां के मंत्री ने संबोधित किया और बताया कि 80 हिंदी विद्यालय गयाना में सक्रिय हैं। उनके देश के लोग हिंदी संगीत से प्रभावित हैं तथा रामकथा की चौपाइयों और हनुमान चालीसा का अत्यन्त श्रद्धा से गान करते हैं। यहां के लोगों में भी अपनी मूल जड़ से जुड़ने का आकर्षण है।

सूरीनाम : सूरीनाम के प्रतिनिधि मंडल में वहां के संसद के सदस्य थे, उनके नेता ने बताया कि सूरीनाम प्रवासियों का देश है। यह बहुभाषी देश है । डच यहां की राजभाषा है किन्तु सरनामी हिंदी में सारे सूरीनामवासी बोलते हैं। 1873 में यहां भारतीय मजदूर आये थे। 1945 के बाद सांस्कृतिक जुड़ाव में तेज़ी आई है। सरनामी भोजपुरी पर आधारित हिंदी है जो रोमन लिपि में लिखी जाती है तथा वहां देवनागरी का भी प्रचलन है जिसमें पुस्तकें, पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। 1960 के बाद भारतवंशियों की सांस्कृतिक एकता संपूर्ण हुई। आज चिंता यह है कि इस सांस्कृतिक चेतना को सजीव कैसे रखा जाए। इसी सत्र में संसद सदस्या, सूरीनामी प्रतिनिधि ने अपने वक्तव्य में सूचनाएं दीं कि संविधान में हिंदी के विकास की पर्याप्त स्वतंत्रता है। आवश्यकता है कि ट्रिनीडाड-टुबैगो, गयाना और सूरीनाम तीनों कैरेबियन देशों का एक संगठन बनना चाहिए जो हिंदी की अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों को सक्रिय कर सके।

इस प्रस्ताव को पूरे सम्मेलन ने सहर्ष स्वीकृति दी।

नेपाल: सामूहिक सत्र को नेपाल के प्रतिनिधि माननीय गजेन्द्र नारायण सिंह ने संबोधित किया। वे वहां के मंत्री हैं। उन्होंने बताया कि नेपाल में 90 प्रतिशत लोग हिंदी समझते हैं। कुल पढ़ी-लिखी आबादी का 70 प्रतिशत तो हिंदी पढ़-लिख सकता है। हिंदी भाषा क्षेत्र हिंदी को द्वितीय भाषा बनाने का संघर्ष कर रहा है। पहली बार हिंदी सम्मेलन में सरकारी प्रतिनिधि मंडल भेजा गया है। 1964 तक तो हिंदी प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ाई का माध्यम थी किन्तु नेपाल की संसद में हिंदी का भाषण दर्ज नहीं किया जाता है। हिंदी भाषी मध्यदेशियों को फौज व सरकारी नौकरियों में अवसर बहुत कम दिया जाता है क्योंकि इनके पास नागरिकता प्रमाण-पत्र नहीं है। तराई क्षेत्र के 20 जिलों में हिंदी भाषी रहते हैं, उनकी जनसंख्या पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वालों से ज्यादा है। संसद में पहाड़ी क्षेत्र के नेपालियों का अधिक प्रतिनिधित्व है। नेपाल घोषित रूप से हिन्दू राष्ट्र है किन्तु वहां हिंदी भाषी लोग उपेक्षित हैं। हिंदी की स्थिति पर कुछ-न-कुछ अवश्य किया जाना चाहिए।

अमेरिका: संयुक्त राष्ट्र अमरीका से आये प्रतिनिधि ने सूचित किया कि उनके देश में तीन बड़ी संस्थाएं हैं जो हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य देखती हैं, अनेक सस्थाएं भी हैं। अमेरिका में भारतवंशियों की बड़ी संख्या है। अनेक हिंदी की उच्चस्तरीय पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। उन्होंने भी न्यूयार्क में अगले सम्मेलन का प्रस्ताव दिया।

ट्रिनीडाड: ट्रिनीडाड के प्रतिनिधियों ने मूल संस्कृति की स्मृति के विषय को अधिक वैज्ञानिक ढंग से सामने रखा। उनका कहना था कि वर्तमान विश्व की परिस्थितियों में संस्कृति का महत्व बड़ा है। भारतीयता के प्रति भी मोह बढ़ा है। ट्रिनीडाड में अभी दो स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। यह संख्या बढ़ाई जायेगी। भारतीय संगीत, भारतीय भाषा और भारतीयता से ट्रिनीडाडवासियों ने अपने को गहरे से जोड़ा हुआ है।

भारत: भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता ने विश्व हिंदी के विकास की स्थिति पर संतोष व्यक्त किया और बताया कि वे भारत सरकार को यहां पारित संस्तुतियों के बारे में अवगत करायेंगे। 5 अप्रैल संध्या समय हिल्टन होटल सभा कक्ष में एक भव्य समारोह में 18 विश्वभर के चुने हुए हिंदी विद्वानों का सम्मान आयोजित किया गया। इस समारोह में विदेशों से 12 में से 7 विद्वान सम्मानित किए गये तथा भारत के पांच में से दो विद्वानों यथा प्रख्यात भाषाविद् एवं विश्व ख्याति के लेखक डा॰ विद्यानिवास मिश्र तथा दक्षिण भारत के प्रसिद्ध हिंदी लेखक एवं विद्वान डॉ॰ रामचन्द्र देव, का मारिशस के प्रधानमंत्री एवं विदेश मंत्री द्वारा सम्मान किया गया। 6 तथा 7 व 8 अप्रैल को विभिन्न गोष्ठियों में 100 से अधिक विद्वानों ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। 8 अप्रैल को पूर्वाह्न संस्तुतियों और प्रस्तावों के सर्वसम्मत मसौदे को तैयार करने वाली समिति की बैठक हुई। इस समिति के अध्यक्ष श्री अभिमन्यु सिंह, संयुक्त सचिव और संयोजक श्री देव स्वरूप, संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग नामित किए गये। 8 अप्रैल को यह मसौदा सामूहिक सत्र में स्वीकार किया गया। सम्मेलन में भारत सरकार के प्रतिनिधि, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक ने महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की वर्धा में स्थापना की सूचना दी तथा यह भी बताया कि इसके कार्यानुपालन की अन्य तैयारियां भी की जा रही हैं।

सम्मेलन का मुख्य आकर्षण कंप्यूटर तथा पुस्तक प्रदर्शनी रही। इन प्रदर्शनियों में ट्रिनीडाड के प्रधानमंत्री, सांसद, विधिवेत्ता तथा विद्वान बराबर आते रहे। यह एक अविस्मरणीय सम्मेलन था जिसमें हिंदी के विश्वव्यापी रूप का आकलन किया गया।

संचार माध्यमों ने इस सम्मेलन को अच्छी तरह से "कवर" किया। स्थानीय टेलीविजन ने अपने कार्यक्रमों में इसे प्राथमिकता दी है।

□

ट्रिनीडाड एवं टुबैगो में सम्पन्न पांचवां विश्व हिन्दी सम्मेलन

—डा० परमानन्द पांचाल

पांचवां विश्व हिन्दी सम्मेलन भारत से हजारों मील दूर दक्षिण अमरीका के कैरेबियन सागर में स्थित ट्रिनीडाड एवं टुबैगो की राजधानी पोर्ट आफ् स्पेन में 4 अप्रैल से 8 अप्रैल, 1996 तक आयोजित किया गया, जिसमें भारत के अतिरिक्त नेपाल, मारीशस, सूरीनाम, गयाना तथा दक्षिण अफ्रीका की सरकारों ने अपने-अपने सरकारी प्रतिनिधि मंडल इस सम्मेलन के लिए भेजे। इनके अतिरिक्त भी लगभग 35 देशों से 350 से अधिक प्रतिनिधि इस विशाल आयोजन में सम्मिलित हुए। भारत के सरकारी प्रतिनिधि मंडल में देश के गण्यमान्य हिन्दी विद्वान, लेखक और शिक्षाशास्त्री सम्मिलित थे, जिनका नेतृत्व अरूणाचल प्रदेश के राज्यपाल महामहिम माता प्रसाद जी ने किया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य था "आप्रवासी भारतीय और हिन्दी"।

सम्मेलन का उद्घाटन 4 अप्रैल, 1996 को ट्रिनीडाड के सान फरनांडो, ापरीमा बाउल में। ट्रिनीडाड एवं टुबैगो के प्रधानमंत्री श्री वासुदेव पाण्डेय द्वारा किया गया। उन्होंने कहा कि हिन्दी का ज्ञान भारत के साथ गहरे वाणिज्यिक सम्बन्धों को दृढ़ करने में सहायक होगा। उन्होंने हिन्दी को ऐच्छिक विषय के रूप में अपने देश के स्कूलों में पढ़ाए जाने की व्यवस्था का भी आश्वासन दिया। इस अवसर पर वहां के राष्ट्रपति, महामहिम नूर हसन अली, विदेश मंत्री श्री रेल्फ मराज, भारतीय शिष्ट मंडल के नेता श्री माता प्रसाद तथा नेपाल, गयाना, सूरीनाम, जापान, मारीशस के मंत्री तथा अनेक देशों के हिन्दी विद्वान एवं साहित्यकार उपस्थित थे। प्रधानमंत्री श्री वासुदेव पांडेय ने इस अवसर पर भारत सरकार द्वारा प्रकाशित स्मारिका का लोकार्पण किया। स्मारिका का सम्पादन डॉ० परमानन्द पांचाल ने किया था, जिसमें देश-विदेश के मूर्धन्य हिन्दी विद्वानों के लेख संगृहीत हैं।

5 अप्रैल से 7 अप्रैल, 1996 तक वेस्ट इंडीज विश्वविद्यालय के इन्जीनियरी संकाय में जिसे "हिन्दी नगर" का नाम दिया गया था, कई सत्रों में विचार गोष्ठियां आयोजित की गई, जिनमें देश-विदेश से आए हिन्दी विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए और उन्होंने अपने आलेख पढ़े।

पुस्तक तथा फोटो प्रदर्शनी

इस अवसर पर भारत सरकार की ओर से एक पुस्तक एवं फोटो प्रदर्शनी का भव्य आयोजन किया गया था, जिसमें हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास की एक चित्रमय झांकी प्रस्तुत की गई थी। हिन्दी के विभिन्न कालों के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकारों और कवियों के चित्रों की एक आकर्षक प्रदर्शनी भी लगाई गई।

देवनागरी लिपि के क्रमिक विकास का सचित्र चित्रण भी इस प्रदर्शनी में किया गया। सम्मेलन की समाप्ति पर प्रदर्शनी में रखी हुई सभी पुस्तकों, चित्रों और सामग्री को भारत सरकार की ओर से ट्रिनीडाड एवं टुबैगो को उपहार स्वरूप भेंट कर दिया गया।

इस सम्मेलन की एक विशेषता यह रही कि इस अवसर पर भारत की ओर से पुणे की एक संस्था सी-डेक द्वारा एक कम्प्यूटर प्रदर्शनी भी लगाई गई, जिसमें लीला, मंच, अल्प तथा शब्द-रत्न आदि सा फ्टवेयर प्रदर्शित कर हिन्दी के प्रयोग में उनकी उपादेयता पर प्रकाश डाला गया और वहां प्रदर्शित कम्पयूटर को भी ट्रिनीडाड के प्रधानमंत्री को सप्रेम भेंट कर दिया गया। इस प्रदर्शनी की वहां उपस्थित लोगों और राजनीतिज्ञों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

रामलीला तथा नौटंकी का प्रदर्शन

वहां के आप्रवासी भारतीयों की रुचि को ध्यान में रखकर भारत सरकार की ओर से इस अवसर पर श्री राम भारतीय कला केन्द्र, नई दिल्ली की रामलीला मंडली और कानपुर से ग्रेट गुलाब थियेटर ग्रुप की नौटंकी भी भेजी गई थी, जिन्होंने कई दिनों तक विभिन्न स्थानों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित कर प्रदर्शन किया, जिसे देखने के लिए वहां के नागरिकों की अपार भीड़ रहती थी।

सम्मेलन के अवसर पर भारत सहित अनेक देशों के विश्व ख्याति के 18 हिन्दी विद्वानों को सम्मानित किया गया, जिनमें भारत से प्रो० विद्यानिवास मिश्र, प्रो० रामचन्द्र देव सम्मान ग्रहण करने के लिए ट्रिनीडाड गए थे। विदेशी विद्वानों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:—

श्री अभिमन्यु अनत (मारीशस), डा०, रूपर्ट स्नेल (ब्रिटेन), प्रो० हरिशंकर आदेश (कनाडा), डॉ० ज्ञानहंस देव अधीन (सूरीनाम), डा० रामदयाल राकेश (नेपाल), प्रो० ज्यांग हो ली (कोरिया), डा० रामभजन सीताराम (दक्षिण अफ्रीका), प्रो० एम० के० ब्रिस्की (पौलेण्ड), डॉ० ओदोलेन स्मेक्स (चैक गणराज्य), प्रो० डिन जिंगन (चीन), तथा भारत के डॉ० लोकेश चन्द्र, डॉ० नामवर सिंह, औ डॉ० नगेन्द्र।

सम्मेलन के अन्त में सर्वसम्मति से एक मंतव्य पारित किया गया, जिसमें विश्व हिन्दी सम्मेलन के लिए स्थायी सचिवालय की मारीशस में स्थापना के लिए मारीशस और भारत सरकार से तत्काल कार्रवाई करने का

आग्रह किया गया। इसके कार्यान्वयन के लिए एक अन्तर-सरकारी समिति का गठन किए जाने पर जोर दिया गया, जिसमें सरकारी प्रतिनिधियों के अलावा पर्याप्त संख्या में हिन्दी के प्रति निष्ठावान साहित्यकारों को सम्मिलित किए जाने का आग्रह भी शामिल है। सभी देशों, विशेषकर जिन देशों में अप्रवासी भारतीय बसते हैं, उनकी सरकारों से आग्रह किया गया कि वे अपने देश में विभिन्न स्तरों पर हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करें। यह भी मंतव्य पारित किया गया कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार में संलग्न स्वयं सेवी संस्थाएं और हिन्दी विद्वान अपनी-अपनी सरकारों से आग्रह करें कि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के लिए वे राजनयिक योगदान और समर्थन दें।

सम्मेलन की उपलब्धियां

इस सम्मेलन की कई उपलब्धियां रहीं। इसे हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार की दिशा में मील का एक पत्थर माना जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि हिन्दी की ध्वजा को पश्चिमी जगत में पहली बार एक विशाल सम्मेलन द्वारा फहराया गया और 35 से अधिक देशों के प्रतिनिधि वहां उपस्थित हुए, जिन्होंने विश्व भाषा के रूप में हिन्दी की प्रमुख भूमिका को स्वीकारा। सभी का यह आग्रह था कि विश्व में किसी न किसी रूप में हिन्दी बोलने और समझने वाले लोगों का विश्व में तीसरा नम्बर है। इसलिए इनकी आवाज़ को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुना जाना चाहिये और इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

आज हिन्दी का अस्तित्व विश्व के हर क्षेत्र में किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होता है और इसकी उपयोगिता को स्वीकार भी किया जाने लगा है। इसका एक बड़ा प्रमाण हमें ट्रिनीडाड की अपनी इस यात्रा में भी देखने को मिला। दिल्ली से इंग्लैण्ड और इंग्लैण्ड से न्यूयार्क तक, अमेरीका की युनाइटेड कैरेबियन सागर के द्वीपों में, विशेषकर ट्रिनीडाड एवं टुबैगो, सूरीनाम और गयाना आदि में हिन्दी का एक अलग रूप विकसित हो रहा है। जो भोजपुरी बोली पर आधारित होते हुए भी, अनेक भाषाओं से प्रभावित हिन्दी का नया रूप है। सूरीनाम में इसे "सरनामी हिन्दी" का नाम दिया गया है। यह बोलचाल की हिन्दी है, जिसे देवनागरी लिपि और रोमन लिपि दोनों में लिखा जाता है। इसे सरकारी मान्यता भी प्राप्त है। मैंने एक गोष्ठी में सूरीनाम के विद्वानों से 'सरनामी हिन्दी' के लिए केवल नागरी लिपि अपनाने का आग्रह किया था। किन्तु कुछ लोगों ने रोमन को भी आवश्यक समझा। वैंजुएला में भारत के राजदूत श्री सिंह भी वहां रोमन लिपि का प्रचार करते नज़र आए। इन देशों में नागरी लिपि के प्रयोग का महत्व इसलिए भी उचित है, क्योंकि वे भारतीय संस्कृति और भाषा से जुड़ना चाहते हैं। रोमन लिपि इसमें सहायक नहीं हो सकती। वे हिन्दी को भूल चुके हैं। ट्रिनीडाड में अंग्रेजी ने हिन्दी को पूर्णतः निगल लिया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि अब से 50 वर्ष पहले जो हिन्दी वहां बोली जाती थी, वह आज समाप्त कैसे हो गई? अब समय की धारा फिर से मुड़ती नज़र आती है। आज यहां के लोग हिन्दी गानों और फिल्मों में रुचि ले रहे हैं और हिन्दी फिल्मों की लय और ताल पर थिरकते हैं। भले ही वे उनका अर्थ न समझते हों। यह शुभ लक्षण है कि वहां की नई पीढ़ी जो हिन्दी को बिलकुल भूल चुकी है, उनमें अब हिन्दी जानने और भारतीय संस्कृति से जुड़ने की पीड़ा स्पष्ट दिखाई दे रही है। वे अभी भी अपने पूर्वजों की बोली और संस्कृति को याद करते हैं, जो 150 वर्ष पहले पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा के क्षेत्रों से वहां गए थे और भोजपुरी तथा अवधी मिश्रित हिन्दी बोलते थे। वे अपने साथ राम चरित मानस की चौपाइयों, हनुमान चालीसा तथा तोता-मैना के किस्से और कहानियां लेकर गए थे, जिन्हें उन्होंने पीढ़ी दर पीढ़ी अपने हृदय में संजोए रखा है। वे होली, दीवाली, दशहरा, शिवरात्रि और ईद के उत्सव आज भी उसी निष्ठा से मनाते हैं, जैसे भारत के लोग मनाते हैं। किन्तु बोल-चाल की भाषा अंग्रेजी हो गई है, जिससे लगता है कि नई पीढ़ी अब उतार फैंकना चाहती है। किन्तु प्रश्न और भी है। क्या वे केवल भावना वश ही हिन्दी को ग्रहण करेंगे?

यहां इंग्लैण्ड में भारत के उच्च आयुक्त डॉ० लक्ष्मीमल सिंघवी का यह कथन उद्धृत करना भी असंगत न होगा कि "अब विश्व में जहां भी भारतीय रहते हैं वहां सूर्य कभी अस्त नहीं होता"। जिसका स्पष्ट अर्थ है कि भारतीय भाषा और संस्कृति के लोग विश्व के कोने-कोने में फैले हुए हैं। हमें इस विद्यमानता को उपयोगिता में बदलना होगा। जो भारतीय संस्कृति और भाषा के सूत्रों द्वारा ही सम्भव है। इससे विश्व में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की कल्पना को साकार करने में और विश्व शांति की दिशा में भारत को अपनी भूमिका निभाने में सहायता मिलेगी। विश्व हिन्दी सम्मेलन भी इसी दिशा में मील का एक पत्थर है। ◻

"अगर आज हिन्दी भाषा मान ली गई तो वह इसलिए नहीं कि वह किसी प्रांत विशेष की भाषा है, बल्कि इसलिए कि वह अपनी सरलता, व्यापकता तथा क्षमता के कारण सारे देश की भाषा है"

-नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

चीन में हिंदी

—डॉ॰ ओमप्रकाश सिंहल

आज संसार के अनेक देशों में भारतीय मूल के लोग बसे हुए हैं। उनके पूर्वज समय-समय पर विभिन्न कारणों से विदेश गए और वहीं के हो कर रह गए। उन्होंने अपने आपको वहां की मिट्टी, पानी और हवा से एकरस कर लिया। इसके बावजूद वे अपनी सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक विश्वासों, जीवन-मूल्यों तथा रीति-रिवाजों को विस्मृत नहीं कर पाए। सच तो यह है कि उन्होंने इन सबको अमूल्य थाती के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी संजोए रखा। इन परम्पराओं के संरक्षण में उनकी अपनी-अपनी मातृभाषाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। विदेशों में भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की परंपरा के पीछे यह एक प्रमुख कारण रहा है।

विदेशों में बसे भारतवंशियों में हिंदी-भाषा-भाषियों की संख्या सर्वाधिक है। अतएव, यह स्वाभाविक है कि जितना ध्यान हिंदी-शिक्षा की व्यवस्था की ओर दिया गया उतना शेष भारतीय भाषाओं के प्रशिक्षण की ओर नहीं दिया गया। इग्लैंड, अमेरिका, ट्रिनीडाड, गयाना, सूरीनाम, फीजी, मारीशस, दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में हिंदी-शिक्षण की वर्तमान व्यवस्था से इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

भारतवंशियों ने चीन जाकर आसन नहीं जमाया। सच तो यह है कि वहां पीढ़ी-दर-पीढ़ी निवास करने वाले भारतवंशी हैं ही नहीं। यदि कुछ भारतवंशी वहां कभी-कभार पहुंचे तो वे चीनी जन-जीवन में इस प्रकार रस-बस गए कि आज उनके वंशज भारतवंशी होने की पहचान खो बैठे हैं। अतएव चीन में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था भारतवंशियों के लिए नहीं की गई। यह तो चीनियों को भारत के संबंध में अधिकाधिक प्रामाणिक जानकारी प्रदान करने के निमित्त प्रारंभ की गई थी और आज भी इसका मुख्य लक्ष्य यही है।

चीन में हिंदी-शिक्षण की परंपरा अपनी पचासवीं वर्षगांठ मना चुकी है। इसकी शुरुआत सन् 1942 में खुनमिङ के ओरियंटल स्कूल ऑफ लेंग्वेजज एंड लिटरेचर में दो वर्षीय पाठ्यक्रम से हुई थी। हिंदी पढ़ने के लिए जिन दो विद्यार्थियों ने सर्वप्रथम प्रवेश लिया था उनके नाम थे याङ रुई लिन तथा ली खऊ। दो वर्ष तक अध्ययन करने के बाद ये दोनों भारत चले गए। वहां उन्होंने शांतिनिकेतन में अध्ययन किया। लेकिन यह अध्ययन हिन्दी का न हो कर इतिहास का था। अपने भावी जीवन में भी इन्होंने इतिहास को ही अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। सन् 1945 ई॰ में स्कूल ऑफ ओरियंटल लेंग्वेजज़ एण्ड लिटरेचर छङ छिङ चला आया। अतएव हिंदी-शिक्षण का केन्द्र भी खुनमिङ के स्थान पर छुङ छिङ हो गया। यहां पर हिन्दी का पाठ्यक्रम दो वर्ष के स्थान पर तीन वर्ष का कर दिया गया। एक वर्ष बाद इस अध्ययन-केन्द्र का पुनः स्थान-परिवर्तन हुआ। अब वह नानचिङ आ गया। नानचिङ में इस संस्थान ने सन् 1949 ई॰ तक कार्य किया। तदनंतर हिंदी की पढ़ाई पेइचिङ विश्वविद्यालय में प्रारंभ हुई। सम्प्रति हिंदी की विधिवत एवं नियमित पढ़ाई की व्यवस्था केवल पेइचिङ विश्वविद्यालय में ही है।

पेइचिङ विश्वविद्यालय में हिंदी का स्नातक स्तरीय पाठ्यक्रम सन् 1949 ई॰ में प्रारंभ हुआ। पहले वर्ष केवल दो विद्यार्थियों ने प्रवेश लिया। दूसरे वर्ष अर्थात् सन् 1950 ई॰ में कोई दाखिला नहीं हुआ। सन् 1951 ई॰ में छत्तीस विद्यार्थियों ने प्रवेश लिया। सन् 1952 ई॰ में किसी विद्यार्थी को प्रवेश नहीं दिया गया। लेकिन सन् 1953 ई॰ से सन् 1958 ई॰ तक प्रतिवर्ष दाखिला हुआ। इस कालावधि में हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की सर्वाधिक संख्या सन् 1956 ई॰ में रही जब 27 विद्यार्थियों ने हिंदी को मुख्य विषय के रूप में चुनते हुए प्रवेश लिया। सन् 1959 ई॰ में एक बार फिर कोई विद्यार्थी दाखिल नहीं किया गया। लेकिन इसके बाद सन् 1960 ई॰ से सन् 1962 ई॰ तथा सन् 1964 और सन् 1965 के दौरान हिंदी पाठ्यक्रम के लिए विद्यार्थियों को प्रवेश दिया गया। सन् 1965 ई॰ में इक्यावन विद्यार्थियों ने प्रवेश लिया। सन् 1966 ई॰ में चीन में सांस्कृतिक महाक्रांति का दौर शुरू हुआ। इस दौरान स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों में ताले ठोंक दिए गए। अध्यापकों को कठोर श्रम वाला काम दे कर देहातों में भेज दिया गया। बहुत से अध्यापकों को च्याङ शी प्रांत के नानछाङ शहर से पचास किलोमीटर दूर यूवी च्यू में शारीरिक श्रम के प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। सन् 1970 ई॰ में यहां पर अंग्रेजी, रूसी, तथा वियतनामी भाषायें पढ़ने के लिए तीन सौ से भी अधिक विद्यार्थी दाखिल किए गए। किस विद्यार्थी को किस भाषा का अध्ययन करना है, इसका निर्णय पढ़ने वाले विद्यार्थी के स्थान पर सरकार द्वारा किया गया। हिन्दी के अध्ययन के निमित्त अट्ठासी विद्यार्थियों को प्रवेश दिया गया। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी सेना से आए थे। इन विद्यार्थियों ने अपने भावी जीवन में हिन्दी का कोई कार्य नहीं किया।

टवी च्यू में हिन्दी केवल एक वर्ष तक अर्थात् सन् 1970-71 ई॰ के दौरान ही पढ़ाई गई। इन विद्यार्थियों को आगे की पढ़ाई के लिए पेइचिङ विश्वविद्यालय भेज दिया गया। इस प्रकार सन् 1971 ई॰ से पेइचिङ विश्वविद्यालय में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन पुनः प्रारंभ हुआ। लेकिन अब हिन्दी कक्षाओं में प्रवेश प्रति वर्ष न दिया जा कर तीन, चार या पांच वर्ष में एक बार दिया जाने लगा। आज भी कमोबेश यही स्थिति है। यदि

कोई अन्तर आया है तो केवल इतना कि अब हिन्दी में एम० ए० तथा पी० एच० डी० करने तक ही व्यवस्था हो गई है। इस समय केवल एक विद्यार्थी पी० एच० डी० कर रहा है। उसका नाम है—च्याड चुङ खुई। हिन्दी में पी० एच० डी० के लिए प्रवेश लेने वाला यह पहला विद्यार्थी है।

सन् 1949 ई० में जब पेइचिङ विश्वविद्यालय में स्कूल ऑफ ओरियंटल लेंग्वेजेज़ के अंतर्गत हिन्दी-शिक्षण का पाठ्यक्रम प्रारंभ हुआ तब श्री यिन होंग युएन को साठ य्वान (एक य्वान=तीन रुपये पैंसठ पैसे) मासिक वेतन पर सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया। श्री यिन यहां आने से पूर्व पांच मास तक अर्थात् दिसंबर 1949 ई० से अप्रैल, 1949 ई० तक नानचिङ के स्कूल ऑफ ओरियंटल लेंग्वेजेज़ एण्ड लिटरेचर में हिन्दी पढ़ा चुके थे। वैसे उन्होंने वहीं से हिन्दी को मुख्य विषय के रूप में चुनते हुए स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। श्री यिन के बाद विभाग में आवश्यकतानुसार अन्य अध्यापक भी नियुक्त किए गए। समय-समय पर जिन अध्यापकों की नियुक्ति हुई उनमें श्री श्री चिन ख मू को छोड़कर शेष सभी अध्यापक विभाग के छात्र रहे थे। सच तो यह है कि आज चीन में जहां कहीं भी हिन्दी का काम होता है वहां मुख्यतः इसी विभाग से पढ़कर निकले विद्यार्थी काम कर रहे हैं। चीन का अंतर्राष्ट्रीय रेडियों ही एक मात्र ऐसा संस्थान है जहां कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने ब्राडकास्टिंग कालेज तथा पेइचिङ के 'भाषा-विद्यालय' में हिन्दी का अध्ययन किया था। ब्रांडकास्टिंग कालेज में हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था सन् 1964 ई० से सन् 1968 ई० तक अर्थात् केवल चार वर्ष तक रही। सांस्कृतिक महाक्रांति के बाद वहां का हिन्दी-विभाग बंद कर दिया गया।

पेइचिङ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में अब तक जिन चीनी शिक्षकों ने हिन्दी पढ़ाई है उनके नाम हैं— सर्वश्री यिन होंग युएन, चिन ख मू फङ० चङ० तू ल्यू आन ऊ, स्व० श्री श्याओ याङ, ल्यू क्वों नान, जिन दिङ हान, मा मङ० काङ स्व० (श्रीमती) वाङ ई श्याङ वाङ सू इन, चाङ श्वाङ कू, थाङ रन हू, वाङ मिङ लिङ तथा श्रीमती लिङ फेई। यों तो इन सभी ने अपने-अपने क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की है किन्तु फिर भी कुछ अपने उच्चारण एवम् शिक्षण, कुछ शोध और आलोचना, कुछ कोश-निर्माण एवम् व्याकरण, कुछ पाठ्य पुस्तक-निर्माण एवम् कुछ अनुवाद-कार्य के लिए प्रख्यात हैं।

पेइचिङ विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने का श्रीगणेश यिन होंग युएन ने किया था। अतएव शिक्षण, शोध, कोश-निर्माण, अनुवाद आदि की दिशा में किए गए कार्य का लेखा-जोखा करते समय सर्वप्रथम उनकी चर्चा करना ही समीचीन प्रतीत होता है। प्रोफेसर यिन ने तीन दिशाओं में कार्य किया है। ये हैं— व्याकरण, पाठ्य-पुस्तक-निर्माण तथा अनुवाद। उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति "हिन्दी व्याकरण" है। यह कृति तीस वर्षों तक निरंतर किए गए कार्य का परिणाम है। सन् 1993 ई० में प्रकाशित यह कृति चीन में "हिन्दी व्याकरण" पर लिखी गई पहली पुस्तक है। चीनी भाषा में लिखी गई 640 पृष्ठों की इस पुस्तक में विषय के स्पष्टीकरण के लिए हिन्दी से भरपूर उदाहरण दिए गए हैं। विद्वान लेखक को हिन्दी व्याकरण के नियमों-उपनियमों का ही नहीं, अपितु अपवादों की भी भरपूर जानकारी है। विवेचन इतना निभ्रांत है कि पाठक कहीं भी गुमराह नहीं होता। इस पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व प्रोफेसर यिन ने स्व० (श्रीमती) श्वी श्यओं याङ के सहयोग से चीनी भाषा के माध्यम से अपने आप हिन्दी सीखने वालों के लिए "स्वयं हिन्दी शिक्षक" पुस्तक भी तैयार की थी। इलाचन्द्र जोशी के दो उपन्यासों "सन्यासी' तथा "जहाज़ का पंछी" और प्रेमचंद कृत "रामचर्चा" के चीनी-अनुवाद उनकी उल्लेखनीय अनूदित रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने प्रोफेसर मां के साथ मिल कर वृंदावन लाल वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास "झांसी की रानी" का भी सरस एवं प्रवाहपूर्ण अनुवाद किया है। कामता प्रसाद गुरू के "हिन्दी व्याकरण" का चीनी अनुवाद उनकी ऐसी उल्लेखनीय रचना है जो अभी प्रकाशन की प्रतीक्षा में है।

प्रोफेसर चिन ख मू मूलतः संस्कृत के विद्वान हैं। वे सन् 1941 ई० में बर्मा के रास्ते भारत आए थे। भारत में छह वर्ष तक संस्कृत का अध्ययन करने के बाद वे सन् 1947 ई० में चीन वापिस गए और वहां के ऊहान विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के अध्यापक नियुक्त हुए। कुछ समय बाद वे पेइचिङ विश्वविद्यालय में संस्कृत तथा हिन्दी के अध्यापन-कार्य के लिए नियुक्त किए गए।

आपने अध्यापन-कार्य के साथ संस्कृत के कई ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया जिनमें कालिदास कृत मेघदूत का अनुवाद सर्वाधिक उल्लेखनीय है। "संस्कृत साहित्य का इतिहास" तथा "चीन भारत मैत्री का संक्षिप्त इतिहास" उनकी दो ऐसी उत्कृष्ट कृतियां हैं जिनसे उनकी शोधपूरक सूक्ष्म दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। वे सन् 1987 ई० में प्रोफेसर के पद से सेवा निवृत्त हुए।

प्रोफेसर मा मङ काङ की प्रतिष्ठा उनके सर्वथा निर्दोष हिन्दी उच्चारण के लिए है। प्रोफेसर यिन तथा प्रोफेसर चिन ख मू के समान वे भी सेवानिवृत्त हो चुके हैं। जयशंकर प्रसाद उनके प्रिय लेखक हैं। हिन्दी के मौखिक एवम् लिखित अर्थात् दोनों ही रूपों पर अच्छा अधिकार होने के कारण उन्होंने स्नातक कक्षाओं के लिए दो अत्युत्तम पाठ्यपुस्तकें तैयार की हैं। उनके नाम हैं—"हिन्दी पाठ्य पुस्तक भाग तीन तथा चार"। उन्होंने प्रेमचंद की "इदगाह" तथा "मृतक भोज" कहानियों को चीनी भाषा में इस प्रकार अनूदित किया है कि वे मूलनिष्ठ होने के साथ-साथ अत्यन्त प्रवाहपूर्ण बन पड़ी हैं। अन्य चीनी विद्वानों के साथ मिल कर उन्होंने प्रेमचंद के दो अन्य उपन्यासों "निर्मला" तथा 'रंगभूमि" का अत्यन्त पठनीय अनुवाद किया है।

स्व० ल्यू क्वो नान धारा-प्रवाह हिन्दी बोलने वाले प्राध्यापक होने के अतिरिक्त प्रत्येक भारतीय वस्तु से प्रेम करने वाले हिन्दी विद्वान थे। हिन्दी का अध्ययन पहले चीन के पेइचिङ विश्वविद्यालय में और तदनंतर भारत में किया। सन् 1951 ई० से सन् 1954 ई० तक चीन में हिन्दी की पढ़ाई करने के बाद उन्हें सन् 1954 ई० के सत्र में आगे की पढ़ाई के लिए भारत भेजा गया। भारत में उन्होंने पहले एक वर्ष तक दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज कालेज में अध्ययन किया। फिर वे वाराणसी चले गए। वहां उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में तीन वर्ष तक रह कर न केवल हिन्दी का अध्ययन किया अपितु भारतीय संस्कृति को भी पूर्णतः आत्मसात किया। सन् 1958 ई० में चीन लौटने पर उनकी नियुक्ति पेइचिङ विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषा विभाग में हिन्दी अध्यापक के रूप में हो गई। सन् 1980 ई० तक इस विभाग में कार्य करने के बाद वे दक्षिण एशियाई अनुसंधान संस्थान चले गए और मृत्युपर्यन्त वहीं पर कार्यरत रहे। अपने अन्य सहयोगियों के समान उन्होंने भी लेखन और अनुवाद के क्षेत्र में दत्त चित्त हो कर कार्य किया। चीनी जनता को भारतीय संस्कृति से

परिचित कराने के लिए उन्होंने प्रोफेसर वाङ शू०इङ के साथ मिल कर चीनी भाषा में "भारत के विभिन्न प्रांतों का इतिहास तथा संस्कृतियां" पुस्तक का प्रणयन किया। इस दिशा में चीनी भाषा में लिखी उनकी दो अन्य कृतियां हैं— "भारत की लोककथाएं", तथा "भारतीय पौराणिक कथाएं"। वे हिन्दी से चीनी और चीनी से हिन्दी में अनुवाद करने में भी अत्यन्त दक्ष थे। उन्होंन प्रेमचंद की दो कहानियों "विध्वंस" तथा "मंदिर" का चीनी भाषा में और अपनी पत्नी तथा उर्दू विशेषज्ञा श्रीमती शान युन के प्रेमचंद विषयक एक निबंध "बाल कथा साहित्य में यथार्थवाद" का चीनी से हिन्दी में प्रवाहपूर्ण अनुवाद किया है।

प्रोफेसर ल्यू आन ऊ चीन के प्रेमचंद-विशेषज्ञ हैं। संप्रति पूरे चीन में वे एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें हिन्दी में पीं०एच०डी० की उपाधि के लिए निर्देशक होने का अधिकारी माना गया है। इस समय उनके निर्देशन में श्री चाङ चुङ खुई "हिन्दी नाटक और रंगमंच" विषय पर शोध-कार्य कर रहे हैं। प्रोफेसर ल्यू ने प्रेमचंद की लगभग अस्सी कहानियों का चीनी भाषा में अनुवाद किया है। ये अनूदित कहानियां "घासवाली", "नया विवाह", तथा "कामना तरु" शीर्षकों से तीन स्वतंत्र पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुई हैं। "प्रेमचंद और उनका साहित्य उनका बहुचर्चित आलोचना ग्रंथ है"। "रंग-बिरंग" जीवन चित्र—"प्रेमचंद की कहानियों की विषयवस्तुएं" उनका प्रसिद्ध आलोचनात्मक निबंध है जो सन् 1981 ई० में पेइचिङ विश्वविद्यालय प्रकाशन-गृह द्वारा प्रकाशित पत्रिका "विदेश का साहित्य" के पहले अंक में प्रकाशित हुआ था। प्रोफेसर ल्यू की दृष्टि में प्रेमचंद-साहित्य की मूलभूत विशेषता समाज के निर्धन एवम् शोषित लोगों की आशा-निराशा तथा हर्ष-विषाद का सहानुभूतिपूर्वक प्रत्यंकन है। भारत के निर्धन किसान का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाला "होरी" प्रेमचंद की पात्र-सृष्टि का सर्वोच्च शिखर है।

भारत में चीन के जिस हिन्दी-प्रेमी विद्वान की सर्वाधिक चर्चा है वे भी इसी विभाग के प्रतिष्ठित प्रोफेसर रहे हैं। मेरा अभिप्राय गोस्वामी तुलसीदास विरचित "रामचरितमानस" के चीनी अनुवादक प्रोफेसर जिन० दिङ हान से है। अनुवादक होने के अतिरिक्त वे सूक्ष्म दृष्टि वाले समालोचक तथा कोशकार भी हैं। समालोचना के क्षेत्र में उनकी विशेष पहचान भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य के संदर्भ में है। देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं में उनके आलोचनात्मक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। सन् 1988 में प्रकाशित "हिन्दी-चीनी मुहावरा कोश" कोश-कार्य के क्षेत्र में उनकी कालजयी कृति है। तीस वर्षों की सतत साधना के फलस्वरूप तैयार हुए कोश में लगभग बीस हजार हिन्दी-मुहावरों के अर्थ चीनी भाषा में देने के साथ-साथ यथास्थान समतुल्य चीनी मुहावरे भी दिए गए हैं। इससे दोनों देशों की सामाजिक-सांस्कृतिक समानताओं का पता चलता है। हिन्दी-मुहावरों के प्रयोगत रूप को स्पष्ट करने के लिए दिए गए सभी उदाहरण हिन्दी साहित्य के मानक ग्रंथों से लिए गए हैं। प्रोफेसर हान ने स्नातक कक्षाओं में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए दो पाठ्यपुस्तकें भी तैयार की हैं। सन् 1995 ई० में वे पेइचिङ विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्त हो चुके हैं।

भारतीय इतिहास, संस्कृति और रीति-रिवाज़ों को अपने विशेष अध्ययन एवम् शोध-कार्य का क्षेत्र चुनने वाले प्रोफेसर वाङ शू० इङ सन् 1965 ई० से सन् 1978 ई० तक पेइचिङ विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में कार्य करते रहे हैं। सन् 1978 ई० में वे चीन की सामाजिक विज्ञान अकादमी में चले गये। संप्रति वे वहीं पर कार्यरत हैं। वे हिंदी तथा चीनी दोनों भाषाओं में लिखते हैं। लेकिन उनका अधिकांश हिंदी-लेखन चीन गए भारतीय विशेषज्ञों द्वारा संशोधित किया गया है। एक ही रचना का संशोधन कई-कई भारतीय विद्वानों ने किया है—यह जाने बिना कि वह रचना पहले भी किसी भारतीय विद्वान द्वारा संशोधित की जा चुकी है। अतएव यह कहना अत्यंत कठिन है कि उनके हिन्दी-लेखन में कितना अंश उनका अपना है और कितना दूसरों का। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उनमें हिन्दी के मौखिक और लिखित रूप पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने की अदम्य लालसा है और वे इस दिशा में निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। अन्य चीनी विद्वानों के समान प्रोफेसर वाङ०शू०इङ० को भी सदैव यह इच्छा रहती है कि चीनी जनता को भारत विषयक अधिकाधिक प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हो। इसी निमित्त वे निरंतर लेखन-कार्य में जुटे रहते हैं और अपना सभी लेखन मुख्यतः चीनी भाषा में करते हैं। अब तक उनकी पांच महत्वपूर्ण रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। ये हैं—(1.) भारतीय सभ्यता और रीति-रिवाज (2) भारत का प्रांतीय इतिहास और रीति-रिवाज (3) भारतीय लोक कथाएं एवम् किंवदंतियां, (4) विदेशी रीति-रिवाज कोश और (5) भारत तथा चीन की नीति कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन।

कुछ समय भारत स्थित चीनी दूतावास में प्रथम सचिव (शिक्षा) के पद पर कार्य कर रहे श्री चाङ०श्वाङ० कू भी पेइचिङ विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में प्राध्यापक रहे हैं। उन्होंने हिन्दी का अध्ययन पहले चीन में और तदनंतर भारत में किया था। अध्यापन-कार्य के साथ-साथ उन्होंने पाठ्य पुस्तकें तैयार करने का कार्य भी किया है। चीनी विद्यार्थियों द्वारा बोलचाल की हिंदी पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्होंने मौखिक वार्तालाप की कई पुस्तकें भी तैयार की हैं। प्रोफेसर जिन दङहानं के साथ मिलकर तैयार की गई "हिन्दी पाठ्य पुस्तक" उनकी एक अन्य उल्लेखनीय पुस्तक है। उन्होंने प्रेमचंद की दो कहानियों "बड़े घर की बेटी" तथा "नशा" का भी चीनी भाषा में अनुवाद किया है।

विभाग के वर्तमान अध्यक्ष श्री थाङ रन हू हैं। उन्होंने हिन्दी का अध्ययन पहले चीन में और बाद में पाकिस्तान में किया। उन्हें पाकिस्तान में हिन्दी का अध्ययन इसलिए करना पड़ा क्योंकि उन दिनों भारत और चीन के आपसी संबंध अच्छे नहीं थे। जब भारत और चीन के आपसी संबंध सुधर गए तब उन्हें हिन्दी के उच्च अध्ययन के निमित्त कुछ समय के लिए भारत भी भेजा गया। भारत में रहते हुए उन्होंने बोलचाल की हिन्दी पर अच्छा अधिकार प्राप्त किया। उन्होंने अध्यापन-कार्य के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य एवम् भारतीय संस्कृति विषयक लेख लिखे हैं। विभाग द्वारा तैयार किए गए चीनी-हिन्दी शब्दकोश में हाथ बंटाने के साथ-साथ पाठ्य पुस्तकें तैयार की हैं तथा हिन्दी रचनाओं का चीनी भाषा में अनुवाद किया है। प्रोफेसर जिन दिङहान के साथ मिल कर तैयार की गई पुस्तक "हिन्दी पाठ्य पुस्तक' भाग एक हिन्दी सीखने वालों के लिए पहली पुस्तक है। इस पुस्तक में देवनागरी लिपि सीखने की विधि, अक्षरों तथा शब्दों के उच्चारण एवं व्याकरणिक नियमों को इतने वैज्ञानिक ढंग से समझाया गया है कि यदि कोई चाहे तो इसका उपयोग स्वयं हिन्दी शिक्षक के रूप में भी कर सकता है। प्रोफेसर ओम्प्रकाश सिंहल के साथ मिल

कर तैयार की गई "हिन्दी निबंध संकलन" 'भाग एक तथा दो' उनकी दूसरी उल्लेखनीय पाठ्यपुस्तक है। इस पुस्तक में उन्होंने मुख्यतः चीनी से हिन्दी में अनुवाद करने के लिए दिए गए अभ्यास तैयार किए हैं। स्नातक कक्षाओं के लिए ही तैयार की गई उनकी दो अन्य पुस्तकें हैं—हिन्दी कहानी संग्रह एवम् हिन्दी गद्य संकलन। हिन्दी कहानी संग्रह का पुनरीक्षण प्रोफेसर (डॉ॰) ओम्प्रकाश सिंहल ने किया है। इन दोनों ही पुस्तकों की उल्लेखनीय विशेषता है—सांस्कृतिक पृष्ठाधार वाले शब्दों की यथास्थान व्याख्या। उन्होंने प्रेमचंद की दो कहानियों "मां" तथा "लांडरी" के अतिरिक्त जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास "त्यागपत्र" का चीनी भाषा में अनुवाद किया है।

अभी तक के इस विवरण से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि समय-समय पर कार्यरत अन्य विभागीय सदस्यों ने अध्यापन कार्य के अतिरिक्त मौलिक लेखन, अनुवाद अथवा पाठ्य-सामग्री निर्माण आदि की दिशा में कुछ नहीं किया। सच तो यह है कि चीनी जनता तथा हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति एवम् साहित्य से परिचित कराने अथवा हिन्दी बोलने, लिखने एवम् अनुवाद-कार्य में दक्षता प्राप्त करने के लिए अपेक्षित आधारभूत सामग्री तैयार करने का काम विभाग के सभी सदस्य करते रहे हैं। यह बात दूसरी है कि कुछ अध्यापकों ने बहुत ज्यादा काम किया है और कुछ ने कम । प्रेमचंद की कहानियों के चीनी अनुवाद विभाग के प्रायः सभी अन्य अध्यापकों ने भी किए हैं। उदाहरणार्थ श्री फङ चङ तू ने "नैराश्य लीला", "दूध का दाम" तथा "दो बहनें" स्व॰ श्रीमती श्वी श्याओ याङ ने "सत्याग्रह", "शतरंज के खिलाड़ी" तथा "पूस की रात " और स्व॰ श्रीमती वाङई॰श्याङ ने "ठाकुर का कुआं" के चीनी भाषा में ऐसे जीवंत अनुवाद किए हैं कि पाठक उन्हें दाद दिए बिना नहीं रह पाता। सुश्री वाङमिङलिङ ने "रंगभूमि और धर्म के प्रति दृष्टिकोण" शीर्षक से एक विचारोत्तेजक शोध-निबंध लिखा है। श्रीमती लिश्रफेई ने प्रोफेसर (डॉ॰) ओम् प्रकाश सिंहल के सहयोग से स्नातक कक्षाओं में पढ़ाई जा रही पाठ्य पुस्तकों के कैसेट तैयार किए हैं जिनकी सहायता से चीनी विद्यार्थी वाचन संबंधी अभ्यास करने के अतिरिक्त अपना उच्चारण सुधार सकते हैं तथा भारतीयों द्वारा बोली गई हिन्दी को समझते हुए उन्हीं के समान हिन्दी बोलने में दक्षता प्राप्त कर सकते हैं।

पेइचिङ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का विवरण प्रस्तुत करते हुए भारत से विशेषज्ञ के रूप में चीन गए अध्यापकों का उल्लेख कर देना भी समीचीन प्रतीत होता है। इन विशेषज्ञों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। पहला वर्ग उन विद्वानों का है जिनका चयन चीन लोक गणराज्य की सरकार ने स्वयं किया था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय विद्वान सन् 1985 ई॰ तक जाते रहे। इस व्यवस्था के अन्तर्गत चीन गए भारतीय विद्वान थे—सर्वश्री प्रह्लाद प्रधान, डॉ॰ जगदीश चंद्र जैन, गार्गी सूद, पुरुषोत्तम प्रसाद, भानुचंद्र वर्मा, राजेश शरण और डॉ॰ गोविन्द राजगुरू। वैसे हिन्दी पढ़ाने के लिए चीन जाने वाले पहले भारतीय विद्वान श्री कृष्ण किंकर सिंह थे। उसके बाद श्री वीरेन्द्र कुमार ने भी कुछ समय तक हिन्दी पढ़ाई थी—यद्यपि वे चीनी भाषा पढ़ने के लिए चीन गए थे, न कि हिन्दी पढ़ाने के लिए। दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो चीन लोक गणराज्य तथा भारत के बीच हुए समझौते के अंतर्गत भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् तथा चीन की राज्य शिक्षा परिषद् के संयुक्त निमंत्रण पर सन् 1988 ई॰ से जाने शुरू हुए। इस योजना के अंतर्गत अब तक चीन गए भारतीय विद्वानों के नाम हैं सर्वश्री डॉ॰ राजकुमार गुप्त, डॉ॰ पूर्ण सिंह डबास तथा डॉ॰ ओम् प्रकाश सिंहल। भारत से गए विद्वानों में प्रोफेसर (डॉ॰) पूर्ण सिंह डबास तथा प्रोफेसर (डॉ॰) ओम् प्रकाश सिंहल ने हिन्दी-विभाग को समृद्ध करने में विशेष योग दिया। इन दोनों विद्वानों ने विभाग द्वारा तैयार किए जा रहे हिन्दी-चीनी शब्दकोष के अतिरिक्त पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने की दिशा में भी सक्रिय साझेदारी निभाई। प्रोफेसर (डॉ॰) डबास ने स्नातक कक्षाओं के लिए हिन्दी एकांकियों का एक प्रतिनिधि संकलन तैयार किया। प्रोफेसर (डॉ॰) ओम् प्रकाश सिंहल ने स्नातक कक्षाओं के लिए निबंधों का एक प्रतिनिधि संकलन तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए "प्राचीन काव्य संग्रह" पुस्तक संपादित की। प्रोफेसर सिंहल ने विद्यार्थियों को हिन्दी में ही लिखने और सोचने के लिए भी प्रेरित किया। उनके विद्यार्थियों ने हिन्दी में काव्य-रचना की, कहानियां लिखीं तथा एकांकियों का प्रणयन किया। कुछ विद्यार्थियों ने सर्वश्री मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद तथा अध्यापक पूर्ण सिंह के कृतित्व पर आलोचनात्मक निबंध लिखे। ये रचनाएं समय-समय पर 'विश्व विवेक' (अमेरिका), 'नंदन' (भारत) 'विश्व हिन्दी दर्शन' (भारत) तथा 'गग नांचल' (भारत) में प्रकाशित हुईं।

पेइचिङ॰ विश्वविद्यालय के अतिरिक्त पेइचिङ के "भाषा विद्यालय" अर्थात् "लैंग्वेज स्कूल" ने भी हिन्दी-शिक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस विद्यालय में हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था सन् 1952 ई॰ से सन् 1964 ई॰ तक रही। सन् 1964 ई॰ में इस विद्यालय के विभिन्न विभागों का विलय दूसरे शिक्षण संस्थानों में कर दिया गया। हिन्दी-विभाग ब्रॉडकास्टिंग कॉलेज में मिला दिया गया । भाषा विद्यालय में हिन्दी पढ़ाने वाले प्राध्यापकों में सर्वाधिक उल्लेखनीय नाम श्री चाङ छ फू का है। उन्होंने पेइचिङ विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा पास की थी तथा हिन्दी को अपने अध्ययन का मुख्य विषय चुना था। हिन्दी के मौखिक एवं लिखित अर्थात् दोनों ही रूपों पर उनका अच्छा अधिकार था। उनके विद्यार्थियों में श्री वाङ चिन (फङ) का नाम इसलिए उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपने भावी जीवन में हिन्दी को नानाविधि रूपों में समृद्ध किया। अपनी आजीविका के लिए उन्होंने चीन के अंतर्राष्ट्रीय रेडियो के हिन्दी-विभाग में काम करना प्रारंभ किया। उन्होंने लेखन, वाचन तथा अनुवाद-कार्य से इतनी दक्षता प्राप्त की कि भारतीय श्रोताओं को यह विश्वास ही नहीं होता कि वे किसी चीनी व्यक्ति के मुख से हिन्दी सुन रहे हैं। रेडियो के हिन्दी कार्यक्रमों को समृद्ध करने के साथ-साथ उन्होंने हिन्दी फिल्मों के चीनी-अनुवाद में भी प्रशंसनीय कार्य किया है। वे अब तक हिन्दी की पंद्रह फिल्मों का चीनी में भाषान्तर कर चुके हैं। हिन्दी-फिल्मों को चीनी में अनूदित करने वाले अन्य विद्वान हैं सर्व श्री छन ली शिङ तथा श्री छन शियुवो लेकिन ये दोनों विद्वान जहां गीतों का अनुवाद नहीं करते वहां श्री वाङ फिल्म में आए गीतों को चीनी भाषा में रूपांतरित करने में भी दक्ष हैं। किसी भी गीत का अनुवाद करने से पहले वे उसमें व्यक्त मनोभावों तथा शब्दों के साथ-साथ सुर की ओर भी पूरा-पूरा ध्यान देते हैं। इन तीनों को आत्मसात करने के बाद जब वे हिन्दी के फिल्मी गीतों को चीनी भाषा का बाना पहनाते हैं तो श्रोताओं को यह महसूस ही नहीं होता कि वह कोई अनूदित गीत सुन रहा है। वह उसे ऐसे गुनगुना उठता है मानो वह उसकी अपनी ही भाषा का कोई लोकप्रिय गीत हो।

ब्रॉडकास्टिंग कालेज में हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था सन् 1964 ई० से सन् 1968 ई० तक अर्थात् कुल चार वर्ष रही। सांस्कृतिक महाक्रांति के बाद जिन विद्यार्थियों ने इस कॉलेज में हिन्दी पढ़ी उन्होंने अपने भावी जीवन में चीन के अंतर्राष्ट्रीय रेडियो के हिंदी विभाग में नियुक्त होकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संप्रति पूरे चीन में हिंदी भाषा में काम करने वाले सर्वाधिक व्यक्ति अंतर्राष्ट्रीय रेडियो के हिंदी-विभाग में ही हैं। यहां पर अब तक कुल चौदह चीनियों ने काम किया है। हिंदी का काम करने वाले पहले व्यक्ति श्री ली म्याओ सङ थे। इस समय वे हांगकांग में रहते हैं तथा एक बैंक में काम करते हैं। श्रीमती लो फू इङ. सेवानिवृत्त हो चुकी हैं। संप्रति जो व्यक्ति कार्यरत हैं उनके नाम हैं — श्री सुन पाओ काङ०, श्रीमती सुन कुई इन, श्री वाङ० चिङ० फङ., हू वेई मिङ०, श्रीमती ल्यो हुई, छङ० श्वे पिङ०, श्री मू शओ लिङ०, श्रीमती चाओ युई हुआन, श्रीमती आओ मिङ० श्री छङ० चुङ० रन, श्रीमती याङ० ई फङ० तथा न्यू वेई तुङ०।

चीन में जहां-जहां दक्षिण एशियाई संस्थान हैं वहां-वहां हिंदी जानने वाले शोधार्थी भी कार्यरत हैं। इन संसथाओं में काम करने वाले कई कर्मचारी अंतः प्रेरणा के फलस्वरूप स्वतः हिंदी सीखते रहे हैं। संस्थान में शोध-कार्य में लगे हिंदी-विद्वान ऐसे विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते रहे हैं। उदाहरण के लिए सछवान विश्वविद्यालय, छङ० तू के दक्षिण एशियाई संस्थान में श्री याङ० रन त हिंदी के सुयोग्य विद्वान रहे हैं। संप्रति वह सेवानिवृत्त हो गए हैं किन्तु अपने कार्यकाल में उन्होंने अपने यहां के कई कर्मचारियों को हिंदी सिखाई। उन्होंने सन् 1954—58 ई० के दौरान पेइचिङ० विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्ययन मुख्य विषय के रूप में करते हुए स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इस विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हिंदी की पुस्तकों का भी अच्छा संकलन है।

शाङ० हाए के विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भारत संबंधी विविध विषयों पर हिन्दी में लिखी गई पुस्तकों का अच्छा संकलन होने के अतिरिक्त 'पूर्वी साहित्य का अध्ययन संस्थान' में हिन्दी जानने वाले प्राध्यापक भी है। ये हैं — श्री ल्यू तथा श्रीमती छिए। इन दोनों अध्यापकों ने पेइचिङ० विश्वविद्यालय में स्नातक परीक्षा की पढ़ाई के दौरान हिन्दी का अध्ययन मुख्य विषय के रूप में किया था। इनका यह हिंदी — प्रेम बाद में भी बना रहा और इन्होंने हिन्दी पढ़ने के लिए उत्सुक व्यक्तियों को सदैव पूरा सहयोग दिया। परिणामतः इनके यहां कार्यरत कतिपय कर्मचारियों ने हिंदी पढ़ना प्रारंभ किया। ऐसे व्यक्तियों में श्री शिन शिङ० पिङ० का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से हिंदी के मौखिक एवं लिखित रूपों पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया है। सन् 1995 ई० में उन्हें छह मास के लिए पेइचिङ० विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में उच्च अध्ययन के लिए भेजा गया था। 'विश्व हिंदी दर्शन' पत्रिका के जनवरी-मार्च, सन् 1996 ई० के अंक में अध्यापक पूर्ण सिंह के निबंध 'मजदूरी और प्रेम तथा प्रेमचंद के कालजयी उपन्यास 'गोदान' पर लिखे गए आलोचनात्मक निबंध उनकी विवेचन-क्षमता तथा हिंदी भाषाधिकार के परिचायक हैं। चीन में विदेशी भाषाओं के शिक्षण-प्रशिक्षण की मुख्य विशेषता यह है कि वहां विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप उपयुक्त पाठ्य सामग्री तथा स्तरित पाठ्य पुस्तकें, उच्चारण टेप, शब्दकोश आदि तैयार करके प्रकाशित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालीय एवम् राष्ट्रीय पुस्तकालय में हिंदी भाषा की पुस्तकें, दैनिक समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएं मंगवा कर विद्यार्थियों के ज्ञान को अद्यतन बनाए रखने की कोशिश की जाती है। चीन में हिंदी-शिक्षण का कार्य ज्यों-ज्यों गति पकड़ता गया त्यों-त्यों इन सभी दिशाओं की और भी समुचित ध्यान दिया गया। संप्रति स्थिति यह है कि चीन में हिंदी की ऐसी स्तरित पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें कठिन शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवम् विशिष्ट अभिव्यक्तियों के चीनी भाषा में अर्थ दिए गए हैं। ऐतिहासिक एवम् सांस्कृतिक संदर्भों को स्पष्ट करने वाली टिप्पणियां हैं; और कथ्य तथा अभिव्यक्तिपरक विस्तृत अभ्यास हैं। हिंदी-चीनी और चीनी-हिंदी शब्दकोश हैं, हिंदी-चीनी मुहावरा कोश हैं तथा हिंदी के समाचार पत्रों में प्रयुक्त होने वाली पारिभाषिक शब्दावली का संक्षिप्त शब्द-संग्रह है। हिंदी-चीनी शब्दकोश तथा हिंदी-चीनी मुहावरा कोश तो मुद्रित हैं जबकि चीनी-हिंदी शब्दकोश तथा त्रिभाषी हिंदी-अंग्रेजी —चीनी समाचार पत्र शब्दावली चक्रमुद्रित हैं। हिंदी-चीनी मुहावरा कोश प्रोफेसर जिन दिंग हान द्वारा तीस वर्षों तक अकेले ही किए गए सतत परिश्रम का प्रतिफल है जबकि चालीस हजार शब्दों का हिंदी-चीनी शब्दकोश पेइचिङ० विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के सदस्यों द्वारा परस्पर मिल कर डेढ़ वर्ष से भी कम समय में तैयार किए गए कार्य का अत्युत्तम उदाहरण है। यह कोश सन् 1960 ई० में साङ० ऊ प्रेस से प्रकाशित हुआ था। स्वनिर्धारित समय-सीमा के भीतर कम से कम अवधि में तैयार किए जानें के कारण कोश में कतिपय त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक था। अतएव हिंदी-विभाग अपने इस कार्य से संतुष्ट न था। फलतः विभाग ने एक वृहद एवम् प्रामाणिक शब्द-कोश के संपादन का काम अपने हाथ में ले लिया। कई वर्षों के कठोर परिश्रम के फलस्वरूप एक लाख बीस हजार शब्दों का नया हिंदी-चीनी शब्दकोश तैयार हो चुका है, लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के कारण मुद्रण कार्य रुका पड़ा है।

चीन में हिंदी-शिक्षण के ऐतिहासिक विकास क्रम पर दृष्टि निक्षेप करने के बाद हिंदी की पाठ्यचर्या, शिक्षण-प्रविधि, परीक्षा-पद्धति एवम् विभिन्न उपाधिपरक पाठ्यक्रमों के स्वरूप आदि से अवगत होना भी आवश्यक है।

चीन में पहले स्नातक पाठ्यक्रम पांच वर्ष का था। प्रथम वर्ष में सभी विद्यार्थियों को चाहे वह लड़का हो या लड़की — सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता था। इसके बाद वह चार वर्ष तक विश्वविद्यालीय शिक्षा प्राप्त करता था। संप्रति स्नातक पाठ्यक्रम चार वर्ष का है तथा अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण का एक वर्षीय कार्यक्रम समाप्त कर दिया गया है। हर वर्ष की पढ़ाई दो सत्रों में बंटी होती है। पहला सत्र सितंबर से प्रारंभ होकर दिसंबर-जनवरी अर्थात् चीनी नव वर्ष का छुट्टियों से पहले तक चलता है। दूसरा सत्र नव वर्ष की छुट्टियां समाप्त होने के बाद अर्थात् फरवरी मास में प्रारंभ होता है तथा पंद्रह जुलाई के आस-पास तक अर्थात् विश्वविद्यालय के ग्रीष्मावकाश के लिए बंद होने तक चलता है। विदेशी भाषाओं का प्रशिक्षण जिसमें हिंदी भी शामिल है इन्हीं नियमों से परिचालित होता है। हिंदी की पढ़ाई "स्कूल ऑफ ओरियंटल लेंग्वेजेज एंड कल्चर" के अंतर्गत होती है। हिंदी के तीन पाठ्यक्रम चलते हैं—स्नातक, स्नातकोत्तर एवम् पी० एच० डी०।

स्नातक पाठ्यक्रम के पहले वर्ष के पहले सत्र में हिंदी वर्णमाला के प्रशिक्षण के साथ-साथ हिंदी पाठ्यपुस्तकें भाग एक के दस पाठ पढ़ाए जाते हैं। दूसरे सत्र में पाठ्य पुस्तक के शेष पाठ पूरे किए जाते हैं।

वर्णमाला सिखाते समय उनके मौखिक तथा लिखित दोनों ही रूपों का अच्छा अभ्यास कराया जाता है। पाठ्य पुस्तक पढ़ाते समय विद्यार्थियों द्वारा उच्चरित शब्दों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। पाठ का वाचन पहले अध्यापक करता है और उसके बाद एक-एक विद्यार्थी से उसे पुनः पढ़वाया जाता है। कुछ समय बाद केवल विद्यार्थी ही पाठ पढ़ता है तथा अध्यापक अशुद्ध रूप में बोले गए शब्दों को सही ढंग से बोलना सिखाता है। पाठ्य पुस्तक पढ़ाते समय वाक्यों के व्याकरणिक ढांचे को स्पष्ट करते हुए व्याकरण के आधारभूत नियम समझाए जाते हैं। व्याकरणिक बिंदु विद्यार्थी की मातृभाषा अर्थात् चीनी में समझाए जाते हैं। यह कार्य चीनी शिक्षक करते हैं। पहले प्रथम वर्ष में हिंदी पढ़ाने का सारा दायित्व चीनी शिक्षक ही संभालते हैं किन्तु प्रोफेसर (डॉ॰) ओम् प्रकाश सिंहल ने अपने कार्यकाल में पहले वर्ष के विद्यार्थियों को स्वयं पढ़ाना इसलिए आवश्यक समझा कि विद्यार्थियों की नींव पक्की हो जाए। पहले वर्ष के विद्यार्थियों को हिंदी में बात करने का अभ्यास भी कराया जाता है। यह कार्य केवल कक्षा में ही सम्पन्न नहीं होता अपितु इसके लिए अन्य अनेक उपाय भी प्रयोग में लाए जाते हैं। उदाहरण के लिए विद्यार्थी विदेशी विशेषज्ञ

के साथ जाकर हाट-बाजार के काम में सहायता करते हैं। कभी विदेशी विशेषज्ञ के घर जाकर हिंदी में बतियाते हैं तो कभी उसके साथ दर्शनीय स्थलों की सैर के लिए जाकर हिंदी बोलने का अभ्यास बढ़ाते हैं। हिंदी पढ़ने वाले छात्रों को प्रायः एक ही कमरे में अथवा साथ-साथ सटे कमरों में रहने के लिए प्रेरित किया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि विद्यार्थी पढ़ाई में एक-दूसरे की सहायता कर सकें।

दूसरे वर्ष के विद्यार्थियों को हिंदी पाठ्य-पुस्तक भाग दो पढ़ाई जाती है। दृश्य-श्रव्य कक्ष में हिंदी फिल्म दिखाकर अंत में या बीच-बीच में बोधात्मक प्रश्न पूछे जाते हैं। इसी कक्ष में सप्ताह में दो घंटे मौखिक अभ्यास भी कराया जाता है। विद्यार्थियों को दैनिक जीवन से जुड़े किसी विषय पर या तो अकेले बोलने के लिए कहा जाता है या फिर दो-दो के समूह में बातचीत करने का अभ्यास कराया जाता है। पढ़ाए गए पाठों के उच्चारण टेप सुनवा कर विद्यार्थियों का उच्चारण शुद्ध कराया जाता है। पाठ के अंत में दिए गए सभी अभ्यास मौखिक एवं लिखित दोनों ही रूपों में कराए जाते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी की अभ्यास-पुस्तिका सावधानीपूर्वक जांची जाती है। विद्यार्थी को उसकी भूलें इस प्रकार समझाई जाती हैं कि वह उसकी पुनरावृत्ति न करे। इसके अतिरिक्त हिंदी से चीनी तथा चीनी से हिंदी में अनुवाद करने का अभ्यास भी कराया जाता है। भारतीय विशेषज्ञ कक्षा में हिंदी काव्य पाठ का अभ्यास भी कराते हैं। तीसरे वर्ष में विद्यार्थी हिंदी निबंध तथा एकांकियों का एक-एक प्रतिनिधि संकलन पढ़ते हैं। इन दोनों पाठ्य पुस्तकों को पढ़ाने का दायित्व भारतीय विशेषज्ञ तथा चीनी प्राध्यापक परस्पर मिलकर संभालते हैं। पहले भारतीय विशेषज्ञ निर्धारित निबंध अथवा एकांकी पढ़ाता है। तदनंतर चीनी अध्यापक उसी पाठ को पुनः पढ़ाता है। चीनी अध्यापक अपने अध्यापन के दौरान पाठ के मूल भाव एवम् व्याकरणिक संरचना को हिंदी के साथ-साथ चीनी भाषा में भी समझाता चलता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि विद्यार्थी पाठ के कथ्य एवम् उसकी भाषिक संरचना को भलीभांति समझ सकें। तीसरे ही वर्ष में विद्यार्थियों से सप्ताह में दो घंटे समाचार-पत्र भी पढ़वाया जाता है। समाचार-पत्र वाचन के लिए प्रायः ऐसे अंश छांटे जाते हैं जिनसे विद्यार्थियों को भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिदृश्य से साक्षात्कार हो सके। जिन दिनों मैंने समाचार-वाचन की कक्षा पढ़ाने का दायित्व लिया, उन दिनों मैंने ऐसे अंशों का चयन किया जिनके माध्यम से विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की प्रयुक्तियों तथा संक्षिप्तियों की जानकारी मिल सके। तीसरे वर्ष के विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के पत्र लिखने की कला सिखलाई जाती है। निमंत्रण-पत्र तैयार करने की कला सिखाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। मैंने अपने कार्य-काल में विद्यार्थियों को कविता, कहानी, एकांकी, आलोचनात्मक निबंध आदि लिखने के लिए भी प्रेरित किया। उनके द्वारा लिखित रचनाओं को भारत तथा विदेश से प्रकाशित हिंदी-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ प्रेषित किया। वे "नंदन" (भारत), "विश्व विवेक" (अमेरिका)" आदि में प्रकाशित भी हुई। इससे हिंदी पढ़ने वाले चीनी विद्यार्थियों की रुचि सृजनात्मक लेखन की ओर बढ़ी। उनका भाषा-भंडार समृद्ध हुआ।

तीसरे वर्ष के अंत में ग्रीष्मावकाश में विद्यार्थियों को हिंदी में काम कर रहे विभिन्न संस्थानों यथा "चीनी सचित्र", "चाइना रेडियो इंटरनेशनल" आदि में व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के लिए भेजा जाता है। इसका एक लाभ यह भी होता है कि नियोक्ताओं को भावी प्रत्याशियों की योग्यता एवम् कार्यक्षमता की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हो जाती है। यदि वे पाठ्यचर्या में कोई परिवर्तन करना चाहते हैं तो अपने रचनात्मक सुझाव दे सकते हैं।

चौथे वर्ष के पाठ्यक्रम में आधुनिक हिंदी कविता, कहानी तथा निबंध के अतिरिक्त हिंदी के प्रतिनिधि उपन्यासों से चुने गए अंश पढ़ाए जाते हैं। हिंदी व्याकरण के अतिरिक्त हिंदी-चीनी-हिंदी अनुवाद का अभ्यास पूर्ववत् चलता रहता है। चौथे वर्ष में विद्यार्थी को भारत संबंधी किसी विषय पर लगभग दस हजार शब्दों का एक निबंध लिखना पड़ता है। इसका लक्ष्य विद्यार्थी की भारत संबंधी समझ बढ़ाना है। अतः यह चीनी भाषा में लिखा जाता है। विद्यार्थी को प्रतिवर्ष मौखिक एवं लिखित परीक्षा देनी होती है। परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए विद्यार्थी को कम से कम साठ प्रतिशत अंक प्राप्त करने पड़ते हैं।

एम.ए. का पाठ्यक्रम तीन वर्ष का है। एम.ए. करने के इच्छुक विद्यार्थी को प्रवेश-परीक्षा देनी पड़ती है। दाखिला केवल दो या तीन विद्यार्थियों को दिया जाता है। एम.ए. के पाठ्यक्रम का फलक अत्यन्त व्यापक है। विद्यार्थी को हिंदी साहित्य के साथ-साथ एशियाई तथा योरोपीय साहित्य का अध्ययन भी करना पड़ता है। एम.ए. के विद्यार्थी आदिकालीन तथा मध्यकालीन हिंदी कविता के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं के चुने हुए अंशों को पढ़ने के साथ साथ प्रेमचंद के उपन्यास "गोदान" का गहन अध्ययन करते हैं। वे उसकी प्रत्येक पंक्ति को ध्यान से पढ़ते हुए भारतीय समाज के विभिन्न पक्षों का ही अंतर्मथन नहीं करते अपितु भाषा के सटीक प्रयोग की कला आत्मसात करते हुए अपनी अभिव्यक्ति-क्षमता की नींव भी सुदृढ़ करते हैं। एम.ए. के अध्ययन के दौरान विद्यार्थी हिंदी साहित्य के इतिहास का सम्यक अध्ययन करने के साथ-साथ विभिन्न विषयों पर स्तरीय निबंध लिखकर चिंतन तथा अभिव्यक्ति की दिशा में नित नए कदम रखता है। एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए

विद्यार्थी को एक शोध प्रबंध लिखना पड़ता है। मौखिक परीक्षक के समय उसे परीक्षक के अतिरिक्त अन्य उपस्थित विद्वानों की शंकाओं, जिज्ञासाओं एवं तर्कों का उत्तर देते हुए अपनी मान्यताओं को सप्रमाण प्रस्तुत करना

होता है। मौखिकी हिंदी तथा चीनी दोनों में होती है।

चीन में पी. एच. डी. में प्रवेश पाना पर्याप्त कठिन माना जाता है। इसके लिए विद्यार्थी को प्रवेश-परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता है। पी. एच. डी. करते समय विद्यार्थी को एक अन्य विदेशी भाषा अनिवार्य रूप से सीखनी पड़ती है। यदि विभाग में प्राध्यापकों की कमी हो तो उसे सप्ताह में तीन-चार घंटे का अध्यापन-कार्य भी करना पड़ता है।

चीन में पी. एच. डी. का निर्देशक होना अत्यन्त गौरव की बात मानी जाती है। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सभी प्रोफेसरों को शोध-निर्देशन का अधिकारी नहीं माना जाता। संप्रति पूरे चीन में पेइचिङ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ल्यू आन ऊ को ही शोध-निर्देशन का एक मात्र अधिकारी माना गया है। इस समय उनके निर्देशन में केवल एक विद्यार्थी श्री चाड. चुङ ख्वे "हिन्दी नाटक और रंगमंच" विषय पर शोध-कार्य कर रहा है। श्री ख्वे हिंदी में पी. एच. डी. की उपाधि के लिए शोध-कार्य करने वाला पहला चीनी विद्यार्थी है।

चीन से हिंदी में एक मासिक पत्रिका "चीन सचित्र" भी प्रकाशित होती है। श्री लिन फूवी इसके संस्थापक-संपादक हैं। श्रीमती ऊ फू खुन तथा श्रीमती चांग क्वांग हुङ उन्हें अनुवाद-कार्य में सहयोग देती हैं। इसका प्रवेशांक जुलाई, सन् 1957 ई॰ में प्रकाशित हुआ था। तब से जुलाई सन् 1996 ई॰ तक इसके 493 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। सामान्यतः इसमें चीनी भाषा में लिखी रचनाओं के हिंदी-अनुवाद ही प्रकाशित होते हैं, किन्तु कभी-कभी मूलतः हिंदी में लिखे गए लेख भी प्रकाशित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए जुलाई तथा सितंबर 1994 ई॰ के अंकों में क्रमशः प्रकाशित प्रोफेसर (डॉ॰) ओम्प्रकाश सिंहल के लेख "याद रहे क्षण" तथा "ऐतिहासिक सांस्कृतिक अवशेषों के नैसर्गिक सौंदर्य की रक्षा" लिए जा सकते हैं। विदेशों से प्रकाशित होने वाली हिंदी-पत्रिकाओं में यह सर्वाधिक बिक्री वाली पत्रिका है। अब तक यह चालीस हजार प्रति अंक की बिक्री का कीर्तिमान स्थापित कर चुकी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आगामी कुछ वर्षों में यह अपने इस कीर्तिमान को पीछे छोड़ देगी।

भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन तथा शोध कार्य के लिए उस भाषा के विद्वानों में समय-समय पर पारस्परिक विचार-विनिमय का होते रहना अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय भाषाओं और उनमें रचित साहित्य पर कार्यरत चीनी विद्वानों ने इसी निमित्त सन् 1982 ई॰ में भारतीय साहित्य अनुसंधान प्रतिष्ठान की स्थापना की तथा यह निर्णय लिया कि इसका अधिवेशन हर दो वर्ष बाद होना चाहिए। प्रसन्नता का विषय है कि उन्होंने अपने इस निर्णय का क्रियान्वयन भी किया। प्रेमचंद की पचासवीं बरसी के अवसर पर क्वाङचओ में "प्रेमचंद और भारतीय यथार्थवादी साहित्य" विषय पर एक विचारोत्तेजक गोष्ठी आयोजित की गई।

25 अप्रैल, सन् 1996 ई॰ से 29 अप्रैल सन् 1996 ई॰ तक इस संस्था ने सनचन विश्वविद्यालय, सनचन तथा विश्व साहित्य संस्कृति संस्थान के सहयोग से तेरहवां अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन का विषय था— रामायण तथा आधुनिक चुनौतियां : एशियाई साहित्य तथा संस्कृति के विशेष संदर्भ में। चीन के विश्वप्रसिद्ध वयोवृद्ध संस्कृत विद्वान तथा वाल्मिकी रामायण के चीनी अनुवादक प्रोफेसर ची॰ श्येनलिन इसके मानद अध्यक्ष थे। प्रोफेसर ल्यू आन ऊ परामर्शदाता थे। प्रोफेसर यू लुङ यू व्यवस्थापक अध्यक्ष थे।

किसी भी भाषा के पठन-पाठन तथा शोध-कार्य के लिए यह आवश्यक है कि बाजार में उस भाषा की पुस्तकें मिलती हों तथा उस भाषा में कार्य कर रहे लोगों के लिए प्रसारण, प्रकाशन एवम् मुद्रण की सुविधा हो। इस दृष्टि से चीन की सराहना करनी चाहिए। वहां के पुस्तक-बाजार में हिंदी की पुस्तकें उपलब्ध हैं। हिंदी प्रसारण तथा प्रकाशन के साथ-साथ मुद्रण का भी समुचित प्रबंध है।

चीन के बाजारों में हिंदी की पुस्तकें मुख्यतः दो स्थानों पर मिलती हैं। ये हैं—शिङ ह्वा शूल्येन (शिङ ह्वा पुस्तक भंडार) तथा वायवन शूल्येन (विदेशी पुस्तक भंडार)। पुस्तक-वितरण के क्षेत्र में ये दोनों संस्थान चीन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थान हैं। चीन के छोटे-बड़े शहरों में इनकी शाखाएं हैं। बड़े शहरों में तो इनकी कई-कई दुकानें हैं। चीन के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में इनके बिक्री केन्द्र हैं।

चीन की राजधानी पेइचिङ. में एक स्थान है तुङ.तान। यहां पुरानी पुस्तकों की एक प्रसिद्ध दुकान है—चुङह्वा शूल्येन। इस दुकान में चीन तथा दूसरे देशों में प्रकाशित पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। यहां मैंने हिंदी की बहुत सी पुरानी पुस्तक देखीं। इनमें कोश, व्याकरण-ग्रंथ तथा प्रेमचंद के उपन्यासों की संख्या सर्वाधिक थी। यहां पर मुझे कैलाग द्वारा लिखित हिंदी व्याकरण का पहला संस्करण
भी खरीदने को मिल रहा था। इसकी कीमत थी इक्कीस सौ रुपये।

चीन में दैनिक जीवन में प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुएं बेचने वाली दुकानों के अगल-बगल में पुस्तकें बेचने वाली दुकानें भी होती हैं। ये दुकानें मुख्यतः चीनी भाषा में लिखित पुस्तकें ही बेचती हैं, किन्तु कभी-कभार हिंदी की पुस्तकें भी दिख जाती हैं। चीन की राजधानी पेइचिङ में, जहां मैं तीन वर्ष रहा, चुङ क्वान छुन रैंता, पेता शीमन, पेता नानमन आदि स्थानों पर पुस्तकों के पटरी बाजार भी लगते देखे। इन बाजारों में हिंदी कोश, व्याकरण ग्रंथ तथा अन्य पुस्तकें भी बिकती हुई दिखलाई दीं। हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित मानक अंग्रेजी-हिंदी कोश तथा ज्ञानमंडल, काशी का वृहद हिंदी कोश तो मैंने स्वयं खरीदे थे।

चीन में हिंदी-प्रसारण की भी व्यवस्था है। सी॰ आर॰ आई॰ अर्थात् चाइना रेडियो इंटरनेशनल के हिंदी-विभाग की ओर से प्रतिदिन एक घंटे का हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होता है। यह कार्यक्रम भारतीय समय के अनुसार प्रतिदिन रात को साढ़े आठ से साढ़े नौ तक सुना जा सकता है। तदनंतर साढ़े नौ से साढ़े दस तक इसकी पुनरावृत्ति होती है। कार्यक्रम में सबसे पहले देश-विदेश के समाचार होते हैं। विदेश के समाचारों में एशिया के समाचारों को मुख्यता दी जाती है। तदनंतर अंतर्राष्ट्रीय समाचारों की समीक्षा रहती है। इसके बाद दैनिक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है। रिपोर्ट के विषय हर रोज बदलते रहते हैं। सोमवार के दिन चीन के रूपांतर से संबद्ध रिपोर्ट रहती है। मंगलवार को महिलाओं तथा बच्चों से जुड़े विषय पर रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है। बुधवार की रिपोर्ट में खेलों के समाचार रहते हैं। बृहस्पतिवार को सामाजिक जीवन से जुड़े किसी महत्वपूर्ण विषय को केन्द्र में रखा जाता है। शुक्रवार को सांस्कृतिक पक्ष को प्रमुखता दी जाती है। शनिवार का दिन श्रोताओं की डाक के लिए निश्चित है। हिंदी-विभाग के पास प्रतिवर्ष अपने श्रोताओं के एक लाख से भी अधिक पत्र आते हैं। इन पत्रों से यह पता चलता है कि श्रोता उनके कार्यक्रमों को

कितनी रुचि से सुनते हैं। रविवार का कार्यक्रम एक प्रकार से पाक्षिक कार्यक्रम है। महीने के पहले तथा तीसरे रविवार को श्रोताओं के फरमाइशी गीत पेश किए जाते हैं। दूसरे और चौथे रविवार को श्रोताओं द्वारा लिखकर भेजी गयी रचनाएं यथा कहानियां, चुटकुले आदि प्रसारित होते हैं। इसी दिन चीन की लोककथाएं भी सुनाई जाती हैं। दैनिक रिपोर्ट के अन्तर्गत प्रस्तुत किए जाने वाले इन विविध विषयक कार्यक्रमों के बाद चीन पर प्रभाव डालने वाले विषयों यथा मानव-अधिकार, राष्ट्रीय महासभा आदि पर दस मिनट की परिचर्चा रहती है। तदनंतर श्रोताओं को दस मिनट तक चीनी संगीत सुनाया जाता है।

चीन में हिंदी पुस्तकों के प्रकाशन का दायित्व विदेशी भाषा प्रकाशन गृह ने संभाला हुआ है। इस संस्थान से अब तक छह सौ से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। संप्रति आधी से भी ज्यादा पुस्तकें अप्राप्य हैं। चीनी साहित्य, इतिहास, संस्कृति, राजनीतिक चिंतन आदि विविध विषयों से संबद्ध ये पुस्तकें मुख्यतः चीनी भाषा में लिखी रचनाओं के हिंदी अनुवाद हैं। संप्रति छन शिय्वे हिंदी-विभाग के निदेशक हैं।

चीन में हिंदी मुद्रण की भी समुचित व्यवस्था है। विदेशी भाषा प्रकाशन गृह से प्रकाशित होने वाली सभी पुस्तकें चीन में ही छपती हैं। मासिक पत्रिका "चीन सचित्र" का मुद्रण भी चीन में ही होता है। पेइचिङ विश्वविद्यालय द्वारा तैयार कराई गयी हिंदी-पाठ्य पुस्तकों का मुद्रण भी चीन में ही हुआ है। हां, यह अवश्य है कि पूरे चीन में हिंदी-मुद्रण की व्यवस्था केवल पेइचिङ में ही है। पेइचिङ में हिंदी-मुद्रण का कार्य "इन स्वा छाङ" अर्थात् विदेशी भाषा मुद्रण फैक्ट्री में होता है। पहले अक्षर संयोजन अर्थात् कम्पोजिंग का काम हाथ से किया जाता था। किन्तु जब से संसार में कंप्यूटरीकृत मुद्रण का सिलसिला प्रारंभ हुआ है तब से चीन में भी हिंदी की छपाई में कंप्यूटर का प्रयोग किया जाने लगा है।

राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा पेइचिङ विश्वविद्यालय पुस्तकालय चीन के दो सबसे बड़े पुस्तकालय हैं। इन दोनों ही पुस्तकालयों में हिंदी-पुस्तकों, समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं का अच्छा संग्रह है। एक व्यक्तिगत बातचीत में राष्ट्रीय पुस्तकालय के क्षेत्रीय अध्ययन विभाग में कार्यरत सुश्री चू श्याओलान ने बताया कि यदि हिंदी के प्रकाशक अपने प्रकाशनों के सूचीपत्र नियमित रूप से भेजते रहें तो पुस्तकालय का हिंदी खंड और अधिक अच्छा हो सकता है। वैसे सम्प्रति राष्ट्रीय पुस्तकालय में लगभग बीस हजार और पेइचिङ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में लगभग दस हजार हिंदी पुस्तकें हैं। इनका संबंध हिंदी भाषा तथा साहित्य के अतिरिक्त भारतीय इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन, भूगोल, पुरातत्व कला आदि से है। राष्ट्रीय पुस्तकालय में हिंदी पुस्तकों के संकलन का काम श्री लिङ छवे ने प्रारंभ किया था। वे कुछ समय पूर्व क्षेत्रीय अध्ययन विभाग के निदेशक पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। संप्रति वहां पर हिंदी का काम श्रीमती चू श्याओलान देख रही हैं। वे बहुत अच्छी हिंदी बोलती हैं।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि चीनियों ने हिंदी-शिक्षण की दिशा में अत्यन्त मनोयोगपूर्वक सराहनीय कार्य किया है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की रुचि कम होती जा रही है। इसका अनुमान इसी से लगाया
जा सकता है कि किसी समय पेइचिङ विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में दस प्राध्यापक कार्य करते थे जबकि अब केवल दो प्राध्यापक ही पूरा विभाग संभालते हैं। जब मैंने इसका कारण जानना चाहा तो प्रायः सभी चीनियों ने एक ही उत्तर दिया—हिंदी पढ़कर हम अपना समय गंवाने के साथ-साथ भावी प्रगति का मार्ग क्यों अवरूद्ध करें? अपने माथे पर अपमान का टीका क्यों लगवाएं? भारतीय दूतावास अपने यहां हिंदी जानने वाले चीनियों के स्थान पर अंग्रेजी जानने वाले चीनियों को नियुक्त करता है। वहां के अधिकारी हिंदी में बात करना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं और कुछ अधिकारी तो बड़े गर्व से कहते हैं कि उन्हें हिंदी नहीं आती। भारत से आए सरकारी प्रतिनिधियों, नेताओं, व्यापारियों तथा व्यापारिक कंपनियों के कर्मचारियों, विभिन्न सम्मेलनों में सम्मिलित होने वाले विशेषज्ञों, पर्यटकों आदि सबको हिंदी के नहीं बल्कि अंग्रेजी के दुभाषिये चाहिए। भारत सरकार का सारा काम काज अंग्रेजी में चलता है जिससे चीनी दूतावास में भी हिंदी के व्यक्तियों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझी जाती। और तो और, चीनी दूतावास के बाहर बैठा सुरक्षा कर्मचारी (जो भारतीय होता है) जब दूतावास के किसी उच्च अधिकारी को हिंदी में बात करते देखता है तो पीठ पीछे उसे "हिंदी वाला" की संज्ञा देकर उसका उपहास उड़ाता है।

संदर्भ

1. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन में हिन्दी-शिक्षण, स्मारिका, पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन, 1996 विदेश मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ, 59।
2. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन के हिन्दी विद्वानः श्री थाङ रन हू, विश्व विवेक, अंक 3, वर्ष 1993, पृष्ठ-22, संयुक्त राज्य अमेरिका।
3. सिंहल, ओम्प्रकाशः हिन्दी की महक में डूबी चीन की एक शाम, धर्मयुग, 16 सितंबर, सन् 1994 ई॰ पृष्ठ-55 बंबई, भारत
4. सिंहल, ओम्प्रकाशः पेइचिङ विश्वविद्यालय में हिन्दी, भाषा (द्वैमासिक) सितंबर-अक्टूबर, सन् 1994 ई॰ पृष्ठ-21, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, रामाकृष्णपुरम, नई दिल्ली, भारत।
5. सिंहल, ओम्प्रकाशः प्रोफैसर ल्यू, नवभारत टाइम्स, दिल्ली 21 नवंबर, सन् 1993 ई॰।
6. सिंहल, ओम्प्रकाशः हिन्दी फिल्मों के चीनी अनुवादक श्री वाङ चिन फड. की यादें, गगनांचल, जनवरी-मार्च, सन् 1996 ई॰ पृष्ठ 114-119
7. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन में भारत नंदन, नवंबर सन् 1994 ई॰, पृष्ठ 34, नई दिल्ली, भारत।
8. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन के पहले हिन्दी विद्यार्थीः याङ रुई. लिन, कादंबिनी, अक्टूबर, 1994 ई॰, पृष्ठ-46 नई दिल्ली, भारत।
9. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन में भारतीय नृत्य की प्राचीन व आधुनिक परम्परा, विश्व विवेक,

शेष पृष्ठ 79 पर

बचपन की स्मृतियों से अमरत्व का आभास

मूलः विलियम वर्ड्ज़वर्थ
रूपांतरः कुलदीप सलिल

यह जमीं, लहरें नदी की, ये गुलों की बस्तियां
भी कभी इन में नज़र आती खुदा की रोशनी।
ताज़गी उस ख्वाब की, नूर उसका,
बात ही, अब नहीं बाकी रही वो जो कि थी
अब तो जब भी जिस जगह जाता हूं मैं
हर शै में किसी शै की कमी पाता हूं मैं।

2

है छक्क क्या खूबसूरत
खूबसूरत है गुलाब
चांदनी क्या चहचहाती
आसमां जब होता साफ।
नदियां-नाले खिल हैं उठते
तारों की परछाइयों में
क्या हसीं होता है मंजर
जब उभरता आफताब
लेकिन फिर भी जिस जगह जाता हूं मैं
हर शै में किसी शै की कमी पाता हूं मैं।

3

गा रहे चारों तरफ जब गीत खुशियों के परिंदे
नाचते हैं थाप पर जब ढोल की ये मेमने
बस मुझ की इक इस ख्याले गम ने घेरा
पर समय पर याद आई बात कोई
औ हुआ मैं हल्का-फुल्का
औ हुआ मैं स्वस्थ फिर से।
बह रहे चट्टानों से जब नाचते-गाते हैं झरने
मेरा गम ऐसे में यारब क्यों करे शर्मिंदा रुत को
मुझसे टक्राती सदायें पर्वतों से गूंजती वो
आ रही मुझ तक हवाएं नींद के मैदानों से
झूमती खुशियों से धरती
और सागर की तरंगे, नाचती प्रसन्न होकर
छुट्टी का माहौल हर सू
है बहारों का समां
दो सदा इक दूसरे को, ऐ गडरियों
तुम भी खुलके नाचो गाओ।

4

सुनके आवाज़े तुम्हारी
आसमां भी खिलखिलाता।
इस जशन में
साथ हूं मैं भी तुम्हारे
दिल की तह से,
मैंने भी अपने गले में
पहनी है खुशियों की माला,
फूल खिलते वादियों में धूप खिलती
सज रही दुल्हन सी धरती
मां की बाहों में उछलते
चह चहचहाते नन्हे बच्चे
यह बहारों का समां औ'
उत्सव का माहौल हो जब
हो बुरा इस दिन का, गर मैं
हो रहूं ग़मग़ीन ऐसे।
नग़मे खुशी के
सुनता हूं मैं, करता हूं महसूस सब ये
पर करूं क्या
पेड़ इक ये सैकड़ों में
एक है ये खेत जिसको
बारहा देखा है मैंने—
दोनों ही ये कह रहे हैं
खो गया कुछ हाय इन में
और ऐसी ही कहानी
सुनता हूं गुल की जुबानी
क्या हुआ उस ख्वाब का, हा शै में आबोताब का
खो गयी हाय कहां वो
स्वप्रदर्शी रोशनी

5

है जन्म क्या?
नींद है या है बुलावा
रूह हमारी, यह सितारा जिंदगी का
दूर की है यह तो वासी
साथ आती है हमारे,

ऐसा नहीं कि भूलकर सब
ऐसा नहीं कि छोड़ सब कुछ,
आबो-ताब लेकर कुछ तो
आती है ईश्वर के घर से
जो असल में घर है इसका
जो असल में घर हमारा
स्वर्ग से रहते घिरे हम
नन्हेपन में
होते हैं ज्यों-ज्यों बड़े हम
जेल की सल्लाखों से, लगते हैं घिरने
देखते हैं लेकिन फिर भी, रोशनी वो
जो खुशी देती है हमको।
पर युवक जब होता बड़ा तब भी
प्रकृति का रहता पुजारी
रहती तब भी साथ उसके
रास्ते में रोशनी यह
इस सफ़र में लेकिन आखिर
चौंध में फिर ज़िंदगी की
रोशनी यह खो है जाती।
इस तरह कुछ-कुछ कि जैसे
मां हो उसकी
सौ कशिश करती है धरती
पैदा उसके वास्ते
इस लिये कि आदमी जन्नत को अपनी
अपने घर को,
भूल जाये उस महल को
छोड़कर आया है जिसको

6

मस्ती में खोये हुए इक
छे बरस के बच्चे को
देखो कभीः
बाप की आंखे चमकती
चूमती रह रह के जिसको
मां उसकी
उसके हाथों
जिंदगी का नक्शा कोई सद्य ही सीखी कला से
बनता बिगड़ता देखिये,
शादियाना हो कि मातम
या कोई त्यौहार मेला
देख वो जो कुछ भी लेता
नक्ल करता, गीत गाता
है उसी को वो दोहराता।
भूलकर सब कुछ मगर फिर
जल्दी ही नया और कोई
बच्चे, बूढ़े या जवां का
या कभी प्यार, झगड़ा
इस विनोदी मंच पर दुनिया की यानी
हर किसी का
नन्हा ऐक्टर अभिनय करता
नक्ल ही जैसे कि उसका
उम्र भर का इक हो पेशा।

7

बाहरी सूरत छुपाती
रुह की अजमत को तेरी
तू पैगम्बर, तू ऋषि है
है महान इक दार्शिनिक तू
है विरासत याद अपनी
जिसको अभी तक
सृष्टि को भेदों को पढ़ने
की अभी तक जिसमें क्षमता
हम अंधेरे में उम्र भर
कब्र के अंधे कूएं तक
ढूंढते हैं जो सचाई
है तुझे सब ज्ञान उसका,
रुह अमर है-इसका भी तू
पूरा पंडित, पूरा ज्ञाता।
छोड़ आंनद को, आजादी को क्यों
ऐ बली तू
जिंदगी के इस जूए को
पहनने को इतना आतुर
किस लिये तू रहता उत्सुक।

8

है खुशी की बात, कि बुढ़ापे में भी
लुप्त होती रोशनी की
आदमी को याद रहती।
याद उन गुजरे दिनों की
करती है कृतज्ञ मुझको।
वो खुली छुट्टी, वो खुशियां
फड़फड़ाती नित नई वो
दिल में आशा-
केवल इनके वास्ते न
याद मैं बचपन को करता
केवल इनके वास्ते न
शुक्रिये के गीत गाता,
पर हठीले उन सवालों के लिये अहसास के,
बाहर की दुनिया

एक खोजी जीव के
शक-शुब्रों के वास्ते
याद मैं बचपन को करता,
याद करता उस कुदरती सहज-बुद्धि के लिये
कांपती है जिसके आगे
बुद्धिमानी आदमी की,
याद करता उन दिनों की
धुंधले-धुंधले उन ख्यालों और
पहले-पहले उन लगावों के लिये
रोशनी जो हमको देते, आज भी
बल हैं देते
शोरो-गुल के इस जगत में
बिन्दु हैं जो शान्ति का,
सत्य हैं वो जो कभी न झूठे पड़ते।
बढ़ती आयु आदमी की
या निराशा, मारा-मारी इस जगत की
पूरी तरह, कभी भी
खत्म इनको कर न पाती
इस लिये तो शान्त-मन जब होते हैं हम
दूर के हैं चाहे टापू
उस महासागर को हम हैं
जो हमें लाया यहां तक
एक पल में देख लेते
देख सकते हैं समुन्दर
के किनारे खेलते हम
बच्चों को और सुन हैं सकते
मारते सागर को ठाठें।

9

इस लिये गाओ खुशी से ऐ परिन्दों
तान पर तबले की नाचो
मेमनो तुम,
इस बहारों के समय में
झूमते गाते गडरियो,
हम तस्ववुर में तुम्हारी
इस खुशी में होंगे शामिल।
क्या हुआ गर रोशनी वो
जो बुलन्दी पर कभी भी
अब नहीं फिर लौट सकती,
फूल-पत्तों में भी वैसा
नूर अब बाकी नहीं है
ग़मज़दा होगें ना हम, पर
जो बचा है बस उसी से
शक्ति लेंगे-
वो लगावट पहली-पहली

'जो रही है और' रहेगी
सान्त्वना के उन ख्यालों
से जो मानव के दुखों से
हैं उपजते,
दार्शनिक की दृष्टि से या
जो समय के साथ आती,
या फिर उस विश्वास से जो
मौत को है जीत लेता-
अब इन्हीं से शक्ति लेंगे।
ऐ चरागाहों, फवारों, पर्वतों, ऐ वादियों।
मत कहो कि खत्म अपनी
अब मुहब्बत हो गयी है
है कशिश दिल में तुम्हारी
वैसे ही अब तक भी बाकी
सिर्फ इक दीवानापन वो
मिलता था तुमसे मुझे जो
आज वो बाकी नहीं है।
पहले सी भी ज्यादा दिलकश
है नदी-नाले ये सारे
है सुबह का उगता सूरज
खूबसूरत आज भी।
डूबते सूरज पे घिरते
बादलों में
देखती है आंख मेरी
त्रासदी को इस जहां की
जिंदगी इनसा की फानी;
आंख वो कि जिसने देखी
है उभरती और मरती
कौमें और बादशाहियां।
शुक्रिया इनसां के दिल का
जिस से हैं हम आज जिंदा,
इस में है जो दर्द उसका
शुक्रिया उस भय का, सुख का।
अदने से भी एक अंदना
खिलता है जो फूल, मुझ से
कहता है ऐसी कहानी
जो सुनाई जा न सकती
आंसुओं की भी जुबानी

भारतीय कवियों की भारत-भक्ति

रूपांतरः रामेश्वर दयाल दुबे

बंगला भाषा-कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर

हे मेरे मन
पुण्य तीर्थ में जागो धीरे।
मानवता के महा सिन्धु भारत के तट पर।
ध्यान मग्न गम्भीर खड़े है ऊंचे भूधर,
नदियों की जयमाल कर रहा धारण प्रान्तर,
रहो देखते इस पवित्र धरती को नित ही
हे मेरे मन!
ज्ञात. किसी को नहीं कि किस के आह्वाहन पर!
विविध मानवों की धारायें
दुर्विनार सोतों में आकर
इस सागर में लीन हो गयीं।
यहां आर्य हैं, अनार्य भी
द्रविड़ और चीनी जन भी हैं
पश्चिम का भी मुक्त द्वार अब।
लेन देन है, मेल जोल है
मानवता के महासिन्धु भारत के तट पर।
जब तक मंगल घर न पूर्ण है
निज पवित्र हाथो से हम सब
तीर्थ सलिल से इसे भरें अब
मानवता के महासिन्धु भारत के तट पर।।

* *

उड़िया भाषा-कवि निरंजन राउत

हरी भरी सम्पन्न धरा है
मातृभूमि ममतामय मेरी।
झरने निर्झर कल कल करते
कोयल मीठे बोल सुनाती,
भरी अन्न से फसलें सुन्दर
सुखदा शीतल वायु झुलाती,
मोहित होता मन सदैव है
मातृभूमि की प्रभुता लखकर।
मलय सुवासित अनिल प्रकम्पित
हरे-भरे कानन लहराते
भेंट सदा करता है सागर
कोटि कोटि ही रत्न मनोहर
ऐसी है सम्पन्न मनोहर
मातृभूमि महिमामय मेरी।।

* * *

तेलुगु भाषा-कवि मीगपूड़ि शर्मा

हिन्दू मुसलमान ईसाई
सिक्ख बौद्ध या जैन पारसी
जो सवर्ण हैं या अवर्ण हैं
सभी आपसी भेद भावको
भूल-भूल कर
नत मस्तक हो रहे सभी
माँ
भारत माँ! तेरे सम्मुख
हम सबकी ही
रक्षा कर तू
भारत माता!

* * *

तमिल भाषा-कवि सुब्रह्मण्य भारती

इतनी है प्राचीन हमारी भारत माता
जिसे जानते नहीं सुधी वे जन भी
जो ज्ञाता है अति अतीत के।
उन्हें नहीं है ज्ञात कब लिया
जन्म हमारी भारत माँ ने।
कर न सका निर्धारण कोई
है कितनी प्राचीन हमारी भारत माता!
किन्तु सत्य यह
जब तक यह संसार रहेगा
मेरी माता
सदा सदा सानन्द रहेगी।
कोटि-कोटि मुख-प्राण
किन्तु है
चिन्तन एक भावना पावन
भाव व्यक्त की क्षमता रखती

भारत माता
नित्य अठारह भाषाओं में।।

* * *

मलयालम भाषा-कवि बल्लतोल

मातृभूमि-सेवा से बढ़कर
कौन धर्म है नहीं जानता
मातृभूमि मेरा वन्दन ले।
मातृभूमि की दिव्य पताका
तेरी जय हो!
सदा-सदा तू फहराती रह
ऊपर नभ नक्षत्र लोक में
शोभा से मोहित कर नभ को।
करती रहे मार्गदर्शन तू
उन सब का ही
जो मानवता की सेवा में
जहां कहीं भी आगे आयें।

* * *

कन्नड़ भाषा — कवि गोपाल कृष्ण अडिग

एक जाति के
और एक ही कुल के हम सब
मनुज मात्र हैं।
हम सब की जो भारतमाता
उसकी ऊँची अभिलाषाओं की
कोयल किशलय जैसे हम सब।
जाति धर्म के भेद-कूप से
निकल निकल कर
मुक्त क्षेत्र में
ज्ञान प्रकाशित करने आओ।
सब ही आओ।

तेलुगु कविताएं

मूलः गुंटूरु शेषेन्द्र शर्मा
रूपांतरः टी॰ महादेव राव

[तेलुगु भाषा में आधुनिक कविता को नये आयाम दिये हैं प्रसिद्ध कवि गुन्टूरु शेषेन्द्र शर्मा ने, जिनके कविता संग्रह "ना देशम ना प्रजलू" (मेरा देश, मेरी जनता) का अनुवाद हिंदी और उर्दू में हुआ जो उत्तर भारत तथा पाकिस्तान में लोकप्रिय हुआ। 20 अक्टूबर 1927 को जन्मे श्री शेषेन्द्र शर्मा ने स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद कुछ समय तक वकालत भी की। उनके तीन कविता संकलनों में "ना देशम ना प्रजलू", "गोरिल्ला" और मंडे सूर्युडु (जलता सूरज) की कविताओं में क्रांति, विप्लव, जनवाद आदि काव्याभिव्यक्तियां हम पाते हैं। उनकी कुछ कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत है — जो उनके संकलन मौक्तिक पर्वम से हैं— संपादक]

गर्व

समुद्र किन्ही पैरों में लोटकर नहीं भौंकता
तूफां का स्वर कभी नहीं कहता - जी हुजूर।
पर्वत कभी झुककर सलाम नहीं करता
मरने के बाद
मैं केवल मुट्ठी भर राख ही
क्यों न रह जाऊं
किंतु कलम उठाने पर मुझ में
भरा होता है
किसी झंडे जितना गर्व।

पत्ते नहीं

बेटे।
तुम्हारे आसूं की
छोटी सी बूंद में
गरजता है कौन सा सागर
जानता हूं मैं
इसलिए तो
प्रार्थना कर रहा हूं वृक्षों से
कि पत्ते नहीं
अंकुरित करो बंदूकों को।

नहीं चाहिये सलीब सुख का

मैं जेबों में
भरकर नहीं लाया कोकिलाओं को
मुटिठयों में बम लाया हूं भरकर
कुछ सितारे बनकर स्वप्न
मेरी आखों पर झर रहे हैं
कुछ सितारे परियां बनकर
मेरी उंगलियों में भर रहे हैं
मैं करता हूं प्रार्थना
तुझसे एक जिंदगी
मुझे सुख के सलीब पर
मत टांगना।

मूल्यांकन

कितने मीलों तक पहुंचे यह नहीं
बल्कि गया कितनी लाशों तक
हमारा आंदोलन - नाप लो
मित्र। यह मेरा हृदय है
फेंक रहा हूं - थाम लो।

धोखे में

करते हैं हम ही संसद का निर्माण
हम ही अकादमियों की स्थापना करते हैं
मुरझाये पुजारी बनते हैं
तुम क्या कर रहे हो जान लो
कृषक मित्रों। वर्षा हो रही है राजनीति की
धोखे में अपने बीज बो न देना।

मनुष्य/वसंत कर

क्यों बनाते हैं बांध
क्यों चलाते हैं हल भूमि पर
मैं नहीं जानता
मेरा जीवन है एक शून्य
फिर भी मैं चला जा रहा हूं
जड़ों को मानकर पैर
चलता हुआ वृक्ष है आदमी
पेड़ बना होता है अगर
तो वर्ष में एक वसंत तो मिलता
बनकर सभी मनुष्य वसंत
खो चुका हूं मैं।

समझौता

क्या एक बादल में भी
साहस नहीं बरसाने का
तूफान को आमंत्रित करते आकाश को
तौलियों के जैसे पोंछ रहे हैं मेघ
बेबस, बेचारे खेतों की इच्छा क्या है?
फसल हो - आपकी भूख मिटे, यही न।

शिल्पी

दुखों को डुबोकर आसुंओं में
बिस्कुट की तरह खाता रहूंगा
जिन्दगी से जो होगा शक्तिशाली
उसे ही
शब्दों से शताब्दियों तक को
तराशने वाला शिल्पी कहूंगा।

बिदाई अतीत को

पुस्तकें ढोते जाते तुम
सलीब ढोते हुए
बाल ईशुओं की तरह
दिखते हो मेरी आंखों को
उठो बेटों
अपने बचपन से उठो।
किताबें उस ओर फेंक दो
डाल लो कंधों पर हल
बीते हुए समय मार्ग को
कटुता से बिदाई दो।

जीवितम् (तेलुगु कविता)

मूल कवि एवं रूपान्तरः डॉ॰ शीलम वेंकटेश्वर राव

ज़िन्दगी

(1)
जिन्दगी!
कितनी सुन्दर
कितनी सलोनी
कितनी मोहिनी
कितनी चतुरांगिणी!!

(2)
जिन्दगी!
तेरा रूप
तेरा रंग
तेरा ढंग
नहीं है एक-सा!!

(3)
जिन्दगी!
ठहराव नहीं
बदलाव है
स्थिरता नहीं
बहाव है तुझ में!!

(4)
जिन्दगी!
नदी और तूं
एक जैसी
एक-सा रुझान
एक-सा स्वभाव!!

(5)
जिन्दगी!
तुम दोनों को है
तलाश ढलान की
चाह जीने की
मंजिल है समझौता!!

(6)
जिन्दगी!
तुम दोनों
समर्पण शील
गतिशील
संवेदनशील!!

(7)
जिन्दगी!
जैसी स्थिति
वैसे ढल गए
थम गए
रम गए!!

(8)
जिन्दगी!
जिन्दादिली का नाम
हर हाल में मुस्कराए
चट्टानों से टकराए
कांटों में राह बनाए!!

(9)
जिन्दगी!
सवाल उम्र का नहीं
कारगुजारी का है
सवाल जीने का भी नहीं
मंजिल के वास्ते मर मिटने का है!!

(10)
जिन्दगी!
हृदय में जिजीविषा
मन में मंगलेच्छा
नयनों में नवस्वप्न
सुवासित हो उपवन!!

(11)
जिन्दगी!
तारों में ध्रुव
हीरों में कोहिनूर
खगों में हंस
बड़ी चीज़ है अपनी पहचान!!

तरीका

उड़िया कविता

रूपांतरः शंकर नायक

खून देखकर डरो मत
बलि के बकरे का
तुम्हारा यह हिस्सा,
लो और पकाओ,
बच्चों को दो,
खुद भी खाओ,
जाओ।
यह भी तो एक
तरीका है
परम्परा का भोग करने का।
मुझे देखो
कितना निडर हूं मैं
कल रात को
सपने के साथ हाथापाई में
शायद एक बून्द खून
लग गया हो
शेफाली के गाल पर
इससे डर क्या है?
क्षति थोड़ी सी है
और सब तो उन्नति।
बिना हाथ पैर के
परम्परा पर
फूल और सिन्दूर
चढ़ाओ पुरोहित जी
बजने दो बाजा,
नाचने दो देवी के
सवार होने पर भगत को।
आज के दिन का भोग करने का
यह भी एक तरीका है।

उड़िया कविताएं

मूल डॉ॰ प्रदीप कुमार धल
रूपान्तरः प्रद्युम्नदास वैष्णव 'विद्यावाचस्पति' 'आशीर्वाद'

आशीर्वाद

कौन? इस प्रकार होकर अदृश्य
देने को आशीर्वाद
उठाये दोनों हाथ
कब से हैं; अज्ञात
आशा और विश्वास के प्रभाती तारे को
कर रहा है आलोकित
सुबह के सत्य चेहरे को देख लेने तक।
बारम्बार झर जाता वृन्त से
स्थान से हो जाता स्थानान्तर
इस पर भी;
कौन? टहनी से वृन्त
और स्थान के उपरांत शून्य की
कर रहा है सृष्टि।
संग्राम और संघर्ष मध्य सुकौमार्य को
जल-भुनकर मौत से जूझ
बचाये रखा है किसके निमित्त?
नदी की मझधार तैर-तैर
कूलस्थ बालुका राशि को देखने
और करने स्पर्श।
कौन? सिखाता है मुझे यह मंत्र
और बारम्बार लेकर के परीक्षा
कर रहा है परीक्षित
सर्वान्त बेला में,
ज्वलन्त अंगारों के मध्य से
उठाकर ले आता मुझे
कौन? अदृश्य दोनों हाथों से।
अदृश्य भी हो जाता दृश्य
जब अनुभवी मन
बन जाता शुद्ध धवल जल।
कहाँ है? मेरा प्रभावी सूर्य सा खिला-खिला चेहरा
इस अंधकार में गिनने को अक्षम
वह तारागण।

'समय'

.....

जीवन का अर्थ यदि है
यन्त्रणा; तो—फिर
क्यों लगता है सुखद
यंत्रणा को पी-पीकर
सो जाने की बात।
यहां पुण्य का अर्थ है
क्षुधा और अनाहार से
सूखा हुआ चेहरा
और बातें करने में असमथ
एक थर-थराता कंकाल।
आखिर पाप का पुष्प
मुरझा न सके
सूर्योदय पूर्व।

'सम्पर्क'

....

मृत्यु के स्पर्शोपरान्त
एवं शव के राख हो जाने के मध्य
एक बूंद आँसू भी, झर नहीं पाता
अपने आत्मीय स्वजनों की ओठों पर।
यहाँ; इसी प्रकार है सम्पर्क,
स्वयं की आँखों के समक्ष
सभी हैं अपने....और आत्मीय।

———

नेपाली कविता

रूपान्तरः रामलाल शर्मा

[नेपाली प्रगतिशील कवियों में मंजुल का विषेश स्थान है। सिर्फ कविता ही नहीं नेपाली काव्य, संगीत आदि में उनका नाम अदब से लिया जाता है। उनके अनुसार कला जीवन के लिये है, न कि कला के लिए और साहित्य की ये विधाएं ही समाज परिवर्तन के सबसे बड़े हथियार हैं। प्रस्तुत है उन्हीं की एक कविता का हिन्दी रूपान्तर।

संपादक

1

मेरे हाथ और हथकड़ी लगे हाथों में
कोई फर्क नहीं
मेरे मुंह और सिले हुए मुंह में
कोई फर्क नहीं
मेरे पैर और जंजीर से जकड़े पैरों में
कोई फर्क नहीं
क्योंकि
जो मैं लिखना चाहता हूँ वो लिख नहीं पाता
चाहकर भी उन्मुक्त मन से कोई गीत तक नहीं गा सकता
जो मैं कहना चाहता हूँ,
वो कह नहीं सकता
चाहकर भी अपनी मन के गुबार को नहीं निकाल पाता
जब कभी मैं मैं सुनता हूँ देखता हूँ

उन्मुक्त मन से गाते हुए लोगों को
वह सुर संगीतमय दृश्य
मुंह से चुपके से बहुत कुछ कहकर जाता सा लगता है
जब मैं सुनता हूँ, देखता हूँ
सितार के तारों को छेड़ते निर्भिक व हुनर उंगलियों को
लगता है वह झंकार मेरे दिल में झंकृत हुई हो
क्या कोई यहां दास बन कर जी सकता है।
मनुष्य-मनुष्य है आखिर
वह लड़कर भी अपना अधिकार लेता है
और तभी वह यहां जी सकता है।

मलयालम कविता

सुनते हो माँ का आह्वान?

मूलः प्रो॰ ओ॰ एन॰ वी॰ कुरुप
रूपान्तरः के॰ जी॰ बालकृष्णा पिल्लै

सुनते हो माँ का आह्वान?
'आओ बच्चो, साथ चलें हम,
मेरे पग से कदम मिला कर।'
आपस में लड़ते बच्चों को अपनी ओर समेटी
उन को अपने साथ चलाती
हंफती-कंपती चलती माता
अपनी क्लांति भुला के चलती।
बहसें करती, चोंच लगाती
चोंच मार कर हत्या करती संतानों को
निज ममता के पंखों की छाया देती
उन को समेट कर चलती है
और बता देती—
यह मद मत्सर व्यर्थ, इसे तुम छोडो
पंख फड़फड़ाता आता है एक बड़ा सा पक्षी
जिस की चोंचें और पंख हैं कटु लोहे से निर्मित
ऊपर से आकर वह कहता—
"मैं ही रक्षक, दे दो तेरे इन बच्चों को"
बड़े जोर से कहता पक्षी
बेचारे बच्चों को अपने उर से लगा रही है माता
स्नेह आत्मविश्वास रूप निज रक्षा के कवचों को
पितृहन्त कर्णाभरणों को
उन्हें दान दे दिया जिन्होंने चालाकी से मांग लिया
और चल रहे बच्चे सीधे कुरुक्षेत्र की ओर
क्या अतीत के स्मृति गह्वर से गूंज रहे हैं मातृ विलाप?
सुनते हो माँ का आह्वान?
आओ बच्चो, साथ चलो, मेरे पग से कदम मिला कर।
मम सुत को, पुरुषोत्तम को,
साधारण सा बन्दी कर के

2

जंजीरों में जकड़-जकड़ कर
लिये जा रहे खींच-खींच कर
आदि यवन जेता के पास
पूंछ रहे हैं—"कुछ कहना है?"
"देख लो, यही मन है अदम्य भारत का"
बोल रहा मेरा मानी सुत।
उस घटना की पावन स्मृति में
रो पड़ती है वीर-प्रसू माँ, आँसू पोंछ रही है,
फिर वह पूछ रही है—

मेरे ये बच्चे
क्यों कर भुला रहे ये बातें?
जब विलायती चढ़ आते हैं इस मिट्टी पर?
माता का आह्वान सुनो तुम
आओ बच्चो साथ चलो तुम
माँ को छोड़ चले जाना मत
पथ के एक किनारे पर है मूर्छित हो गिरते गौतम
सूर्यातपे से हो आहत
निम्न जाति का अजपालक तब
अज के थन से दुह कर तत्क्षण
थोड़ा-थोड़ा दूध पिलाता
प्राणों में शीतलता पा कर
पलकें धीरे खोल तथागत
धीरे से उठ बैठे,
बोले स्नेह सिक्त वाणी अमृतोपम
"बच्चो
जिस आत्मा से निस्सृत होती करुणा
उसकी जाति नहीं है।
आँसू में जो दया विनिसृत होती
उस की जाति नहीं है
रक्ता भा बस एक ज्योति की।"
बता रहे सत्यों का सत्य।

3

उस बालक का आत्म हर्ष
है बरस रहा मुरली नादामृत
इस की स्मृति जगते ही
गिरती सिर कट कट कर
बुद्ध देव की कितनी ही मूर्तियां यहां पर
'ऊरुवेल' में इस पथ मध्ये
बौद्ध विहारों में अनाथ हो
अतिभ्रष्ट हो—
माता का आह्वान सुनो तुम
"आओ बच्चो, साथ चलो तुम
माँ के पग से कदम मिलाकर ।"
सब कुछ त्यज कर
अटवि अयोध्या है यह मान कर
चले राम निस्संग भाव से।
जिन लोगों ने उसी राम को
निज हृदयों से निकाल दिया था
उन लोगों ने आज अयोध्या को
क्यों रण का क्षेत्र बनाया?
जिस कबीर ने गाया—मैं हूँ राम-रहीम का बेटा
उसके गीत चले आते हैं
वन में रोते बच्चों के सम
हिन्दू मुस्लीम छाप लगा कर
जिन लोगों ने
जल को दो प्यालों में बाँटा
वे जहाँ जहाँ भिड़ मरते थे
वहाँ वहाँ निज छड़ी टेकते गये
आर्द्र हो कर जो वृद्ध
उनकी हत्या कर के
उससे मिले पाप को पुष्प बना कर
बाँट लिया कुछ क्रूर जनों ने
अति विनम्र हो कहती है माँ
अति दुःखित हो
"सुकृत क्षय"

4

सुनते हो माँ का आह्वान?
"आओ बच्चो, साथ चलें हम
मुझे छोड़ कर मत जाना"
माता अब भी अश्रु बहाती
अपने उन बच्चों की स्मृति में
श्याम वर्ण जो हैं असंख्य
हम मनुष्य हैं—ऐसा जिनमें बोध नहीं है
कंधे पर हल ढोते पशु बन
जा मिट्टी पर पड़े रेंगते
हर कोई जिन को कुचल सके।
स्वतन्त्रता है सूर्य
सभी को जो देता है सम उजियाला
समता से देता प्रकाश जो
करुणा सागर सूर्य
उसे देख पाने को
कितना तपना होगा इन निस्वों को!
तप्त दग्ध लोहे को
कल्पित रूप प्रदान करने को
जिन के बड़े हथौड़े उठते गिरते
उन के संग जगी रहती है
यह करुणानिधि माता।
जहां मूल्यवान जन्म
राख हो जाते कन्याधन के नाम
जहां बेचती एक बहन निज देह
एक रोटी पाने को
जहाँ भटकता एक युवक
निर्व्याज प्रमाण पत्र लटकाए
एक जून की रोटी पाने
कहीं कठिन मज़दूरी करते निज बच्चों की
बाट जोहती निस्व वृद्धता

जहां डूबती
वहां जागती रहती माता
सूर्यदेव के इन्तजार में
जो है तम का अन्तक।
नहीं सुना माँ का आह्वान?
"आओ बच्चो, चलें साथ ही

माँ के पग से कदम मिला कर
माता के ही साथ चलें हम
स्नेहमयी माता का यह पाथेय
करों में लिये चलें हम
माँ के शिशु सूरज को
अपने उर से चिपकाए,
मां को थामे,
चलें, बढ़ चलें

एक यूनानी कलश को

मूलः जॉन कीट्स
रूपान्तरः कुलदीप सलिल

अनछुई दुल्हन तू खामोशी की
धीमे समय की पोषित बच्ची
इतिहासकार ऐ हरियाली की
फूलों भरी कहानी तू ही
केवल तू ही कह सकती है
'मेरी कविता से भी अच्छीः
देवताओं की, या मनुष्य की
टैम्पी अथवा आरकेडी' में
दन्तकथा यह है कौन सी
हरी-भरी जो कहती है तू?
कौन मनुष्य ये कौन देवता?
कौन युवतियां खड़ी अनमनी
क्या दीवानगी? पीछा कैसा?
बचने की यह जद्दोजहद क्या?
वीनाएं क्या, ढोल ये कैसे?
क्या उल्लास यह, सौदाईयों-सा?

है श्रव्य संगीत सुहाना
परन्तु अनसुना, और भी सुन्दर
अतः बजाओ वीना वादक
कानों के लिये नहीं मनुष्य के
बल्कि आत्मा की खातिर तुम
ना हम सुन जो पायें, मधुर धुन

खत्म न होगा गीत तुम्हारा, ऐ नौजवां
इन पेड़ों के नीचे/ना ही
कभी झड़ेंगे इनके पत्ते।
निर्भय प्रेमी, इतने पास भी होकर लक्ष्य के
चुम्बन कभी न ले पाओगे,
चिन्ता लेकिन करो न तुम कि
'कभी नहीं' वह कुम्हलाएगी
सदा प्रेम तम करते रहोगे
और वह सुन्दर सदा रहेगी।

कभी वसन्त विदा न होगा।
कभी झड़ेंगे ना ये पत्ते
ऐ प्रसन्नचित शाखो, तुम्हारे?
ऐ प्रसन्नचित अथक गवैये
सदा नये तुम गीत गाओगे?
ऐ प्रसन्नचित प्रेमी सदा तुम
सदा ऊष्मा, सदा ही यौवन
सदा तुम्हारे रहेंगे कायम,
मानव प्रेम से कहीं उच्चतर
ऊब है जिसमें, व्यथित जहां मन।

कौन जा रहे बलि देने को,
किस बलि-वेदी पर ले जाते
सजे-सजाये मालाओं से
आसमान तक चिल्लाते इस
बछड़े को, अज्ञात पादरी!
नदी किनारे, तट सागर के
हुआ है खाली शहर कौन यह?
सुबह-सबेरे
पर्वत की गोदी में बसता
हुआ है खाली किला कौन-सा?
ऐ छोटे-से कस्बे तेरी
गलियां अब खामोश रहेंगी
और बताने कारण इसका
कोई कभी न अब लौटेगा।

इस पीढ़ी को, इतर हमारे
मित्र तुम उसके
अन्य दुखों के मध्य रहोगे
और कहोगे यह मनुष्य से,
सौन्दर्य सत्य है, सत्य ही सुन्दर—
यही तुम्हें मालूम जहां में
और नहीं कुछ इससे आगे।

पुस्तक समीक्षा

भाषा, संस्कृति और समाज

[पुस्तकः भाषा संस्कृति और समाज, संपादकः डा॰ सोहन शर्मा, प्रकाशकः अभिकथन पब्लिकेसन्स, कोटला मुबारकपुर, 1810/1, ज्ञानीबाजार, नई दिल्ली, मूल्य 395/-]

"हिन्दी हमारे समाज की बहुभाषिक संरचना और सामासिक संस्कृति के विवेक को पहचानने, इनकी भाषिक धरोहर और परम्परा के मूल स्रोतों को देखने-समझने-परखने की व्यापक संभावनाएं लिए हुए है....."भारतीय संस्कृति और समाज के अंतःसूत्रों की पहचान कायम करने की मंशा के साथ भाषिक माध्यम के रूप में हिन्दी की इन व्यापक संभावनाओं की पड़ताल की गयी है—"भाषा, संस्कृति और समाज" शीर्षक ग्रंथ में, इस ग्रंथ के सम्पादक डा॰ सोहन शर्मा हैं। सहयोगी सम्पादक हैं-डा॰ शशि शर्मा और उमाकांत स्वामी।

डॉ॰ सोहन शर्मा जाने माने मार्क्सवादी विचारक, कथाकार और कवि हैं। मार्क्सवादी दर्शन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता इस ग्रंथ के सम्पादन में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। ग्रंथ की भूमिका से उद्धृत डॉ॰ शर्मा की उपरोक्त पंक्तियों में व्यक्त मंशा के साथ-साथ डॉ॰ शर्मा का वामचिंतन इसी ग्रंथ के प्रथम खंड में सम्मिलित "सामाजिक बदलाव में भाषा की भूमिका" शीर्षक उनके लेख में भी अभिव्यक्त हुआ है। इस में प्रतिपादित किया गया है कि जिस प्रकार वर्गीय असमानता, बेरोजगारी, अशिक्षा और शोषण सत्ताधारी वर्ग की नीतियों की उपज है उसी तरह भाषा की समस्या भी अंततः उसी की राजनीति का परिणाम है। इसलिए जिस प्रकार शासन-व्यवस्था के विरुद्ध अन्य मोर्चों पर संघर्ष जरूरी है उसी तरह भाषा के मोर्चे पर भी संघर्ष जरूरी है। परिवर्तन की मांग, चाहे वर्ग वैषम्य को बढ़ाने वाली किसी भी नीति के विरुद्ध हो, जन सामान्य को संघर्ष के लिए आंदोलित करते हुए सत्ताधारियों को "आइसोलेट" करती है। इस विश्लेषण के साथ इस लेख का महत्वपूर्ण निष्कर्ष है..." भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा के साथ वास्तविक लोकतंत्र की प्रतिष्ठा होगी और वास्तविक लोकतंत्र हमारे समाज में अगले प्रगतिशील बदलाव अर्थात् समाजवादी समाज की स्थापना के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों का मार्ग प्रशस्त करेगा। सामाजिक बदलाव में भाषा की भूमिका की इसी अहमियत को समझ कर भाषा के संघर्ष को व्यापक सामाजिक संघर्ष के साथ जोड़ कर देखना होगा।"

पुस्तक की सम्पूर्ण परिकल्पना का स्वरूप इसी चिंतन को केन्द्रीय आधार बना कर चलता है। भाषा, संस्कृति और समाज के विभिन्न, सन्दर्भ-प्रसंगों को एक व्यापक परिदृष्य में प्रस्तुत करने वाला यह ग्रंथ चार खंडों में विभाजित है।

"संस्कृति चिंतन" शीर्षक प्रथम खंड में "भाषा की उत्पत्ति और विकास" (भगवान सिंह), "भाषा, टैक्नालाजी और समाजिक विकास" (रवि), "औपनिवेशिकता की अवधारणा और भाषा" (शैलेश मटियानी), "भाषा, समाज और संस्कृति" (डॉ॰ सी॰ एल॰ प्रभात), "भाषा और संस्कृतिः कुछ बिंदु कुछ विचार" (डा॰ शंकरदयाल सिंह) तथा "मुगलों, अंग्रेजों एवं तत्कालीन रजवाड़ों के राजकाज में हिन्दी" (डा॰ रामबाबू शर्मा) जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर लेख हैं। इनमें सामाजिक व्यवहार के माध्यम के रूप में भाषा की उत्पत्ति, असमान पूंजीवादी विकास से उत्पन्न परजीवी संस्कृति के संदर्भ में से भाषिक दासता की प्रवृति शोषक तथा शोषित की हैसियत में भाषिक अभिव्यक्ति विस्तृत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के प्रयोग की परम्परा एवं क्षेत्रीयवाद तथा विघटन को उकसाने वाला अंग्रेजी भाषा का व्यवहार जैसे ज्वलंत एवं बुनियादी मुद्दों पर क्रमशः भगवान सिंह, रवि, डॉ॰ प्रभात और शैलेश मटियानी के लेखों की विचारोत्तेजकता झकझौरती है।

"राष्ट्रीय सोच" शीर्षक से द्वितीय खण्ड में राष्ट्रीय एकता में हिन्दी की भूमिका" (विष्णु प्रभाकर), "भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय एकता के प्रसंग" (डॉ॰ विनय) तथा "भाषा व्यवहार और साम्प्रदायिक सोच के खतरे" (उमाकांत स्वामी) आदि के लेखों में राष्ट्रवादी चिंतन का विस्तृत विवेचन है। तृतीय खंड "सिद्धांत-सरोकार" शीर्षक से है। इसमें केन्द्र सरकार की राजभाषा हिन्दी तथा देश के विभिन्न राज्यों की राजभाषाओं के सैद्धान्तिक पक्षों का विश्लेषण करने वाले लेखों के अतिरिक्त अनुवाद, भाषा विज्ञान, शब्दावली तथा वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र में भाषा व्यवहार के विभिन्न मुद्दों पर केन्द्रित लेख हैं। इनमें 'हिन्दी तथा भारतीय भाषाएं" (डॉ॰ कैलाशचन्द्र भाटिया) "सम्पर्क भाषा हिन्दीः स्वरूप और संभावनाएं" (डॉ॰ कलानाथ शास्त्री) तथा "हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक स्वरूप" (डॉ॰ त्रिभुवननाथ शुक्ल) के लेख विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी खंड में 'थिसारस निर्माण की चुनौतियां" शीर्षक से अरविंद कुमार तथा "थिसारसः परिकल्पना और प्रशासनिक क्षेत्र में उसकी उपयोगिता" शीर्षक से डॉ॰ शशि शर्मा के लेख पूरे ग्रंथ के कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण लेखों में रखे जा सकते हैं। हिन्दी में आज भी थिसारस निर्माण जैसा आवश्यक कार्य होना बाकी है। "थिसारस" भाषा की अभिव्यक्ति सामर्थ्य के महत्वपूर्ण आयामों को उद्घाटित करने वाली विधा है। ये दोनों लेख, विशेषकर अरविंदकुमार का लेख इस दिशा में एक प्रारम्भिक किन्तु परिपक्व वैचारिक आधार प्रस्तुत करते हुए इस आवश्यकता को रेखांकित करता है कि हिन्दी थिसारस निर्माण के कार्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

"व्यवहार-विचार" चतुर्थ खंड है। इसमें लोकतांत्रिक अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में, प्रशासन, न्यायव्यवस्था शिक्षा तथा पत्रकारिता आदि के क्षेत्र में भाषिक संस्कारों तथा शासक और शासित की मानसिकता की पड़ताल करने वाले लेख हैं। इनमें "लोकतंत्र की न्याय व्यवस्था लोकभाषा में कार्य करें". (न्यायमूर्ति चन्द्र शेखर धर्माधिकारी) भारतीय न्याय व्यवस्था और भारतीय भाषाएं (ब्रजकिशोर शर्मा) तथा "चुनौतियों से जूझती भारतीय भाषा पत्रकारिता" (डा॰ राममनोहर त्रिपाठी) के लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। प्रथम खंड में शैलेश मटियानी ने भाषा व्यवहार के क्षेत्र में जिस औपनिवेशिक मानसिकता का विश्लेषण किया हैं। उसी चिंतन के अन्य पक्षों को उजागर करने वाले ये लेख अंग्रेजी भाषा के प्रयोग की मानसिक गुलामी से मुक्त होने की आवश्यकता को तीव्रता से रेखांकित करते हैं।

लगभग चार सौ पृष्ठों के इस ग्रंथ के सम्पादन में जिस वैचारिक एकसूत्रात्मकता का निर्वाह किया गया है वह अत्यधिक प्रासंगिक एवं सराहनीय हैं। भाषा व सामाजिक सांस्कृतिक चिंतन के विभिन्न पक्षों से जुड़े विषयों पर प्रसिद्ध भाषाविदों, साहित्यकारों तथा संस्कृतिकर्मियों के लेखों का संयोजन सम्पादकीय कौशल और सूझबूझ का प्रमाण हैं। समग्र एवं व्यापक रूप में भाषा, संस्कृति और समाज के अंतः सम्बन्धों का विवेक विकसित करने वाली इतनी विचारपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करने वाला यह प्रथम और स्तरीय ग्रंथ है। इसके लिए सम्पादक डॉ॰ सोहन शर्मा और उनके दोनों सहयोगी साधुवाद के पात्र हैं।

विषय की प्रासंगिकता और विचार ''गरिमा'' के अनुरूप ही ग्रंथ का प्रस्तुतिकरण भी गुणवत्तापूर्ण है। आवरणपृष्ठ पर दिए भाषा, लिपि तथा संस्कृति के विकास के प्रतीकों की कलात्मकता तथा भीत खंड-शीर्षकों के रेखाचित्र इस ग्रंथ को विशिष्ट सांस्कृतिक व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। इसके लिए अभिकथन प्रकाशन बधाई का पात्र है।

गणेश खुगशाल

हमसफ़र मिलते रहे

[पुस्तकः हमसफ़र मिलते रहें, लेखकः विष्णु प्रभाकर, प्रकाशकः कादम्बरी प्रकाशन, 5431, शिव मार्किट, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली-7, मूल्य 100 रु॰]

किसी भी 'एक्टीविस्ट राइटर' के लिए सिर्फ लिखते रहना ही उद्देश्य नहीं, अपितु वह एक व्यापक 'विजन' के लिए लिखता है। समकालीन चेतना ही उसके मिशनरी लेखन को अर्थ भी देता है। सांस्कृतिक राजनैतिक चिन्ताएं बराबर आन्दोलित करती रहती हैं और वह बराबर अपने निजी जीवन में भी समय-समय की सामाजिक घटनाओं से सरोकारहीन नहीं हो पाता । यानी, लेखन उसके लिए हक अच्छा मनुष्य और बेहतर समाज बनने की सांस्कृतिक प्रक्रिया है। परिणामस्वरूप, उसकी बेचैनी और छटपटाहट निरन्तर और अथक होती है। वह सम्पूर्ण समाज के भीतर पहिए की तरह घूमता रहता है, अनवरत और अवन्त। प्रेमचंद से लेकर चाहे वे राहुल हों, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन हों, चाहे विष्णु प्रभाकर—सभी के सभी का मन समाज और संसार की पाठशाला में ही भ्रमणशील रहता है। राहुल जी के शब्दों में कहें तो 'केवल घुमक्कड़-शास्त्र ही मनुष्य को मनुष्य बनने की राह दिखा सकता है।

विष्णु प्रभाकर निश्चय ही हमारे समय के 'आवारा मसीहा' हैं, जिनका बहुआयामीय लेखन ही इस तथ्य का प्रमाणिक दस्तावेज है। संभवतः इन्हीं कारणों से ये अपने पाठकों के सक्रीय गांधीवादी लेखक हैं। इन्होंने कहानी, उपयन्यास, नाटक, जीवनी से लेकर अनेक यात्रा-संस्मरण लिखे हैं। 'हम सफर मिलते रहे' बड़े आदमियों या महापुरूषों के रेखाचित्र नहीं, सफर-दर-सफर देश-विदेश में मिलते रहे आम लोगों की कथाएं हैं, इन आदमियों के भीतर मनुष्यता से लबालब भरे मन के सजीव चित्र हैं। स्वयं विष्णु जी के अनुसार भी 'अनेक नियोजित और अनियोजित यात्राओं के बीच मिले व्यक्तियों के माध्यम से मनुष्य के अन्तर में झांककर वास्तविक मनुष्य को समझने की चेष्टा है। इनमें से अधिकांश न तो महान साहित्यकार हैं, न अन्य किसी क्षेत्र की अन्यतम उपलब्धि प्राप्त की है। वे सभी भारतीय भी नहीं हैं। कुछ को छोड़कर राष्ट्रीयता की दृष्टि से वे सब विदेशी हैं।'

विष्णु जी के सफर के कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं, जिनके बारे में उन्हें भी नहीं मालूम कि वे कौन हैं, अब हैं भी या नहीं। परन्तु लेखक के जहन में उनकी प्यार की भाषा है। मानवीय चरित्र है। वे अनेक अनपढ़ व्यक्तियों, जिनके पास सिर्फ-प्यार की भाषा है—के सम्पर्क में आते हैं, जिनके नानारूप हिंसा के युग में ये टिमटिमाते दीप हैं जो हमें मानवीय संवेदना के क्षेत्र में ले जा सकते हैं। प्यार के 'ढाई आखर' पढ़कर ही तो मनुष्य पंडित होता है।

प्यौत्र बारान्निकोव, डॉ॰ पोरिज्का और इनके शिष्य ओडोलेन रूमेकल, कुमारी हेलेन केलर, डॉ॰ कामिल बल्के, सरचन्द्रशेखर बेंकटरमन भले कुछ पाठकों के लिए जाने-माने नाम हों, परन्तु बाकी तमाम रेखाएं सामान्य हैं—कहीं से विशिष्ट तो कतई नहीं। तुलसी मेहर जैसे लोग व्यापक व्यक्तित्ववाले भले लगते हों, परन्तु रंगून की लेखकीय-यात्रा के दरम्यान अचानक मिल गया सुदृढ़ डील-डौल वाला युवक हो; सभी लेखक के मन में अटके रह जाते हैं। कम्पूचिया में तिरूपति चेहियार से मिलना भी लेखक के लिए विचित्र अनुभव हैं। फाया अनुमान रचथौन, खड़गमान सिंह, तुलसी मेहर, एशियाई संस्कृति के राजदूत आदि विष्णुजी की यात्राओं के अद्वितीय लौकिक लोग हैं। निश्चय ही विष्णु जी कथा पुराणों की ऋषि सनक, अनन्दन, सनातन, सनत्कुमार जैसे आर्य-परम्परा के आधुनिक घुमक्कड़ हैं। मैं अपनी बात डॉ॰ पोरिज्का द्वारा विष्णु प्रभाकरजी को लिखे एक पत्र से समाप्त करता हूं कि,

एकमात्र प्राणी के वियोग से विश्व जनशून्य हो जाता है.....

आप लिखते हैं, 'काशः हम सब प्रेम करना सीख सकें।' लेकिन आपने 'ममता का विष' नामक नाटक भी लिखा है। दुनिया ममता के विष का राज्य है। जबतक यह राज्य बना रहेगा, तब तक प्रेम और शान्ति की जीत नहीं होगी।

मधुकर सिंह

अनाम रिश्ते

[पुस्तकः अनाम रिश्ते, लेखकः कन्हैयालाल गांधी, प्रकाशकः एच॰ के॰ बुक्स, शिव मार्किट, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली—17, मूल्यः नब्बे रुपये]

भारतीय इतिहास में इस देश का साम्प्रदायिक धर्म के आधार पर बंटवारा एक अवर्णनीय कथा है; वहीं विभाजन की त्रासदी इस शताब्दी की भयावह घटना भी है। तथापि जाति, धर्म और सम्प्रदाय से परे जो मानवीय संवेदना है उस संवेदना के भीतर से बने सम्बन्ध ही मानव समाज का सच है— यथार्थ है। बकौल प्रकाशकीय ''देश विभाजन के समय और उसके बाद भारतीयों को जिन भयावह और कष्टदायक स्थितियों का सामना करना

पड़ा है उससे कौन परिचित नहीं है। आज इतने बरस बीत जाने के बावजूद उनके लगाव ज्यों-का-त्यों बना है। उन खौफनाक स्थितियों में जो सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धों के स्तर पर कायम रहे उसी का नाम है—"अनाम रिश्ते"।

"अनाम रिश्ते" कन्हैयालाल गांधी का ताजा उपन्यास है; जिसकी सीमा और जाहिद ऐसे हिन्दू और मुस्लिम पात्र हैं जो इन दो सम्प्रदायों से ऊपर सिर्फ मनुष्य हैं— वह मनुष्य आज भी भारत और पाकिस्तान में जिन्दा हैं; जिनकी दृष्टि में "अपने आप को मुसलमान कहने वाला हर शख्स मुसलमान कहलाने का अधिकारी नहीं होता और न अपने आप को हिन्दू या ईसाई कहने वाला प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू या ईसाई।" आदमी को आदमी की तरह जीना जितना सरल है उतना ही कठिन भी है महाकवि गालिब के शब्दों में कहें तो 'आदमी को भी मुयस्सर नहीं इन्सां होना'।

उपन्यास की कथा मखदूमपुर जैसे गांवों की सीमाएं पार कर शरणार्थी—कैम्पों में प्रवेश करती है; जहां आदमी के भीतर आदमी है शैतान भी है; बावजूद इसके आदमी के रिश्ते आदमी के रिश्ते आदमी से नहीं टूटते । भले आदमी बड़ा अकेला होता है, लेकिन इसके भीतर एक भरा-पूरा समाज होता है। यातना-शिविरों के बावजूद शरणार्थी कैम्प एक मुक्म्मल परिवार है; जहां सीमा और उसकी बेटी कामिनी के अतिरिक्त संतरी सुभद्रा, निर्मला जैसी चरित्र भी है। उनके अन्दर दहशतों के बावजूद निजीविषा है; जो बराबर उनके भीतर ऊर्जा की तरह विद्यमान रहती है सीमा के लिए मित्र और वास्तविक जीवन में बड़ा अन्तर है। किस किस में कितना इतिहास है और उसके कितनी कल्पना और रोमांच का अंश—यह कहना मुश्किल है इसलिए इन कथाओं से अपने साथ हुए दुष्कर्मों के प्रति संतोष कतई नहीं हो सकता। सीमा के साथ घटी घटनाएं स्मृतियों में उभरती है, दंगाई गुंडे उसे और बेटी कामिनी को भगाए लिए जा रहे हैं। बेटी एक गुंडे के साथ आगे-आगे और मां थोड़े फासले पर पीछे-पीछे जैसे हिरणी अपने शावक के पीछे-पीछे ममता मे बंधी सुबुकतगीन की पकड़ में घोड़े पर बदहवास उड़ी चली जा रही है। मगर सुबुकतगीन को ही हिरणी की निश्चछलता ने पिघला दिया था और हिरणी ने उसे सुबुकतगीन गुलाम से सुल्तान बना दिया था लेकिन दंगाई गुंडे तो बेरहम और बेदिल थे। एक एकान्त में दंगाई स्वंय निर्वस्त्र हो गया था और गंडासे के सहारे सीमा को भी निर्वस्त्र कर अपनी हविश की तृप्ति चाहता था। उसने झपटकर गंडासे उठा ली थी और एक ही बार में गुंडे का अंत कर दिया था। उसके इस कर्म ने उसके सतीत्व की ही रक्षा नहीं की थी, सम्पूर्ण नारीत्व को भी मुक्ति और साहस का संदेश दिया था।

निर्मला का भी मानना है कि अधिकांश बलात्कारों का कारण पुरुष की जोर जबरदस्ती ही है। बलात्कार की साठ प्रतिशत घटनाओं में नारियां अपने सगे सम्बन्धियों की वासना का ही शिकार बनती है। पुरुष सत्तात्मक समाज में केवल नारी को ही बलात्कार के लिए अपराधी मानना ठीक होगा? परन्तु सीमा का चरित्र तब और विराट लगने लगता है, जब जाहिद उससे कहता है, "मैने तो तुम्हें और कामिनी को बचाया था। तुमने तो पचासों मुसलमान परिवारों को बचाया है। मुझे ऐसा लग रहा है कि मैंने तुम्हारी जान इसलिए बचायी थी, कि आंज तुम मेरी जान बचा सको। तुम सचमुच महान हो।"

धीरे-धीरे सीमा के अनुभव उसकी दृष्टि और दिशा को भी व्यापक बनाते हैं जब भारत पाक के सम्बन्धों को लेकर उसके विचार उभरते हैं कि दोनों के राजनयिक सम्बन्ध बनने या सुधरने की दिशा में अगर दोनों की जनता के परस्पर सम्बन्धों और सांस्कृतिक रिश्तों पर ज्यादा बल दिए जांए तो उनके बीच की दरार अलगावपन और परायेपन को शीघ्रताशीघ्र समाप्त किया जा सकता है। मगर काश! औपन्यासिक कथा का अनुभव विस्तार और स्थितियों और घटनाओं का विस्तार स्वयंभू होता तो लेखक को जगह-जगह वक्तव्यों एक विभिन्न उद्धरणों का सहारा नहीं लेना पड़ता। इसलिए उपन्यास की कथा पर लेखक बराबर सवार दीखता है। कथा बीच-बीच में अवरुद्ध होती रहती है दूसरी बात है लगता नहीं कि लेखक ने जिस भाषा में सोचा या घटना को दृष्टियों में लेता है वह भाषा पढ़ने पर अनुदित लगती है जो भी हो, परन्तु उपन्यास बड़ा मार्मिक है।

—मधुकर सिंह

दर्शन के विश्व इतिहास में क्रांति

[पुस्तकः भारतीय नवजागरण और यूरोप, लेखकः—डा० राम विलास शर्मा, प्रकाशकः—हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, मूल्यः—90/-]

"भारतीय नवजागरण और यूरोप" डा० रामविलास शर्मा की पुस्तकमाला 'इतिहास और समकालीन परिदृश्य' का चौथा खंड है, जिसे दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी माध्यम निदेशालय ने प्रकाशित किया है। समीक्षित पुस्तक में ६ अध्याय है। 'भारतीय नवजागरण और ऋग्वेद' शीर्षक पहले अध्याय में विश्व के इस प्राचीनतम ग्रंथ के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालते हुए यह दिखलाया गया है कि किस तरह से दार्शनिक चिंतन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आरंभिक सूत्र हमें ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं और मंत्रों में मिलते हैं। इस दृष्टि से इसमें हम भारतीय दर्शन के रूप में दार्शनिक तत्व चिंतन और आधुनिक ज्ञान विज्ञान का आरंभ बीज रूप में परिलक्षित कर सकते है।

डा० शर्मा ने इस अध्याय में यह स्पष्ट दिखलाया है कि किस तरह से ऋग्वैदिक चिंतन का झुकाव भौतिकवाद और यथार्थवाद की ओर है। इसके साथ ही ऋग्वेद से अत्यंत उच्चकोटि के काव्य का भी रसास्वादन होता है। प्रकृति प्रेम, यथार्थवादी अभिव्यक्ति और वैज्ञानिक जिज्ञासा से आरंभ करके-ऋग्वेद के कवि सृष्टिक्रम और विश्वप्रपंच में परिवर्तन और विकास की प्रक्रियाओं का उल्लेख करते हैं। जादू-टोना, अंधविश्वास और आध्यात्मिक रहस्यवास से ऋग्वेद का दूर का भी संबंध नहीं है। भौतिकवाद और द्वन्द्वात्मक चिंतन के साथ ही ऋग्वेद में हमें परमाणुवाद, कालसापेक्षता और विकासवाद के भी सूत्र मिलते हैं।

ऋग्वेद के रचनाकार कवियों और ऋग्वैदिक समाज का परिचय देते हुए डा० शर्मा हमें बताते हैं कि सप्तसिंधुओं के प्रदेश में रहने वाले आर्यजनों ने सरस्वती नदी के तटवर्ती प्रदेश में ऋग्वेद की रचना की थी। भारत के मूल निवासी इन आर्यजनों, उनकी समाज व्यवस्था और पश्चिम एशिया की ओर उनके बहिर्गमन और प्रसार के बारे में डा० शर्मा ने अपनी इसी पुस्तकमाला के तीसरे खंड 'पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद' में अत्यंत विस्तार से लिखा है। इस दृष्टि से ये दोनों पुस्तकें परस्पर पूरक और आपस में

जुड़ी हुई है। डा० शर्मा के अनुसार ऋग्वैदिक आर्यों की समाज व्यवस्था हालांकि मातृसत्तात्मक गण-समाजों और आदिम साम्यवादी व्यवस्था को पीछे छोड़ आई थी और श्रम के विशेषीकरण निजी सम्पत्ति और विनिमय पर आधारित ऐसी वर्ग विभाजित पितृ सत्तात्मक युग्म परिवार वाली व्यवस्था थी जिसमें अभी शक्तिशाली भूस्वामियों, पुरोहितों अथवा व्यापारियों का वर्ग सुगठित नहीं हुआ था। स्वाधीन किसानों, विशेषज्ञ कारीगरों और यथार्थवादी दार्शनिक कवियों की इस समाज व्यवस्था को उन्होंने नयी अभ्युदयशील सामंती व्यवस्था का नाम दिया है, जहां राजसत्ता का उद्भव भी हो रहा था।

डा० शर्मा हमें बतलाते है कि सामंती व्यवस्था की तुलना में उसकी पूर्ववर्ती गण व्यवस्था बुहत दीर्घजीवी होती है। अपने इस सुदीर्घ काल में यह समाज व्यवस्था बहुत सारी देवकथाओं और मानववीरों की गाथाओं को जन्म देती है। इनमें से बहुत सी कथाओं को बाद में धर्म आत्मसात कर लेता है। लेकिन सामंती सभ्यता के अभ्युदय काल में देवकथाओं की भूमि पर और उनसे अलग हटकर भी, विभिन्न दार्शनिक धाराएं जन्म लेती है। वर्ग संघर्ष तीव्र न होने और उसका रूप स्पष्ट न होने की वजह से ये दार्शनिक धाराएं मूलतः यथार्थपरक ही होती है। भूसंपत्ति के केन्द्रीकरण और सामाजिक वर्चस्व के फलस्वरूप जब सत्ता थोड़े से लोगों के हाथ में आ जाती है और पुरोहित वर्ग उनका समर्थन करता है या खुद भूस्वामित्व में हिस्सा बंटाता है तो सामंती समाज में भाववादी दार्शनिक धाराएं भी पैदा होने लगती है। संपत्तिगत भेदों के तीव्र होते जाने के साथ ये भाववादी धाराएं यथार्थवादी दार्शनिक धाराओं के विरोध में अपना वर्चस्व स्थापित करती है। इन सभी तथ्यों की भारत और यूनान के दार्शनिक विकास से पुष्टि करते हुए डा० शर्मा अपने तुलनात्मक अध्ययन से यह भी रेखांकित करते हैं कि यूनानी दर्शन और ज्ञान-विज्ञान के आदि स्रोत भारतीय दर्शन में मुख्यतः ऋग्वैदिक तत्वचिंतन में मिलते हैं।

डा० शर्मा के अनुसार सामाजिक विकास की एक मंजिल से दूसरी मंजिल में संक्रमण **नवजागरण** कहलाता है। इस तरह ऋग्वैदिक काल भारत का पहला नवजागरण है। उपनिषद काल को भारत का दूसरा नवजागरण निरूपित करते हुए डा० शर्मा ने 'उपनिषदों में दार्शनिक यथार्थवाद' और 'एशियाई यूनान में दार्शनिक जागरण और उपनिषद' शीर्षक दूसरे और तीसरे अध्यायों में प्रमुख उपनिषदों और उनकी मूल अर्न्तवस्तु का परिचय देते हुए यूनान के दार्शनिक चिंतन के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा० शर्मा के अनुसार ऋग्वेद से विकसित होते हुए जो दर्शन हमें बीज रूप में उपनिषदों में मिलता है, उसी से आगे लोकायत, सांख्य, योग, वैशेषिक आदि का विकास हुआ। इन दार्शनिक संप्रदायों की आधारभूत दृष्टि अपनाकर चरक ने शरीरविज्ञान, कौटिल्य ने समाजविज्ञान और पाणिनी ने भाषाविज्ञान के ग्रंथों की रचना की है। यही नहीं, सांख्य और लोकायत की भौतिक वादी धारा जहां ईरान में जुर्वानपंथ का रूप लेती है वहीं वेदांत की भाववादी धारा वहां तेसब्बुक या सूफी मत का रूप लेती है। ईरान से लेकर यूनान तक भारतीय दर्शन के प्रभाव विस्तार की रुढ़ि विरोधी भूमिका का उल्लेख करते हुए डा० शर्मा ने लिखा है कि भारतीय दर्शन की भौतिकवादी और भाववादी "दोनों धाराओं ने अरबों और यूनानियों को प्रभावित किया और दोनों धाराएं पुरोहितों के रुढ़िवाद से टकराई। भौतिकवादी धारा से जुड़े हुए मानी और मज्दक शहीद हुए: भाववादी धारा से जुड़ हुए सुकरात और मंसूर शहीद हुए। ईरान से लेकर यूनान तक भारतीय दर्शन के प्रभाव-विस्तार की रुढ़ि विरोधी भूमिका ऐसी ही थी।"

इसी प्रसंग में डा० शर्मा ने लिखा है कि "एपिकु रूस और देमोक्रितुस से लेकर इंग्लैंड और फ्रांस तक की भौतिकवादी विचारधारा के पूर्व-रूप भारत में मौजूद थे।" वे अपनी इस पुस्तक में विस्तार के साथ इन्हें उजागर करके इनके आदि स्रोत ऋग्वेद की ओर सही संकेत करते हैं। इस संदर्भ में वे दार्शनिक उद्भावनाओं के ही नहीं बल्कि प्रकृतिक विज्ञानों रेखागणित, बीजगणित और प्रौद्योगिकी से संबंधित कुछ धारणाओं पद्धतियों और वस्तुओं के भारत से चीन, अरब, यूनान और यूरोप पहुंचने का इतिहास भी विस्तार से रेखांकित करते है। उपनिषदों के यथार्थवादी चिंतन और सर्वात्मकवाद (वेदांत) की प्रगतिशील भूमिका रेखांकित करते हुए इसीलिए डा० शर्मा ने इस दूसरे नवजागरण को 'विश्वदर्शन के इतिहास में क्रांतिकारी युग' कहा है। उनके मतानुसार ऋग्वैदिक नवजागरण और उपनिषदों के इस दूसरे नवजागरण के बीच का काल ब्राह्मण ग्रंथों का रचनाकाल है; जिसके दौरान पुरोहित वर्ग ने कर्मकांड और धार्मिक अंधविश्वास को विस्तार दिया था। ऋग्वेद और उपनिषद मूलतः इस धार्मिक रुढ़िवाद और कर्मकांड के विरोधी और दार्शनिक यथार्थवाद के मूल स्रोत हैं। इसलिए डा० शर्मा ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि उपनिषद जितना ही ब्राह्मण ग्रंथों से दूर हैं, उतना ही ऋग्वेद के निकट हैं। यह भारतीय नवजागरण यूरोप के पुर्नजागरण (रेनांसां) से कई मायनों में भिन्न है।

पुस्तक के चौथे और पांचवे अध्यायों में भारत और यूरोप के नवजागरण के प्रथम और द्वितीय उत्थान का परिचय देते हुए डा० शर्मा इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हैं कि यूरोप में मध्यकाल के अत्यंत लंबे अंधकार-युग के बाद सत्रहवीं और अठारहवीं सदियों में भौतिकवाद का पुनः उद्धार होता है। यूरोप में भौतिकवाद को पुनर्जीवित करने में फ्रांस के पियर गसेंदी। आगे चलकर रेने दॅकार्त, दिदरों और इंग्लैंड के टॉमस हौब्स बेकन, लॉक और न्यूटन तथा जर्मनी में व्यूख्तर, फोग्ट, फ्रायर बाख और हैकल आदि की उल्लेखनीय भूमिकाओं का उन्होंने विस्तार से विवेचन किया है। इस प्रसंग में वे अजीव भूत से जीव के विकास, सृष्टि-क्रम डार्विन के विकासवाद, आइंसटाइन की फील्ड थ्योरी और सेक्की से लेकर ड्रेपर और कार्ल सागन के खगोलशास्त्र और कोस्मोलोजी का विशद् विवेचन करते हुए इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हैं कि इन तमाम धारणाओं के बीज औपनषदिक दर्शन के सूत्रों और ऋग्वैदिक तत्वचिंतन में मिलते हैं।

यूरोप का यह पुनर्जागरण (रेनांसां) वास्तव में इटली का पुनर्जागरण था और इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति से लगभग पांच शताब्दी पूर्व विनिमय के प्रसार से इटली में यह व्यापारिक पूंजीवादी विकास की शुरुआत थी। इटली में तब प्राचीन यूनानी और रोमन ज्ञान-विज्ञान, साहित्य कलाओं और संस्कृति का पुनरोदय होता है इसलिए यह सोलहवीं सदी में इटली का पुनर्जागरण है जबकि इंग्लैड फ्रांस और शेष यूरोप के लिए पुनर्जागरण नहीं बल्कि नवजागरण है। यूरोप का यह रेनांसां दरअसल इटली, फ्रांस और इंग्लैंड आदि के लिए विभिन्न जातियों (नेशनेलिटीज) के निर्माण का युग था। इसीलिए सुदीर्घ अंधकार युग—सांमती मध्यकाल—के अंत और आधुनिक युग अथवा नवजागरण का काल भी था। डा० शर्मा इस समूचे

विकासक्रम का विश्लेषण करते हुए दो बातों की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। पहली यह कि भारत में कृषि और कारीगरी के बीच तो अलगाव ऋग्वैदिक काल में ही हो गया था, वह यूरोप में, मोटे तौर पर, इसी आधुनिक युग में संपन्न होता है; हालांकि वहाँ कृषि और कारीगरी के बीच संयोजन के छिट-पुट रूप तो ठेठ उन्नीसवीं शताब्दी तक मिल जाते हैं। दूसरी यह कि यूरोप के दकियानूसी अंधकार-युग की तरह भारत में ऐसा 'मध्यकाल' कभी भी नहीं रहा, बल्कि लगभग तीसरी से सोलहवीं शताब्दी तक का यह कालखंड भारत में ज्ञान-विज्ञान, विदेश-व्यापार और उद्योग-तकनीक सहित भारी सांस्कृतिक समृद्धि का युग था।

यूरोप इस सामंती मध्यकाल के अंधकार से सोलहवीं शताब्दी में जब बाहर आता है तो उसका यह पुनर्जागरण या रेनांसां का युग उसके जातीय जागरण का आधुनिक युग भी है। लेकिन पूंजीवादी विश्व-बाजार के निर्माण और औद्योगिक क्रांति के साथ ही यह युग दूसरे देशों की आबादी को गुलाम बनाने और उप-निवेशों की स्थापना का साम्राज्यवादी युग भी है। उप-निवेशों की आजादी का संघर्ष मजदूर-वर्ग और मेहनती किसानों की मुक्ति के संघर्ष से जुड़ा हुआ है। यह संघर्ष भाववादी और भौतिकवादी दर्शन के संघर्ष और सर्वात्मवाद की प्रगतिशील भूमिका के साथ भी जुड़ा हुआ है। द्वितीय उत्थान वाले अध्याय में डॉ० शर्मा ने डार्बिन, हेगल, शेली और मार्क्सल एंगेल्स के विचारों का विशद विवेचन करते हुए इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि हेगल की अपेक्षा कांट, बायरन, शेली और चार्टिस्ट नेता अर्नेस्ट जोन्स कहीं ज्यादा सही थे; इसीलिए, "शेली से मार्क्स तक भौतिकवादी दर्शन का मार्ग सीधा था। बीच में व्यवधान थे हेगल।" शेली के साथ ही कांट और डारविन की मान्यताओं का अत्यंत विस्तार से परिचय देने के बाद, वे उन्हें" दर्शन और विज्ञान की एक ही धारा से जुड़े हुए" बताकर लिखते हैं कि "ऐतिहासिक भौतिकवाद कांट, शेली, डारविन की धारणा लेकर ही आगे बढ़ सकता है; हेगल के चिंतन से उसकी टक्कर अनिवार्य है।"

डॉ० शर्मा की इस युगांतरकारी कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह दार्शनिक तत्वचिंतन और ज्ञान-विज्ञान के आदि स्रोतों की प्रामाणिक खोज करने के साथ ही मार्क्स और एंगेल्स के विचारों—द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद—की बुनियादों पर ध्यान केन्द्रित करती है और इस तरह से मार्क्सवाद के स्रोतों की पुनर्व्याख्या भी। इस प्रसंग में द्वितीय उत्थान वाले पाँचवे अध्याय के अलावा 'इतिहास विज्ञान और नियतिवाद' शीर्षक छठा अध्याय और 'भारतीय दर्शन-विज्ञान और कला-कौशल की अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका' शीर्षक सुदीर्घ परिशिष्ट (37 पृष्ठ) विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। डॉ० शर्मा की 414 पृष्ठों की यह कृति दर्शनशास्त्र और मार्क्सवादी चिंतन के इतिहास में एक सृजनात्मक क्रांति है। इस पुस्तक की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह है कि संपादक की परिचयात्मक 'भूमिका' के अलावा इसमें डॉ० शर्मा के संपूर्ण कृतित्व की क्रमबद्ध सूची भी दी गयी है जो सामान्य पाठकों और शोधकर्ताओं के लिए बहुत उपयोगी है। पुस्तक के सजिल्द संस्करण का मूल्य भी आश्चर्यजनक रूप से बुहत कम अर्थात 90 रु० है, जिसका श्रेय डॉ० शर्मा को है जिन्होंने इस पुस्तकमाला की चारों कृतियों की अपनी लाखों रु० की रायल्टी यह कह कर नहीं ली कि उसके बदले में पुस्तकों की कीमत कम कर दी जाय।

—डॉ० गीता शर्मा

प्रतिनिधि कहानियां

[पुस्तकः प्रतिनिधि कहानियां; कहानीकारः सत्यकुमार; प्रकाशनः पावस प्रकाशन ए-257 जिगर विहार; मुरादाबाद-244001, मूल्यः 60 रु० पेपर बैक्स संस्करण।]

प्रस्तुत पुस्तक श्रीमती सरला कुलश्रेष्ठ द्वारा संपादित सत्यकुमार की प्रतिनिधि कहानियों का एक संकलन है। संकलन में कुल बत्तीस कहानियां हैं। वास्तविकता एवं यथार्थ से सम्पृक्त ये रचनाएं सुरुचिपूर्ण एवं रोचक हैं। रोजमर्रा के जीवन में हमारे आस-पास और हमारे साथ न जाने कितनी छोटी-मोटी घटनाएं घटती हैं लेकिन कभी-कभार यही घटनाएं हमें भीतर तक छू देती हैं। जीवन की इन्हीं छोटी-मोटी घटनाओं को लेकर ये कहानियां बुनी गई हैं। जैसे "मंथन" कहानी का रामलोचन अपने पुत्र के घर न आ पाने के बहानो" को उन्हीं परिस्थितियों में रखकर देखता है जिन परिस्थितियों में वह कुछ समय पूर्व पिता को लिखे गए अपने पत्रों में लगभग ऐसे ही कारणों/बहानों का उल्लेख करता था। पीढ़ियों" का यह सिलसिला उसे मर्माहत कर देता है और वह अपने अतीत के दर्पण में झांककर स्वयं पुत्र के यहां दीवाली मनाने का निश्चय करता है।

समाज की विभिन्न समस्यायें इन कहानियों में रचनात्मक धरातल पर चित्रित हुई हैं। यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि कोई कहानीकार अपनी कहानी में जिस समस्या को उभारता है उसका समाधान भी प्रस्तुत करे तथापि प्रस्तुत कहानीकार ने अपनी कुछेक कहानियों में समाधान भी प्रस्तुत किए हैं। "घर का न घाट का ....." कहानी में प्रवासी भारतीयों के साथ अपनी पुत्रियों का विवाह करने वाले अभिभावकों को सचेत किया गया है कि उन्हें रिश्ता पक्का करने से पहले उस देश में स्थित भारतीय दूतावास के माध्यम से संबंधित व्यक्ति के बारे में पूरी जानकारी ले लेनी चाहिए। अपराधों को दण्ड दिलाने की सलाह देते हुए सतवंत कहता है, "यहां की अदालत में धोखाधड़ी का मुकद्मा चलाया जा सकता है। सुरेश को आसमान में तारे नजर आ जाएंगी ..... इससे विदेशों में बसे उन भारतीयों को भी सबक मिलेगा जो इस तरह की हरकतें करते रहते हैं।"

समाज में धर्म की आड़ में पल रहे ढ़ोंग, पाखण्डों पर उन्होंने खुलकर प्रहार किया है। "सती का चौरा" कहानी में समाज में व्याप्त सती-प्रथा का चित्रण किया गया है। पति की रुग्णता के कारण उसके भाइयों ने जिस स्त्री को दर-दर की ठोकरें खाने पर मजबूर किया, उसके अनैतिक संबंधों का विरोध किया, उसी पति की मृत्यु होने पर उसके इन्हीं निकट संबंधियों द्वारा सती-प्रथा की आड़ में नारी की विवशता को भुनाकर चढ़ावे के रूप में धन बटोरने की प्रवृत्ति का यथार्थ चित्रण किया है।

इसी प्रकार धर्म की आड़ में खुदाई के दौरान भगवान के प्रकट होने पर समाज में व्याप्त अंध-विश्वास पर "देवता का उद्धार" में करारा व्यंग्य किया गया है। भोली-भाली जनता की भावनाओं को ढोंगी साधू-सन्यासी किस प्रकार ठगते हैं यह "चमत्कार" कहानी में वर्णित है। साथ ही "गृह-शांति" में धूर्त औझा द्वारा टोने-टोटके और कर्म-काण्डो में फंसाकर भोले गरीब लोगों को मूर्ख बनाना आदि प्रसंग अत्यन्त रोचक बन पड़े हैं।

"रुपया और नारियल" कहानी समाज में व्याप्त दहेज-प्रथा पर

कुठाराघात है। "बाबू जी" कहानी में वृद्ध अध्यापक माधो राम के अपने पड़ास के बच्चों को निस्वार्थ भाव से बढ़ाने का जिम्मा लेने पर कस्बे के लोगों ने उन्हें जो सम्मान दिया तथा उनकी मृत्यु के समाचार से उमड़ पड़ी अपार भीड़ जैसे दृश्यों का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि सारा परिदृश्य आंखों के सामने मूर्तिमान हो उठता है। "प्रेम का पंथ निराला" में भी वृद्ध पिता को अपने बेटे-बहुओं के होते हुए भी किस प्रकार अपने घर से बेघर होना पड़ता है, उनसे मिले उपेक्षा, एकाकीपन का शिकार होकर अपना जीवन, अपना अस्तित्व भारी लगने लगता है। जब यही एकाकीपन, उपेक्षा चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं तो किसी समवयस्क महिला से दो शब्द प्रेम के बोलने एवं कुछ समय उसके साथ बिताने, अपनत्व के बोलने एवं कुछ समय उसके साथ बितानें, अपनत्व मिलने पर उसी परिवार के सदस्यों द्वारा उसका चारित्रिक हनन किया जाता है। लेखक ने स्वाभाविक रूप से उनके विवाह का वर्णन कर कुछ हद तक इस समस्या का तोड़ सुझाया है।

नारी-पुरुष संबंधों के प्रति लेखक जहां अत्यधिक संवेदनशील है वहीं पुरुषों के भटकाव को नियंत्रित करने के लिए उतना ही सचेत भी। "कोशिश करे इंसान" और "दर्द का हद से गुजरना" कहानियां इस दृष्टि से सार्थक बन पड़ी है।

नारी की विवशता का वर्णन "दुर्बलता का मूल्य" कहानी में सशक्त रूप में किया गया है। अपने माता-पिता से छिपकर गंधर्व विवाह करने वाली एक स्त्री को किस प्रकार अपनी ही संतान को उपेक्षित करना पड़ता है। उसकी दुर्बलता की पराकाष्ठा तब होती है जब उसी बेटे की लाश को अपने ही घर में पाकर भी उसे लावारिश ही कहना पड़ता है।

विविध विषय वस्तु वाली ये कहानियां कहानीकार के अनुभव क्षेत्र के विस्तार की द्योतक हैं। प्रायः सभी कहानियां रोचक हैं। भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है। आपकी कहानियों में मध्यवर्गीय पारिवारिक दृश्यों को चित्रित करने का सफल प्रयास किया गया है। लगभग सभी कहानियों में चरित्रों के माध्यम से मस्तिष्क को झंझोड़ने वाली मानवीय भावनाओं को उभारा गया है।

—विनीत कुलश्रेष्ठ

विशाल फलक

[पुस्तकः सभा पर्व, लेखकः बदीउज्जमां, प्रकाशकः शब्दकार गुरु अंगद नगर, दिल्ली-92, मूल्यः 300 /-]

बदीउज्जमां का उपन्यास 'सभापर्व' वास्तव में लेखक की चेतना और संवेदना का एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें इनसानी कमज़ोरियां, खूबियां, इच्छाएं, कुंठा, मुहब्बत, परिस्थितियों का उतार-चढ़ाव, इन्सानी मनोविज्ञान की पेंचीदगियां अतीत से झांकती वर्तमान को समेटती भविष्य की तरफ संकेत करती हैं, घरेलू राजनीति की चौपड़ के साथ इस्लाम के ऐतिहासिक दृश्यों की बिसात, बौद्धों का उत्थान और विघटन, अंग्रेजों की 'बांटो और राज करो' नीति, महाभारत का विशाल फलक अपने में पूरा संसार समाए हुए हैं, इसमें संपूर्ण भारत अपने सारे वैभव के सात एक ऐसे सूरज की तरह चमकता तारीखी पर्वत श्रृंखलाओं से गुज़रता चला जाता है कि महसूस होता है धर्म, भाषा, भूगोल, खानपान की अनेकता और विभिन्नता के बाद मानव अपने संवेगों और व्यवहार में, अनुराग और वैराग्य में लगातार अपने को दोहराता रहा है, इसी कालचक्र के बहाव को बदीउज्जमां ने वर्तमान में खड़े होकर केवल एक तमाशबीन की तरह देखा भर नहीं है बल्कि अतीत के तहखानों को पार करते हुए उसकी व्याख्या बड़े सहज और सुलझे ढंग से बिना किसी पूर्वग्रह और द्वेष के की है।

बदीउज्जमां एक मुस्लिम परिवार में जन्मे और सोच-विचार में साम्यवादी थे, शिक्षा एवं अध्ययन के बल पर उन्होंने संस्कार और संस्कृति को एक करके अपनी लेखनी को एक अलग तेवर दिया, जिसमें न 'सनसनाहट' है और न ही 'धमाका' बल्कि विवेक से गुंथी हुई इन्सानी कहानी है जो किसी भी तरह की अति से बची हुई है चाहे वह भावुकता ही क्यों न हो, पांच खंडों में बंटा उपन्यास 'सभापर्व' बंटवारे की पीड़ा को दर्शाता है, यह बंटवारा परिवार, घर, देश, विचार, धर्म, दिल, भावना किसी का भी हो सकता है बिना उपदेश के प्रश्न उठाए गए हैं, उन प्रश्नों से तर्क है, चेतना है, हाड़-मास दिल व दिमाग रखने वाले इन्सान हैं।

इसमें शक नहीं कि यह उपन्यास शैली में लिखा ख्वाजा बदीउज्जमां का जीवन वृतांत है जिसे अपने देश के मानचित्र से बेहद प्यार है, स्कूली दोस्त दामोदर द्वारा मानचित्र का अंगभंग देखकर वह विचलित हो उठता है, अपने पिता के अध्यापन के पेशे से झुंझलाया, मुहल्ले से पुरी तरह उकताया सदा अमीर लड़कों से कुंठित रहता है अपने मुहल्ले के उस घूरे का जिक्र करना नहीं भूलता जो समय-समय पर साफ करा दिया जाता है और वहां पर मुहर्रम, शादी-ब्याह, जलसे किए जाते हैं, पिता का अपने गांव से बेहद प्यार उसकी समझ से बाहर की चीज़ है, गया से अलीगढ़ तक का सफर, सुन्नी-शिया वैमनस्य, हिन्दु-मुसलमान फसाद, बौद्ध-हिन्दू द्वेष, सर सय्यद का मुसलमानों और बंगालियों के बीच तुलनात्मक नज़रिया, बंगाली-बिहारियों के बीच तनाव, स्वतंत्रता संग्राम में मुसलमानों की भूमिका और उनकी स्थिति को बयान करता पन्ने दर पन्ने मन-मस्तिष्क में विश्वास जगाता यह उपन्यास इस बात का सबूत है कि बदीउज्जमां ने इस कृति की रचना में कितनी पीड़ा सही होगी और हक़ीक़त को तलाश करने में कितनी पोथियों का अध्ययन किया होगा, अपनी क्षमताओं पर नियंत्रण रख एक संतुलित दृष्टि देने का अनूठा प्रयास, तलख यथार्थ को एक सकारात्मक रुख देना, काल-खंडों के उत्थान और पतन के गलियारों से गुज़रते हुए मानवीय चेतना को संभाले रखना सिर्फ 'कमाल' नहीं बल्कि बहुत कठिन तपस्या थी जिसने अंजाम पाई है।

उपन्यास में गंभीरता जिस मात्रा में है उसी मात्रा में दिलचस्प घटनाओं का बयान, उसी के साथ व्यंग्य भी है, मामूली घरेलू बातों पर की गई छींटाकशी अवचेतन में चल रहे इतिहास के चलचित्र पर एक गहरा कटाक्ष है जो स्वयं पढ़ने वाले की क्षमता पर है कि इस प्रहार को कितना गहरे महसूस करे, लेखक के पिता एक ईमानदार, कर्मठ व्यक्ति हैं जिनको बालक ख्वाजा सदा आलोचना की दृष्टि से देखता है उसका आकर्षण पिता के मित्र बालेसर चचा की ओर है क्योंकि उनके पास हर बात का तर्क है बतौर मिसाल, जहां अनपढ़ मुसलमान धर्म-दर्शन को नहीं जानता, केवल सतही उफान को पालता है वहीं पर इस्लामिक हिस्टरी को मथने वाले बालेसर चाचा बालक ख्वाज़ा की मनोस्थिति को समझते हुए उसकी सारी गुत्थियों का जवाब देते हुए गिरह खोलते हैं: "धर्म के चक्कर में पड़ना बेवकूफी है. इसे भूल-भुलैया में एक बार दाखिल हुए तो जिंदगी भर कहीं भटकते रहोगे मैं मानता हूं कि मज़हब की भी एक भूमिका थी लेकिन

अपनी भूमिका वह पूरी कर चुका है," लेखक अपने चचा और पिता के परिवारों के बीच हुए झगड़े के बाद घर के बीच उठी बंटवारे की दीवार देखकर सोचता है कि यह दीवार गिर जाए तो घर का बेढंगापन खत्म हो जाए, मगर चची कहती हैं, "हमको कुछ नहीं मिला, घर में खाली अंगना मिला सो भी पूरा ना।"

बालक बदीउज्जमां कड़वे सच को पीने और तारीखी घटनाओं पर जमी धूल को झाड़ने में अपनी प्रौढ़ावस्था तक लगातार मानसिक यात्रा करता रहा है जिसका नतीजा यह उपन्यास है, जो एक ऐसा काम कर गया जो अक्सर इतिहासकार अंजाम देना चाहते हैं यानी भारतवर्ष के इतिहास का पुनर्लेखन.... लेखक ने अपनी सामर्थ्य से जमी काई और छाये जाले साफ करने की कोशिश की है, यदि मेरे इस सुझाव को अन्यथा न लिया जाए तो मेरा विनम्र निवेदन है कि वे चिंतन एवं प्रोग्रेसिव लेखक, पत्रकारगण जो देश के अन्य देशवासियों के बारे में जानना-समझना और उनका समर्थन करना चाहते हैं, इस उपन्यास 'सभापर्व' को ज़रूर पढ़ें।

यह उपन्यास मुर्दा तारीखों, गुज़री घटनाओं और सांप्रदायिकता की बुझी राख नहीं बल्कि सही परिप्रेक्ष्य में, बिना किसी तास्सुब के, बिना बेचारगी का लबादा ओढ़े, बिना संगीनों को ताने इस दुनिया को अपने मुल्क भारत को, इतिहास को, अनेक धर्मों को, विभिन्न विचारधाराओं को, परिवार को, मुहल्ले के गंदे, घटिया, गरीब लोगों को, खानकाहों, दरगाहों, और पीर-औलिया को देखने-समझने का एक ऐसा सफल प्रयास है जो बनावटी नहीं बल्कि बड़े सहज ढंग से लेखक की पूरी जिंदगी का निचोड़ कही जा सकती है।

अंत में शाज़ी ज़मां को धन्यवाद देना बहुत ज़रूरी समझती हूं जिन्होंने इस बृहद उपन्यास के कई ड्राफ्ट लेखक की मृत्यु के एक दहाई बाद पढ़े और उसमें से फाइनल कॉपी को तरतीब दी।

—नाशिरा शर्मा

भारतीय संस्कृति के सामाजिक सोपान

[पुस्तकः भारतीय संस्कृति के सामाजिक सोपान, लेखकः शरदेन्दु, प्रकाशकः-शब्दकार गुरु अंगद नगर, दिल्ली-92, मूल्यः 175 /-]

'भारतीय संस्कृति के सामाजिक' सोपान एक ऐसी पुस्तक है जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर कृष्णयुग और काल का निर्धारण किया गया है तथा जो पाठ्यक्रमेत्तर है। अभी तक ऐसी पुस्तकें मात्र उच्च कक्षाओं की पाठ्क्रमों में ही पढ़ने को मिलती थीं। शरदेन्दु का मात्र पाठकों तक ऐसी पुस्तकें देना स्वागतयोग्य है।

लेखक ने प्रस्तावना में लिखा है, "भारतीय संस्कृति" उतनी ही प्राचीन है जितनी प्राचीन मानव संस्कृति है। इसका साक्षी हमारा वाङ्मय है, 'ऋग्वेद' से पुराणों तक जिसकी एक समृद्धि परम्परा रही है। उसमें सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और मानववंश-बेल के विस्तार का जैसा अलंकारिक वर्णन है उसे देखकर आधुनिक विज्ञान को भी दांतों तले उंगली दबा लेनी पड़ती है। 'ऋग्वेद' में वर्णित हिरण्याण्ड, वैश्वावर ज्वालाओं तथा अनहद नाद को आज विज्ञान भी स्वीकार करता दिखाई दे रहा है। प्रजापित के गर्भपातों की बात मानव विज्ञान के लिए अब कल्पना नहीं रह गई है। डार्विन के विकासवाद (विष्णुदशावतार) तथा परमाणु सिद्धांत (वैशेविक दर्शन) का उल्लेख भी प्रारम्भिक रूप में हमारे वाङ्यम में मिल जाएगा।"

लेखक का यह वक्तव्य भारतीय संस्कृति उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव संस्कृति है। यह लेखक की कपोल कल्पना नहीं है बल्कि शाश्वत सत्य है। भारतीय प्रायद्वीप का भू-भाग एक ऐसा मानक स्थल रहा जहां मानव ने अपनी पहली यात्रा प्रारंभ की हो। भले ही हम आदिमानव के प्रमाण अभी एकत्रित न कर सकें हों तथा ये साक्ष्य बंगाल की खाड़ी या अरब सागर में जा चुके हों किंतु यहां की आदर्श जलवायु इसकी प्राचीनता का बोध कराती है। साथ ही यहां प्राचीन काल में उत्पन्न वैज्ञानिक विचार व दर्शन यूरोप अमेरिका के आज के सिद्धांत हमारी मान्यताओं को बल प्रदान करते है। 'ऋग्वेद' में वर्णित अनहद नाद की पुष्टि आज यूरोप के महान आंतरिक्ष विज्ञानी स्टीफन हाकिंस भी बिग-बैंग की अपनी थ्योरी से पुष्टि करते हैं।

यह पुस्तक लेखक के बीस-पच्चीस वर्षों के अथक परिश्रम का परिणाम है जिसमें आज के शोध पर आधारित तथ्यों को पुस्तक में रखा गया है। लेखक ने पुस्तक का प्रारंभ अतीत के अन्वेषण से किया है जिसमें उसने ऋग्वेद में वर्णित स्थान, पात्र, काल आदि का निर्धारण शोधों के आधार पर तथ्यपरक देने का प्रयास किया है। 'सृष्टि की उत्पत्ति' में मानव अस्तित्व की रक्षा में उनकी संघर्ष गाथा है। पुस्तक यहां से प्रारंभ होकर बारह अध्याय पूरा करते हुए महाभारत युग में समाप्त हो जाती है। यद्यपि पुस्तक महाभारत युग में समाप्त तो होती है किन्तु इसके पहल में जैन, बौद्ध, वैष्णव शैव सम्प्रदायों व इस्लाम का भी वर्णन आता है। पुस्तक में जहां अनेकों वैदिक पौराणिक संदर्भ सूक्तियों व कथाओं का आधिक्य है वहां विद्वानों, विशेषज्ञों की राय भी दर्शायी गयी है। पुस्तक में अतिश्योक्ति के स्थान पर समयक् चिन्तन व तथ्य परक सिद्धांतों व मान्यताओं को दर्शाया गया है। प्रामाणिक साक्ष्यों से इस बात को सिद्ध किया गया है कि भारतीय संस्कृति में विकास की प्रक्रिया उसी प्रकार संघर्षों का परिणाम रही जिस प्रकार विश्व के अन्य भागों की संस्कृतियों ने जन्म लिया। यह धरती मानव सृष्टि के साथ-साथ उन मानवों की साक्षी रही और अपने गर्त में अनेक गाथाएं छिपाए रही। यहां का मानव आकाश से उतरा महामानव नहीं था बल्कि यूनान, मिस्र, मेसोपोरामिया की भांति यहां के लोग भी अपनी संस्कृति के संरक्षण में संलग्न रहे और भिन्न-भिन्न कालों में उनकी मान्यताएं बदलती रहीं। वैदिक आख्यान की अमूल्य सूक्तियां उन्हीं संघर्षों की देन है।

पुस्तक की भाषा सरल है। लेखक का कठिन परिश्रम पाठकों को नए-नए तथ्यों से परिमित कराता है और वह बधाई का पात्र है। हिन्दी जगत में उसका स्वागत किया जाना चाहिये। इससे जुड़े विद्यार्थियों को बहुत सहायता मिलेगी।

—अफरोज अहमद खान

राधा न रूक्मिणी

[पुस्तकः राधा न रूक्मिणी, लेखकः बाला शर्मा, प्रकाशकः वातायन प्रकाशन, 73, बनारसी दास स्टेट, लखनऊ रोड, दिल्ली - 54, मूल्यः 48 रुपए]

बाला शर्मा का 'राधा न रूक्मिणी' शीर्षक से प्रकाशित उपन्यास स्त्री-पुरुष के इर्द-गिर्द घूमता है। जिसमें मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को प्रतिबिम्बित किया गया है। इसमें ऐसी नारियों-पुरुषों का चित्रण है जिन्हें अपने जीवन में कुछ अपेक्षाएं होती हैं परन्तु वे अपरिपूर्ण रहती हैं। 'राधा न रुक्मिणी' की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है, जिसे समझ पाना अधिक कठिन नहीं है। यह एक साधारण एवं निष्फल प्रेम-कथा है। करण जिसने जीवन भर विष पिया, उसे न रूक्मिणी मिली और न ही वह विभा से प्रेम कर सका। रूक्मिणी ने सारा कष्ट भोगा था। इसी ऊहापोह में सारा जीवन व्यतीत हो गया।

आज के युग में समाज एवं व्यक्तिगत जीवन संबंधी विभिन्न परिस्थितियों में संघर्षशील नारी का जीवन-चित्रण करना ही इस उपन्यास की विशेषता है। समाज की बुराइयों पर चोट करती हुई लेखिका का कथन है कि पुरुष जाति का परस्पर बैर तो स्त्री को ही झेलना पड़ता है। पचास के ऊपर चौधरी नामधारी उस पुरुष की पत्नी के आसन पर 16 वर्ष की रूक्मिणी को बैठाकर जो कांटों की सेज उसके पिता और भाइयों ने उसके लिए सहेजे थे, उसके शूल तो अन्तिम घड़ियों तक उसे झेलने पड़े थे। एक जमीन के मुकदमें में रजपुरे के चौधरी ने रूक्मिणी के बापू की मदद की थी। इसी अहसान के बदले में रूक्मिणी का हाथ मांग लिया। रूक्मिणी ने जिस समाज में जन्म लिया, वहां की हर नियम परिपाटी से वह परिचित थी कि स्त्रियों को एक शब्द भी बोल सकने का अधिकार नहीं होता। गाय, बैल, भेड़, बकरी की पंक्ति में बंधी हर स्त्री परिवार की संपत्ति भर बनकर जी सके तो वह उसका स्वयं के प्रति उपकार ही तो है।

यह कैसी विडम्बना है। यह पुरुष प्रधान संसार जो, स्त्री के बिना चल नहीं सकता तथा जिसकी जन्मदात्री वंश बेल चलाने वाली तो स्त्री ही होती है, तब फिर पुरुष ही उच्च श्रेणी में क्यों गिना जाता है?

यह उपन्यास आम जीवन से जुड़ता हुआ गहरी अनुभूतियों की परछाइयों की भी छाप छोड़ता है। इसकी भाषा शैली सरल और पाठक को भी अपने साथ इस तरह बांधे रखती है कि वह हर क्षण उपन्यास में आगे की घटनाओं को जानने के लिए तत्पर रहता है।

—शान्ति कुमार स्याल

पृष्ठ 60 का शेषांश

वर्ष-4, अंक-2, 1995, पृष्ठ-20, संयुक्त राज्य अमेरिका।

10. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन की अग्रणी हिंदी सेवीः ऊ फू खुन शांतिदूत, नवबंर-दिसबंर, 1995, पृष्ठ-11, नार्वे।

11. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन के हिंदी विद्वानः मा मङराङ, दैनिक हिंदुस्तान रविवासरीय, 17 मार्च, 1996 ई०, पृष्ठ 3, नई दिल्ली, भारत।

12. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन में अनूदित बौद्धेतर संस्कृत साहित्य, इंद्रप्रस्थ भारती, दिल्ली, जनवरी-मार्च, 1996, पृष्ठ 50-56।

13. सिंहल, ओम्प्रकाशः हिंदी के पहले चीनी शिक्षकः प्रो० यिन होंग युएन, हिंदी की विश्वयात्रा, संपादक डा० सुरेश ऋतुपर्ण, पृष्ठ 177-180, 1996।

14. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन में हिंदीः एक अंतर्यात्रा, हिन्दी की विश्व यात्रा, संपादक डा० सुरेश ऋतुपर्ण, पृष्ठ 93-97, 1996 ई०।

15. सिंहल, ओम्प्रकाशः चीन में हिंदी पत्रकारिताः नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, भारत, 26 फरवरी, सन् 1994।

कार्यशालाएं

प्रमाण तथा प्रायोगिक स्थापना, चांदीपुर (रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन)

इस कार्यालय में दिनांक 17-6-96 से 21-6-96 तक हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला का उद्घाटन मुख्य कमांडेंट तथा निदेशक ए०बी०एम०एन०एन० शाह द्वारा किया गया। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि सरकारी कामकाज में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को सरल रूप से अपनाने में यह कार्यशाला एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। कार्यशाला में 40 अधिकारियों / कर्मचारियों ने भाग लिया।

कार्यशाला का समापन समारोह दिनांक 21-6-96 को मनाया गया। इस अवसर पर सर्वश्रेष्ठ प्रतियोगियों को पुरस्कृत भी किया गया।

भारतीय हैवी प्लेट एंड वैसल्स लिमिटेड

भारतीय हैवी प्लेट एंड वैसल्स लिमिटेड, विशाखापट्टनम में दिनांक 23 व 24 जुलाई, 1996 को 2 दिन की हिंदी कार्यशाला आयोजित की गई। कार्यशाला का उद्घाटन उत्पादन प्रभाग के मुख्य प्रबंधक श्री ए०एस०आर०पी०वी०एस० राजन द्वारा किया गया। उन्होंने कहा कि संस्था में हिंदी, हिंदी टंकण एवं हिंदी आलेखन में प्रशिक्षण से संबंधित कार्य के लिए एक चरणबद्ध कार्यक्रम बनाया जा रहा है, जिसमें 2000 ई० तक सभी कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष एवं मानव संसाधन प्रभाग के महाप्रबंधक श्री जी०वी० राममूर्ति ने कहा कि भारत के विशाल भूखण्ड में विविधताओं के बावजूद देश के पुरातन, सांस्कृतिक, धार्मिक परम्पराओं के जरिए विभिन्ता में एकता पैदा करने में हिंदी भाषा का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

कार्यशाला में राजभाषा हिंदी का प्रयोग राजभाषा अधिनियम एवं नियम, हिंदी पत्राचार की पद्धतियां आदि विषयों पर व्याख्यान दिए गए।

हिंदुस्तान लेटेक्स लिमिटेड, तिरूवनंतपुरम

हिंदुस्तान लेटेक्स लिमिटेड में हिंदी में अधिकाधिक काम करने के लिए कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिए दिनांक 8 अप्रैल, 1996 से 11 अप्रैल, 1996 तक 4 दिवसीय कार्यशाला आयोजित की गई। कार्यशाला का उद्घाटन केरल विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग के अपर निदेशक डा० एम०ए०करीम ने किया। उद्घाटन समारोह में महाप्रबंधक एवं कंपनी सचिव श्री एस० हरिहरण ने कार्यशालाओं के महत्व पर प्रकाश डाला और कहा कि हिंदुस्तान लेटेक्स लिमिटेड के अधिकारी एवं कर्मचारी हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के संबंध में पर्याप्त रुचि ले रहे हैं।

डा० एम०ए० करीम ने कहा कि हिंदी सभ्यता एवं संस्कृति की धड़कनों से सम्पन्न एक आधुनिक भाषा है। अतः इसका प्रयोग गर्व के साथ किया जाना चाहिए। कार्यशाला में राजभाषा अधिनियम और राजभाषा नियम, हिंदी में पत्राचार, हिंदी-व्याकरण, हिंदी टिप्पण आदि विविध विषयों पर व्याख्यान दिए गए तथा कर्मचारियों से अभ्यास भी करवाया गया।

हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड, राजपुरा, दरीबाखान

हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड की इकाई राजपुरा दरीबाखान के राजभाषा विभाग के तत्वावधान में राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं कार्यालीन कामकाज में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करने का व्यावहारिक प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से दिनांक 23-7-96 से 24-7-96 तक दो दिवसीय हिंदी कार्यशाला / पुनश्चर्या प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया।

कार्यशाला में राजभाषा अधिकारी डा० जय प्रकाश ने राजभाषा अधिनियम, राजभाषा नियम, हिंदी वर्तनी का मानकीकरण, टिप्पण लेखन आदि के बारे में कर्मचारियों को बताया। मुख्य प्रबंधक (तकनीकी सेवाएं) एवं अध्यक्ष राजभाषा कार्यान्वयन समिति श्री विरेन्द्र गौड़िया ने कहा कि संवैधानिक व्यवस्थाओं के तहत हिंदी संघ की राजभाषा है। अतः हमें हिंदी में अधिकाधिक कार्यालयीन कार्य करने एवं आम बोलचाल में हिंदी का प्रयोग करने की मानसिकता बनानी चाहिए।

आन्ध्रा बैंक, निजामाबाद

आन्ध्रा बैंक, निजामाबाद के तत्वावधान में 10 व 11 जुलाई को निजामाबाद में सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों के अधिकारियों / कर्मचारियों के लिए 2 दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला का उद्घाटन आन्ध्रा बैंक के क्षेत्रीय प्रबंधक श्री टी० उपेन्द्र रेड्डी ने किया। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी यद्यपि 250 साल से हमारे देश में विद्यमान है, फिर भी यह आज तक जन सामान्य की भाषा नहीं बन सकी है।

कार्यशाला में प्रतिभागियों को भारत सरकार की राजभाषा नीति, हिंदी व्याकरण की जानकारी दी गई और हिंदी में टिप्पण आलेखन का अभ्यास भी कराया गया। प्रतियोगियों में प्रतिस्पर्धा की भावना जाग्रत करने के लिए वस्तुनिष्ठ प्रतियोगिता भी आयोजित की गई। इस प्रतियोगिता में प्रथम तीन स्थान प्राप्त करने वाले प्रतियोगियों को पुरस्कार दिए गए।

परमाणु ऊर्जा विभाग, भारी पानी संयंत्र, तूतिकोरिन

परमाणु ऊर्जा विभाग, भारी पानी संयत्र तूतिकोरिन में दिनांक 24 व 25 जून, 1996 को हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला का उद्घाटन श्री डी० एस० लांबा महाप्रबंधक ने किया। उन्होंने कहा कि प्रेसों में भी राजभाषा हिंदी का प्रचार और कार्यान्वयन पहले की अपेक्षा अधिक हो रहा है। कार्यशाला में हिंदी भाषा का व्याकरण, आलेखन, टिप्पण, अनुवाद, राजभाषा अधिनियम, 1963, राजभाषा नियम 1976, हिंदी शिक्षण योजना प्रोत्साहन आदि विषयों पर अधिकारियों / कर्मचारियों को विस्तृत जानकारी / प्रशिक्षण दिया गया। इस अवसर पर राजभाषा से संबंधित प्रश्नोत्तरी का भी आयोजन किया गया और सत्र के अंत में व्याख्यान दिए गए। विविध विषयों पर आधारित सामूहिक चर्चा भी की गई।

भिलाई इस्पात संयंत्र

इस्पात भवन सभागार में दिनांक 11 जून, 1996 को संपर्क, प्रशासन व आतिथ्य विभाग के अधीन विभिन्न कार्यालयों के कार्मिकों व अधिकारियों के लिए राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। मंगलदीप प्रज्वलन के बाद संयंत्र के महाप्रबंधक (का० व प्रशा०) श्री जी० उपाध्याय ने अपने संबोधन में कहा कि यद्यपि यह विभाग उत्पादन से सीधे नहीं जुड़ा है फिर भी संयंत्र की छवि को बनाने में इस विभाग की भूमिका महत्वपूर्ण है। संयंत्र से जुड़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति/संगठन का वास्ता पहले इसी विभाग से पड़ता है। अतः यह बहुत ही जरूरी है कि अपने आचरण व्यवहार तथा भाषा से उसे प्रभावित कर संयंत्र की बेहतर छवि को बनाने में अपना योगदान दें। हिंदी हमारी पहचान है। संयंत्र के भीतर और बाहर, कार्य स्थल से कार्यालय तक हमारे संवाद, संपर्क व सम्प्रेषण की भाषा हिंदी है। लिखित रूप में भी इसके प्रयोग को हमें कारगर रूप से लागू करना है।

इसके पूर्व वरिष्ठ प्रबंधक (संपर्क) श्री दिलीप नन्नोरे ने समस्त प्रतिभागियों तथा अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा कि आंतरिक व बाह्य ग्राहकों की संतुष्टि हेतु हमें अपनी भाषा हिंदी का ही प्रयोग करना है। विभाग के लिए हिंदी का प्रयोग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

प्रमुख (संपर्क, प्रशासन व आतिथ्य) तथा राजभाषा अधिकारी श्री विनय कुमार चतुर्वेदी ने आयोजन की अध्यक्षता करते हुए अपने उद्‌बोधन में कहा कि हिंदी में काम करना अपेक्षाकृत सरल है। सार्थक व सटीक संवाद हिंदी में सरलतापूर्वक संभव है। जन आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु हमें हिंदी में ही व्यवहार करने को प्राथमिकता देना चाहिए। संपर्क, प्रशासन व आतिथ्य संगठन के अधीन अधिकांश विभागों में आज अधिकतम काम हिंदी में ही किया जा रहा है, फिर भी उत्पादन के समान ही हिंदी प्रयोग में भी सर्वोच्च बनने के लिए उन्होंने एकजुट प्रयासों की आवश्यकता प्रतिपादित की।

भारतीय पेट्रोलियम संस्थान

संस्थान की राजभाषा यूनिट द्वारा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली के सौजन्य से दिनांक 25—27 जून, 1996 तक एक तीन दिवसीय प्रशासनिक/तकनीकी शब्दावली कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसमें संस्थान के 200 से अधिक अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया। इस अवसर पर आयोग के अध्यक्ष प्रो० प्रेम स्वरूप सकलानी, सचिव, डॉ हरीश कुमार, सहायक निदेशक वीर सिंह आर्य, आयोग के पूर्व सचिव देवेन्द्र दत्त नौटियाल, शिक्षा अधिकारी श्री प्रेमा नंद चन्दोला के अतिरिक्त भारत के प्रमुख विद्वान-डॉ गंगा प्रसाद विमल, निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, प्रो० केदार नाथ सिंह, प्रोफेसर (हिन्दी) जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, प्रमुख हिन्दी व बर्मी साहित्कार चन्द्र प्रकाश प्रभाकर, हिन्दी अकादमी के पूर्व सचिव डा० नारायण दत्त पालीवाल तथा प्रमुख साहित्यकार एवं व्यंग्यकार डॉ शेर जंग गर्ग तथा डा॰ राय जैसे अन्य कई गण्यमान्य विद्वान शब्दावली विशेषज्ञ एवं वक्ता के रूप में उपस्थित थे।

कार्यशाला का उद्‌घाटन संस्थान के कार्यकारी निदेशक डॉ वेंकट राव शिष्ट तथा आयोग के अध्यक्ष प्रो० पी० एस० सकलानी ने दीप प्रज्वलित कर किया। आधार व्याख्यान देते हुए अध्यक्ष प्रो सकलानी ने कहा कि किसी भी विषय का मौलिक चिंतन मातृभाषा में ही संभव है। उन्होंने इस बात पर बेहद चिंता जताई कि स्वाधीनता के बाद देश में वैज्ञानिक शोध में अंग्रेजी भाषा को ही माध्यम बनाकर अधिक कार्य किये गये। विज्ञान की प्रगति के लिए मातृभाषा को अपनाना जरूरी है। जिन देशों ने वैज्ञानिक तरक्की की है उन्होंने वैज्ञानिक शोध अपनी मातृभाषा में ही लिखे हैं। उन्होंने इस बात पर भी चिंता जताई कि देश को आजादी मिलने के बाद वैज्ञानिक चिंतन अंग्रेजी भाषा में ही अधिक हुआ है जिस वजह से कोई बड़ा शोध करने में भारतीय वैज्ञानिक असफल रहे। इस संदर्भ में प्रो० सकलानी ने कहा कि आजादी से पहले जगदीश चन्द्र बोस, होमी जहांगीर भाभा जैसे वैज्ञानिक देश ने दिये जिनका मौलिक चिंतन का आधार भारतीय भाषा रहा। उन्होंने मौलिक चिंतन के लिए हिंदी भाषा का विकास जरूरी बताया। विज्ञान में मौलिक चिंतन के अभाव पर बोलते हुए प्रो० सकलानी ने कहा कि अभी भी हिन्दी की संपूर्ण शब्दावली उपलब्ध नहीं और जो शब्दावली चयनित की जाती है उसके शब्द दुरूह पाये गये हैं। उन्होंने अंग्रेजी शब्दों के लिए सरल हिन्दी शब्दावली के प्रयोग पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि मौलिक चिंतन मातृभाषा में ही बेहतर ढंग से हो सकता है। यह बात अलग है कि भारतीय वैज्ञानिक शोध कार्यों के दौरान पाश्चात्य भाषा का सहारा लेते हैं। अंग्रेजी भाषा का आतंक समाप्त करने के लिए बहुभाषी क्षमता का विकास करना होगा। साथ ही शोध अपनी मूल भाषा में तैयार करना होगा।

अन्य प्रमुख वक्ता प्रो० केदार नाथ सिंह ने कहा कि हिंदी प्रेमियों को नए शब्दों का निर्माण कर अपने ज्ञान की सीमा में वृद्धि करनी चाहिए। उन्होंने कहा कि शब्दावली आयोग ने जो शब्दावली बनाई उसे लागू किया गया है तो इसकी जांच की जानी चाहिए। हिन्दी बहुत दुष्कर व जटिल नहीं है। जरूरत सिर्फ इच्छा शक्ति की है। आल इंडिया रेडियो को हिंदी नामकरण आकाशवाणी करने पर काफी विरोध हुआ था, लेकिन सरकार की इच्छा इसे बनाए रखने की थी। इसलिए इसे स्वीकार कर लिया गया। हिंदी देश की सेतु भाषा है और विदेशी कंपनियां भी इसकी ओर आकृष्ट हो रही हैं जिससे वे भारत में कामयाबी हासिल कर सकेंगी।

प्रमुख हिन्दी बर्मी साहित्यकार चन्द्र प्रकाश ने कहा कि अपनी मातृभाषा के प्रति प्रत्येक व्यक्ति को लगाव रखना चाहिए। अन्य भाषा सीखने से पूर्व अपनी भाषा पर अधिकार होना चाहिए। यह सीख विद्यार्थी जीवन में उन्हें नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने बर्मा में दी थी, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने अनुवाद के क्षेत्र में विशद कार्य किया।

डॉ गंगा प्रसाद विमल ने कहा कि देश में एक तरफ जहां हिंदी की उपेक्षा हो रही हैं वहीं बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत में अपने पांव पसारने के लिए हिंदी का सहारा ले रही हैं। वे ऐसे लोगों को नियुक्ति दे रही है जो हिंदी जानते हैं। यह वक्त हिंदी समेत देश की सभी भाषाओं को प्रोत्साहित करने का है जिससे देश विखंडित न हो। देश में विदेशी भाषा को स्वीकार किया जा सकता है तो देश की प्रांतीय भाषाओं को क्यों नहीं? दुनियां के सभी विकसित देशों ने अपनी ही भाषा को प्रोत्साहित किया है तथा उसी के सहारे विकास की दौड़ में आगे बढ़े। आखिर उसकी संस्कृति विकसित

देशों के समूह यूरोप की तुलना में कहीं श्रेष्ठ है तथा दुनियां को चकित करने वाली है। ताजा भाषा रिपोर्ट के अनुसार देश में 4562 भाषाएं एवं बोलियां हैं। हिंदी का प्रयोग 71 करोड़ लोग करते हैं। इस तरह चीनी भाषा के बाद हिंदी बोलने वालों का स्थान दुनियां में दूसरे स्थान पर आने वाला है। उन्होंने कहा कि संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा में माध्यम के तौर पर अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त कर दी जाए तो अंग्रेजी माध्यम के अनेक स्कूल बंद होने के कगार पर पहुंच जाएंगे।

कार्यशाला के संयोजक एवं युवा साहित्यकार डॉ चमोला ने कहा कि भारतीय पेट्रोलियम संस्थान को भारत के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों को आमंत्रित करने तथा निकटता से उनका सान्निध्य प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। इसी क्रम में "विकल्प" इस बात का प्रमाण है कि एक वैज्ञानिक संस्थान ने किस प्रकार से देश के प्रख्यात रचनाकर्मियों के साथ जुड़कर संस्थान एवं राजभाषा की गरिमा को बनाए रखा है। उन्होंने कहा कि यदि मन में कुछ कर गुजरने की ललक हो तो क्या कुछ संभव नहीं है। अंग्रेजी हमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक देश से दूसरे देश तक अवश्य जोड़ सकती है। लेकिन जीवन, जमीन व जन से जुड़ने के लिए हमें हिन्दी व भारतीय भाषाओं का ही सहारा लेना होगा। हमें कथनी और करनी के भेद में समानता लाकर प्रयोग व व्यवहार के क्षेत्र में पदार्पण कर एक मिशन के रूप में हिन्दी व राष्ट्रभाषा की सेवा करनी है। आज आवश्यकता है समर्पण की व बेहिचक दैनिक जीवन में खुलकर हिन्दी के प्रयोग की। डॉ चमोला ने कार्यशाला का परिचय देते हुए कहा कि शब्द एक बड़ा यात्री होता है। शब्द ब्रह्म है। संभावतः जब कुछ भी न रहा होगा, तब भी शब्द रहा होगा और जब कुछ भी न रहेगा, तब भी शब्द होगा। उन्होंने आगे कहा कि राजभाषा हिन्दी सबसे सबल व गौरवपूर्ण भाषा है। यदि निर्बल व असहाय है तो हमारी मानसिकता। हिन्दी प्रयोग व व्यवहार की भाषा है जितना इसे प्रयोग व व्यवहार में लाएंगे उतनी ही भाषा व कठिनाइयों की दीवारें दूर होती जायेंगी। अतः हमें एक विस्तृत एवं सृजनशील सोच की आवश्यकता है।

प्रसिद्ध व्यंगकार डॉ शेरजंग गर्ग ने कहा कि ऐसा कोई नहीं है जो हिंदी नहीं जानता। हमें छोटी-छोटी बातों से ही हिंदी के प्रयोग व व्यवहार को आगे बढ़ाना है। हमें हिंदी में मुखातिब करना भी सीखना चाहिए। हिंदी का निरंतर प्रयोग करना ही हिंदी का प्रशिक्षण है। हमें दूसरों से नहीं बल्कि स्वयं अपने प्रयोग व व्यवहार से ही हिन्दी के कार्यान्वयन में सहयोग एवं वृद्धि संभव करनी है। इस संबंध में उन्होंने अपने कई निजी एवं अनुभूत अनुभव भी सुनाये।

हिंदी अकादमी के पूर्व सचिव हिंदी के विशेषज्ञ डॉ नारायण दत्त पालीवाल ने पत्र व्यवहार, टिप्पणी एवं आलेखन तथा तकनीकी शब्दों के प्रयोग व अन्य कार्यालयीन व्यवहार पर भी प्रकाश डाला। साथ ही उन्होंने कई प्रकार की हिंदी विषयक भ्रांत धारणाओं का भी समाधन किया।

आयोग के सचिव डॉ हरीश कुमार ने आयोग के गठन के इतिहास और शब्दावली निर्माण तथा सौंपे गए कार्यों का उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि पहला कार्य बहुत हद तक पूरा हो चुका है किन्तु शब्दनिर्माण निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और विषयवार शब्दावलियों का प्रकाशन जारी है। दूसरे उद्देश्य को पूरा करने के लिए साहित्यिक पत्रिकाएं आदि प्रकशित किए जाती हैं। इस प्रकार अब तकनीकी व वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा के लिए माध्यम परिवर्तन हेतु भी आयोग अब सक्षम है।

आयोग के पूर्व सचिव देवेन्द्र दत्त नौटियाल ने अपने वक्तव्य में शब्दावली बनाने की आवश्यकता और उसकी प्रक्रिया की सूक्ष्मताओं का विवेचन किया और इस सिलसिले में विभिन्न मत-मतांतरों के चलते आयोग के समन्वयवादी दृष्टिकोण को रेखांकित किया। उन्होंने तकनीकी शब्द की परिभाषा देते हुए बताया कि इनका उद्भव शब्दों की सूक्ष्म अर्थच्छायाओं पर ध्यान देने से होता है। संस्थान के प्रशासन नियंत्रक श्री खुर्शीद अहमद कुरैशी ने प्रशासन में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के अपने प्रयास के उदाहरण दिए तथा धन्यवाद प्रस्ताव भी ज्ञापित किया।

प्रस्तुतिः डॉ दिनेश चमोला

कर्मचारी राज्य बीमा निगम

कर्मचारी राज्य बीमा निगम के उत्तरी जोन स्थित निगम कार्यालयों के अधिकारियों को हिन्दी का व्यावहारिक प्रशिक्षण देने के लिए 10.6.96 से 14.6.96 तक क्षेत्रीय कार्यालय, दिल्ली में हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया। कार्यशाला का उद्घाटन निदेशक (वसूली) तथा निगम कार्यालयों में राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के प्रभारी अधिकारी, श्री बालकृष्ण गुप्त ने किया। श्री गुप्त ने अपने उद्घाटन भाषण में अपनी भाषा की सहज प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए इस बात पर बल दिया कि किसी देश की स्वायत्तता के लिए अपना विधान, अपना झंडा और अपनी भाषा आवश्यक है। उन्होंने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा कि कोई भी व्यक्ति अपनी भाषा से अपनी पहचान स्थापित करते हैं और अपनी भाषा के महत्व को उस समय अधिक कारगर ढंग से समझते हैं जब वे विदेश में अथवा अपनी भाषा से इतर भाषा-भाषी व्यक्तियों के साथ सम्पर्क करते हैं। उन्होंने उद्घाटन करते हुए यह भी कहा कि अब समय आ गया है कि हमें अपनी अस्मिता की पहचान करनी चाहिए और अपनी भाषा को तहेदिल से स्वीकार करना चाहिए। कार्यशाला में प्रतिभागियों को विविध विषयों की जानकारी दी गई। कार्यशाला के समापन के अवसर पर सभी अधिकारियों द्वारा कार्यशाला के आयोजन की अत्यन्त सराहना की गई।

दूरदर्शन केन्द्र, भोपाल

दूरदर्शन केन्द्र, भोपाल की दैनिक गतिविधियों में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को सुनिश्चित करने तथा अधिकारियों/कर्मचारियों में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग के प्रति अधिकाधिक जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से दिनांक 11 जून 96 से 12 जून 96 तक (दो दिवसीय) हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। हिन्दी कार्यशाला का उद्घाटन वरिष्ठ पत्रकार श्री महेश श्रीवास्तव, संपादक, दैनिक भास्कर भोपाल ने किया। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि हिन्दी इस देश की राजभाषा है। अतः सरकार के सभी अधिकारियों/कर्मचारियों को पूरी निष्ठा एवं समर्पण भाव से अपना सरकारी कामकाज हिन्दी में करना चाहिए। उन्होंने बताया कि अब हिन्दी समूचे भारत में राजभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा के दायित्व का निर्वहन कर रही है। वह आज इस देश के सामाजिक दायित्व के निर्वहन के प्रति भी पूरी तरह से सजग है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए, महासचिव, अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन, भोपाल के श्री सतीश चतुर्वेदी ने कहा कि पूरे देश में हिन्दी संपर्क भाषा बने। इसके लिए प्रत्येक को मातृभाषा से अनुराग रखते हुए हिन्दी भाषा को जानने, संवाद करने तथा कार्यालय में कार्य करने की मानसिकता बनानी चाहिए। उन्होंने बताया कि हिन्दी अंब सभी प्रादेशिक भाषाओं से ऊर्जा लेकर एवं सशक्त और सार्वदेशिक भाषा के स्वरूप के रूप में उभर रही है।

कार्यक्रम के उद्देश्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए दूरदर्शन केन्द्र, भोपाल के उप-निदेशक श्री एन० एन० शर्मा (चंचल) ने कहा कि मीडिया ने हिन्दी को पूरे देश के संवाद माध्यम बनाने का भरसक प्रयास किया है। उन्होंने बताया कि इस दिशा में मुद्रित शब्द, उच्चारित शब्द, रेडियों, टेलीविजन और अखबारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

कार्यक्रम में उपस्थित अतिथियों का स्वागत केन्द्र निदेशक श्री लीलाधर मंडलोई ने किया। दूरदर्शन केन्द्र, भोपाल के अधीक्षण अभियन्ता श्री एस०आर० चौहान ने अतिथियों का आभार प्रकट किया तथा कार्यक्रम का संचालन हिन्दी अधिकारी श्री रामनिवास शुक्ल ने किया।

दो दिवसीय हिन्दी कार्यशाला में श्री प्रकाश बरतूनिया, प्रबंधक (हिन्दी) औद्योगिक विकास बैंक, भोपाल ने "पत्रों के प्रकार और उनके स्वरूप विषय पर श्री जवाहर कर्नावट, प्रबंधक (हिन्दी) बैंक ऑफ बड़ौदा, भोपाल ने "अंग्रेजी से हिन्दी अनुबाद-समस्याएं और समाधान" विषय पर तथा श्री रामनिवास शुक्ल, हिन्दी अधिकारी ने "संघ की राजभाषा नीति एवं उसका कार्यान्वयन" विषय पर अपने विचार प्रकट कर अधिकारियों/कर्मचारियों का मार्गदर्शन किया।

पूर्वी बेस कर्मशाला (ग्रेफ), द्वारा 99 सेना डाकघर

पूर्वी बेस कर्मशाला (ग्रेफ) में दिनांक 02 जनवरी 1996 से 05 जनवरी 1996 तक चार दिवीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसका संचालन श्री सईद अख्तर, हिन्दी अनुवादक द्वारा किया गया। कार्यशाला में टिप्पणी आलेखन, प्रारूप लेखन, अर्ध सरकारी पत्र, प्रार्थना-पत्र के अतिरिक्त बहुधा प्रयोग में लाये जाने वाले हिन्दी-अंग्रेजी वाक्यों आदि के बारे में बताया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें राजभाषा के बारे में संवैधानिक उपबन्ध, सांविधिक स्थिति, राजभाषा अधिनियम, राजभाषा नियम संबंधी जानकारी भी दी गयी। कार्यशाला के अन्तिम दिन एक परीक्षा का आयोजन किया गया जिसमें प्रथम, द्वितीय, और तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले प्रशिक्षणार्थियों को नकद पुरस्कार तथा प्रमाण-पत्र कमान्डर पूर्वी बेस कर्मशाला द्वारा प्रदान किये गये।

इस अवसर पर कमान्डर पू०बे०क० (ग्रेफ) ने हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि राजभाषा का अधिकाधिक प्रयोग संगठन एवं पू०बे०क० के उद्देश्यों को अधिक तेजी से पूरा करने में सहायक सिद्ध होगा। उन्होंने आगे कहा कि जिन कार्मिकों को हिन्दी कार्यशाला में प्रशिक्षण प्राप्त होता है उन्हें अपना कार्य हिन्दी में ही करना चाहिए।

हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड

हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड की इकाई राजपुरा दरीबा खान के राजभाषा विभाग के तत्वावधान में राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं कार्यालयीन काम-काज में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करने का व्यावहारिक ज्ञान देने के उद्देश्य से पूर्व में हिन्दी कार्यशाला में प्रशिक्षित कर्मचारियों के लिए दिनांक 27.6.96 से 29.6.96 तक "तीन दिवसीय हिन्दी पुनश्चर्या प्रशिक्षण कार्यक्रम" का आयोजन किया गया।

पुनश्चर्या प्रशिक्षण में क०राजभाषा अधिकारी डा० जयप्रकाश शाकद्विपीय ने राजभाषा से संबंधित संवैधानिक व्यवस्थाओं, राजभाषा अधिनियम, नियम, आमतौर पर की जाने वाली अशुद्वियों एवं उनके शुद्ध रूपों, हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण, विराम चिह्न पत्राचार, प्रोत्साहन योजनाओं आदि के बारे में प्रशिक्षण दिया एवं तार प्रेषण व टिप्पण लेखन का व्यावहारिक अभ्यास करवाया।

आमन्त्रित विद्वान "सूर्यमल्ल मिश्रण पुरस्कार" प्राप्त डा० जयप्रकाश पण्ड्या "ज्योतिपुंज", कार्यक्रम अधिकारी-आकाशवाणी, उदयपुर ने राजभाषा, राष्ट्रभाषा हिन्दी में अधिकाधिक कार्यालयीन कार्य करने एवं आमबोलचाल के शब्दों का प्रयोग कर सरल हिन्दी लिखने की बात कही।

समापन सत्र में मुख्य प्रबन्धक (तकनीकी सेवाएं) एवं अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति श्री वीरेन्द्र बोर्डिया ने सभी प्रतिभागियों को कार्यशाला में बताई गई बातों को कार्यालयीन काम-काज में सर्वाधिक प्रयोग कर इकाई के पत्राचार में वृद्धि करने के साथ ही सरकार की राजभाषा नीति में महत्वपूर्ण योगदान देने का आह्वान किया।

* जब तक आपके पास राष्ट्रभाषा नहीं, आपका कोई राष्ट्र भी नहीं।

—मुंशी प्रेमचंद

* किसी दूसरी भाषा को जानना सम्मान की बात है, लेकिन दूसरी भाषा को अपनी राष्ट्रभाषा के बराबर दर्जा देना शर्म की बात है।

—महादेवी वर्मा

अखिल भारतीय कवि सम्मेलन

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा सिरी ऑडिटोरियम, नई दिल्ली में दिनांक 1 जून, 1996 को अखिल भारतीय कवि सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें 2000 से अधिक काव्य प्रेमियों ने देश के लब्ध प्रतिष्ठ कवियों की रचनाएं तन्मय होकर सुनी। कवि सम्मेलन की अध्क्षता ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कवि रमानाथ अवस्थी ने की। कवि सम्मेलन का सफल संचालन अपनी हाजिर जवाबी के साथ साहित्यिक शैली में श्री शिव ओम अम्बर, फर्रुखाबाद ने किया।

आरंभ में डा० विजय केलकर, सचिव, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय ने मां सरस्वती को माल्यार्पण कर दीप प्रज्वलित किया। प्रमुख अतिथि के रूप पधारे डा० केलकर ने साहित्य, संगीत और कला की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा कि इनके बिना कोई भी समाज कोरा रह जाता है। मराठी के महान संत कवि श्री ज्ञानेश्वर द्वारा रचित पसायदान में से उद्धरण देते हुए कवि हृदय की उदात्त कल्पना और विश्व कल्याण की भावना से डा० केलकर नतमस्तक हो गए।

कवि सम्मेलन का शुभारंभ **श्रीमती कीर्ति काले द्वारा वन्दना गीत से** हुआ जिनकी सुरीली आवाज़ और शब्द पुष्पों की माला ने वीणावादिनी, विद्यादायिनी सरस्वती का पूजन किया।

इसके उपरांत **श्री सोम ठाकुर ने हिन्दी वन्दना का गीत गाया:—**

करते हैं तनमन से वन्दन
जनगण मन की अभिलाषा का।

काव्य प्रेमियों ने इस गीत को बहुत सराहा क्योंकि राष्ट्रभाषा हिन्दी को यह सच्चे अर्थ में पुष्पांजली अर्पण था और कोटि-कोटि जनता की उत्कट इच्छा का आविष्कार था कि हिन्दी इस महान गणतंत्र की राजभाषा बने और अन्य सभी भारतीय भाषाओं को साथ लेकर देश की सांस्कतिक और भावनात्मक एकता को अधिक मजबूत करें।

डा० कुंअर बेचैन मन के कोमल भावों को उजागर करने में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने कहा:—

पूरी धारा भी साथ दे तो और बात है
पर तू जरा भी साथ दे तो और बात है।

उनके "दो सहेलियों" का वर्णन लयबद्ध तरीके से हुआ और पूरा दर्शकवर्ग उनके साथ गाने में अपने को रोक नहीं सका।

भारतीय काव्य अम्बर में सूर्य की तरह दर्शकों से अपना अस्तित्व बनाये रखने वाले कविवर गोपाल दास "नीरज" के आगमन पर उनका स्वागत करते हुए संचालक श्री शिव ओम अम्बर ने कहा कि इस समय मंच पर आदित्य हैं, सोम भी हैं, नूर है, नीरज भी हैं, कुंअर के साथ नन्दन भी हैं, रजनीनाथ रमानाथ की उपस्थिति ने इस कवि मंच की कीर्ति को ज्वलामुखी के होते हुए भी अम्बर तक प्रेषित की है और सभी हरिओम का नारा लगाकर आह्लादित हैं। यह एक महान चमत्कार है जो इंडिया अमल द्वारा ही किया जा सकता है, श्री शिव ओम अम्बर ने कहा।

मुंबई से पधारे श्री निदा फाज़ली ने मां की ममता टेलीपैथी से संतान तक पहुंचाने की अमूल्य प्रक्रिया को अपने अनुभव से रेखांकित किया:

मैं रोया परदेश में, भीगा मां का प्यार
दुख ने दुख से बात की, बिन चिट्ठी बिन तार।

ऑडिटोरियम के श्रोताओं को श्री श्याम ज्वालामुखी ने अपनी गंभीर शैली में और तुतलाती भाषा में अपनी फुलझड़ियों से खूब हंसाया।

वरिष्ठ पत्रकार और कवि **श्री कन्हैया लाल नन्दन ने मनुष्य** के इन्द्रधनुषी भावों को उजागर करते हुए युद्ध की अनवरतता की ओर श्रोताओं को उन्मुख करते हुए सोच को नई धार दी।

मन के कोमल भावों को झंकृत करने में पारंगत कवयित्री कीर्ति काले ने अपनी सुरीली आवाज में गाते हुए अपने मन मयूर को प्रेषित किया:

बौराया हिरनीला मन, फिरता है जंगल जंगल
सूखे में खोज रहा है.....

उन्होंने फिर पूछा:

बोलो कब दूर ये शैतान की मस्ती होगी
और कब बन्द यहां फिरता परस्ती होगी।

दिल्ली के लोकप्रिय कवि, श्री ओम प्रकाश आदित्य की **हास्य व्यंग्य** कविताएं सुनकर श्रोता मुग्ध हो गए। "एक नौजवान लड़की छज्जे पर खड़ी है" इस स्थिति को मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह दिनकर, काका हाथरसी कैसे कहते, इसका एक उत्तम उदाहरण श्री आदित्य जी ने प्रस्तुत किया।

मेरठ निवासी श्री हरिओम पवार की बुलन्द आवाज ने पूरा आडिटोरियम हिला दिया और अपनी चिरपरिचित शैली में अपनी सुप्रसिद्ध कविताओं "काश्मीर की समस्या" और "राम" का पाठ किया।

लखनऊ से आए श्री कृष्ण बिहारी "नूर" के शेर बहुत पसंद किए गए। उनका एक शेर था:

चाहे सोने के फ्रेम में जड़ दो
आइना झूठ बोलता ही नहीं।

फरुखाबाद के श्री शिवओम अम्बर न केवल एक कुशल संचालक है परन्तु एक रचनाकार भी हैं। अपनी साहित्यिक शैली में उन्होंने कबीर को याद किया क्योंकि आज ही के दिन उनका जन्म हुआ था। ग़ज़ल को भारतीय संस्कार देने वाले श्री अम्बर एक सिद्ध हस्ताक्षर हैं:

बस घड़ी भर के लिए काजल रहा है
इन दृगों में उम्र भर बादल रहा है।

जन्म लेती है अलकनंदा ग़ज़ल की
दर्द का हिमालय गल रहा है।

कवि सम्मेलन के आकर्षण थे सैंकड़ों मधुर गीतों के जन्मदाता श्री गोपाल दास "नीरज"। तीसरे महायुद्ध (अणु युद्ध) की संभावना को नकारते हुए प्रस्तुत किया उनका गीत सबके दिलों को छू गया। कई दशकों तक काव्य प्रेमियों के दिलों पर राज करते रहे नीरज। उनकी नम्रता का उदाहरण:

नीरज में बहुत दोष हैं लेकिन फिर भी
माफ कर दो उन्हें बच्चों की खताओं की तरह।

कवि सम्मेलन के अध्यक्ष श्री रमानाथ अवस्थी की उपस्थिति ही मंच को गरिमा प्रदान कर रही थी। उनके गीत-निमंत्रण गीत को करतल ध्वनि से सराहा गया:

आज मेरे साथ गीत गाओं पास आओ तुम
रोज रोज तुमको देखने तो मैं न आऊंगा।
तुम मिलों तो चांद से कहूं कि और दूर जा
हो सके तो थोड़ी दूर के लिए तू डूब जा।

दूसरा गीत जिस रात नींद नहीं आई उस रात का गीत:

सो न सका कल याद तुम्हारी आई सारी रात
और पास ही बजी कहीं शहनाई सारी रात।

पुराना होने पर आज भी वही ताजगी लिए है।

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन हर वर्ष नई दिल्ली में विशाल कवि सम्मेलन का सफल आयोजन करता है। वस्तुतः इंडियन ऑयल द्वारा आयोजित कवि सम्मेलनों ने शहर की सांस्कृतिक गतिविधियों में अपनी खास पहचान बना ली है।

प्रस्तुतिः अनिल कासखेडीकर

विशाखापट्टणम इस्पात संयंत्र में विपणन व्यवस्था की चुनौतियां : इस्पात उद्योग के परिप्रेक्ष्य में

दुनिया के हर इन्सान को किसी न किसी वस्तु के उपयोग की आवश्यकता पड़ती रहती है। इन वस्तुओं को पाना मुश्किल बात नहीं, लेकिन आजकल हर मनुष्य में हर चीज को व्यापार की दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति दिनप्रति दिन बढती ही जा रही है। हजारों वर्ष पहले मानव वस्तुओं का विनिमय कर अपनी जरुरतों को पूरा किया करता था। आये दिन मनुष्यों की आवश्यकताएं भी बढ़ती गई। इनकी पूर्ति के लिए मनुष्य हमेशा स्वार्थवश हर चीज को व्यापार की दृष्टि से देखने लगा। कोई भी व्यापार सिर्फ एक व्यक्ति अथवा चन्द लोगों के मिलकर करने से तब तक सफल नहीं होगा जब तक उसके लिए उपयुक्त बाजार अथवा विपणन मौजूद न हो। विपणन के क्षेत्र में व्यवस्थागत नियम निरंतर परिवर्तनशील रहते हैं। इनमें से कुछ का गठन खुद व्यापारी लोग करते हैं तो कुछ विविध देशों की आर्थिक व्यवस्थाओं और इनके बीच के व्यापार संबंधों के आधार पर अपने आप बन जाते हैं। इन नियमों के कारण विपणन व्यवस्था में तरह-तरह की चुनौतियां पैदा हो जाती हैं जिनका सामना करने के लिए प्रत्येक व्यापारी अथवा व्यापार संगठनों को हमेशा तैयार रहना पड़ता है। इन्हीं बातों को दृष्टि में रखकर विपणन व्यवस्था की चुनौतियां : इस्पात के प्रशिक्षण व विकास केन्द्र में अखिल भारतीय स्तर की हिन्दी संगोष्ठी आयोजित की गई।

इस समारोह में डा० एस कृष्णबाबु, उप प्रबन्धक (हिन्दी) ने श्री आर० सी० झा, निदेशक (प्रचालन), महाप्रबंधक (कार्मिक), उप महा प्रबंधक (प्रशिक्षण) और संगोष्ठी के सभी प्रतिनिधियों का स्वागत किया। संगोष्ठी के विषय का संक्षिप्त परिचय देते हुए उन्होंने मुख्य अतिथि श्री आर० सी० झा, निदेशक (प्रचालन) को अपना सन्देश देने का अनुरोध किया। श्री आर सी झा ने अपने भाषण में बताया कि, 'आज हर देश की अर्थव्यवस्था अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विपणन की गतिविधियों पर निर्भर है। हमें अपनी अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में होनेवाले परिवर्तनों पर भी ध्यान देना पड़ता है। यदि किसी संगठन के सभी कर्मचारी निष्ठावान होकर काम करें और संगठन की सफलता के लिए प्रयास करें तो उस संगठन के विजयी होने में कोई संदेह नहीं। हम समय समय पर मिलकर विपणन व्यवस्था की चुनौतियों पर प्रभावी चर्चाएं आयोजित करें ताकि हमें उन चुनौतियों का सामना करने में सुविधा हो सके।

इसके बाद संगोष्ठी के अवसर पर निकाले गये 'विशेषांक' का विमोचन किया गया। इस विशेषांक में प्रकाशित उत्तम आलेख लिखनेवाले प्रतिनिधियों को पुरस्कार दिए गए। साथ ही प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ परीक्षाओं में अत्यधिक अंक प्राप्त करनेवाले तीन कर्मचारियों को ज्ञापिकाएं देकर प्रोत्साहित किया गया। कुमारी एन० सुगुणा के आभार निवेदन से उद्घाटन का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

संगोष्ठी में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों ने अपने-अपने आलेख पढ़े। मध्याह्न भोज के बाद सभी प्रतिनिधियों को तीन समुदायों में विभाजित किया गया। मूल विषय से संबंधित तीन उप विषय बनाए गए जिन्हें प्रत्येक समुदाय को चर्चा-परिचर्चा के लिए दिया गया। ये उप विषय इस प्रकार हैं:—

उप विषय :

1. राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अर्थव्यवस्था में आये हुए परिणाम और हमारे इस्पात उद्योग पर उनका प्रभाव।
2. नयी औद्योगिक नीति : इस्पात उद्योग के दायित्व।
3. ग्राहक संतुष्टि, व्यर्थता निवारण, गुणवत्ता में वृद्धि और कीमतों में कमी के लिए हमें क्या करना होगा?

प्रतिनिधियों के तीनों समुदायों द्वारा उन्हें आबंटित उपर्युक्त उप विषयों पर निकाले गये निष्कर्षों का ब्यौरा संलग्न है।

संगोष्ठी के समापन समारोह में डा० सत्यनारायण दास, कार्यपालक निदेशक (सतर्कता) मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। उन्होंने अपने भाषण में बताया कि विपणन व्यवस्था में उत्पादकों की आपस में हमेशा होड़ लगी रहती है। हर प्रतिष्ठान को अपने उत्पादों की गुणवत्ता में इस तरह सुधार लाना पड़ता है, जिससे ग्राहक की दृष्टि उन पर पड़े। जर्मनी प्रद्योगिकी की दृष्टि से जितने आगे हैं, उस हद तक पहुंचने में हमें कम से कम 50 वर्ष लगेंगे। अतः हमें विकसित सांकेतिक प्रौद्योगिकी पर विशेष ध्यान देना होगा' बाद में इस अवसर पर विशेष वक्ता के रूप में आमंत्रित श्री एस के दत्ता, कार्यपालक निदेशक (वाणिज्य) ने अपने वक्तव्य में विषय की जटिलता को स्पष्ट करते हुए कहा कि विकसित देशों में इस्पात की जरुरत काफी ज्यादा बढ़ती जा रही है। वहां हर साल 8%-15% तक की वृद्धि हो रही है। आज इस्पात क्षेत्र में होड़ बढ़ी है। जहां तक हमारे उत्पादों का संबंध है, हम इतनी गुणवत्ता वाले इस्पात का उत्पादन कर रहे हैं, जिसपर काफी प्रशंसा मिली है और पर्याप्त पहचान मिली है। इस प्रयास के पीछे सभी कार्मिकों का हाथ रहा। इस दिशा में मेरा विश्वास है

कि आजकल जो लाभ हमारी कंपनी को मिल रहा है, वह आगे भी जारी रहेगा।' इसके बाद मुख्य अतिथि महोदय ने हिन्दी टंकण व आशुलिपि परिक्षाओं में उत्तीर्ण कर्मचारियों को नकद पुरस्कार प्रदान किये। डा० एस कृष्णबाबु, उप प्रबंधक (हिन्दी) के आभार निवेदन के साथ संगोष्ठी समाप्त हुई।

केनरा बैंक, बेंगलूर

केनरा बैंक, राजभाषा अनुभाग, कार्मिक विभाग, प्र का (अनेक्स), बेंगलूर द्वारा दिनांक 25.3.96 को "बैंकिंग के संदर्भ में ग्राहकों की बदलती अपेक्षायें और व्यवसायिक दृष्टिकोण" विषय पर हिन्दी माध्यम से एक तकनीकी संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस तकनीकी संगोष्ठी में बेंगलूर स्थित सरकारी क्षेत्र के विभिन्न बैंकों के 19 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मुख्य अतिथि के रूप में श्री नागेश्वर ठाकुर, अनुसंधान अधिकारी, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय, बेंगलूर उपस्थित थे तथा संगोष्ठी की अध्यक्षता श्री वी० वी० कामत, सहायक महाप्रबंधक, केनरा बैंक ने की।

विषय की रूपरेखा का परिचय श्री एम० पी० गोपालकृष्णन, वरिष्ठ प्रबंधक केनरा बैंक ने दिया तथा श्रीमती सुशीला आर० पूजा (विजया बैंक), श्री रविंद्र कृष्ण (यूको बैंक) ने विषय से संबंधित पर्चे प्रस्तुत किये, जिन पर प्रतिभागियों ने विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श किया। श्री निरुपम शर्मा (केनरा बैंक) ने कार्यक्रम का संचालन किया।

□

"हिन्दी द्वारा
सारे भारत को
एक सूत्र में
पिरोया जा सकता है"

-महर्षि दयानन्द सरस्वती

विविधा

प्रशिक्षण

केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो

अनुवाद प्रशिक्षण की उपयोगिता, आवश्यकता और अनिवार्यता तथा भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों तथा उपक्रमों/बैंकों आदि में हिंदी में कार्य करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों की दिनों-दिन बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए सभी अधिकारियों/कर्मचारियों को केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो द्वारा संचालित त्रैमासिक अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण देने में काफी समय लगने की संभावना थी। इसलिए राजभाषा विभाग द्वारा यह बात महसूस की गई कि जब तक कर्मचारियों को 3 महीने के प्रशिक्षण का अवसर नहीं मिल पाता तब तक उन्हें एक संक्षिप्त अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के माध्यम से अनुवाद के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष का प्रशिक्षण दिया जाए। यह पाठ्यक्रम 21 अगस्त, 1985 से आरंभ हुआ।

यह पाठ्यक्रम 5 कार्यदिवसों का है। नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों तथा विभिन्न लोक उपक्रमों/संस्थानों के अनुरोध पर यह पाठ्यक्रम उन्हीं नगरों में और उनके परिसर में ही आयोजित किया जाता है। इसमें भारत सरकार की राजभाषा नीति अनुवाद की आवश्यकता, भारत सरकार में अनुवाद की व्यवस्था, अनुवाद सिद्धान्त और प्रक्रिया, पारिभाषिक शब्दावली, वाक्य संरचना, अर्थ संरचना, कोश विज्ञान, मानक वर्तनी आदि विषयों पर जानकारी दी जाती है। अभ्यास की कक्षाओं में विभिन्न प्रकार की सामग्री का अनुवाद करवाया जाता है तथा उसका पुनरीक्षण कर त्रुटियों का संशोधन किया जाता है और उनके बारे में चर्चा की जाती है।

इस पाठ्यक्रम के अधीन 30 जून, 1996 तक 147 कार्यक्रम देश के विभिन्न नगरों में आयोजित किए गए हैं, जिनमें कुल 4267 कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया है। इस वर्ष (1996-97) की पहली तिमाही में निम्नलिखित नगरों में यह पाठ्यक्रम आयोजित किया गया:—

1. बेंगलूर (कर्नाटक) — यह पाठ्यक्रम दिनांक 8.4.1996 से 12.4.1996 तक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बेंगलूर के सहयोग से आयोजित किया गया जिसमें बेंगलूर में स्थित विभिन्न कार्यालयों/उपक्रमों आदि के कुल 28 अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया। इस पाठ्यक्रम में अनुवाद प्रशिक्षण केंद्र बेंगलूर के प्रशिक्षण अधिकारियों श्री रामविनोद सिंह तथा श्री अरूण कुमार झा ने प्रशिक्षण दिया।

2. अनन्तपुरम् (आंध्र प्रदेश) — यह पाठ्यक्रम दिनांक 13.5.1996 से 17.5.1996 तक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति अनन्तपुरम् के सहयोग से आयोजित किया गया जिसमें कुल 15 अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया। इस पाठ्यक्रम में ब्यूरो के बेंगलूर केंद्र के प्रशिक्षण अधिकारी श्री अरुण कुमार झा और कलकत्ता केंद्र के प्रशिक्षण अधिकारी श्री एस० के० पाण्डेय ने प्रशिक्षण दिया।

3. नराकास देहरादून (उत्तर प्रदेश) — यह पाठ्यक्रम दिनांक 3 जून, 1996 से 7 जून, 1996 तक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, देहरादून के सहयोग से ओ०एन०जी०सी० के कार्यालय परिसर में आयोजित किया गया। इसका उद्घाटन महासर्वेक्षक के कार्यालय के उपमहासर्वेक्षक ब्रिगेडियर श्रीवास्तव ने किया तथा समारोह की अध्यक्षता ओ०एन०जी०सी० के महाप्रबंधक (प्रशासन) श्री बंसल ने की। इस कार्यक्रम में देहरादून स्थित केन्द्र सरकार के 25 अधिकारियों/कर्मचारियों ने इस प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस पाठ्यक्रम में ब्यूरो के उपनिदेशक एवं संयुक्त निदेशक (प्रभारी) श्री विचार दास तथा प्रशिक्षण अधिकारी श्री नंद किशोर चावला ने प्रशिक्षण दिया।

4. आई०डी०पी०एल० ऋषिकेश (उत्तर प्रदेश) — यह पाठ्यक्रम दिनांक 17 जून, 1996 से 21 जून, 1996 तक आई०डी०पी०एल०, ऋषिकेश के कार्यालय में उनके सहयोग से आयोजित किया गया जिसमें 23 अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया। इस पाठ्यक्रम में ब्यूरो के प्रशिक्षण अधिकारी श्री दयाशंकर पाण्डेय और श्री नंद किशोर चावला ने प्रशिक्षण दिया। यह पाठ्यक्रम काफी प्रशंसनीय रहा।

उपर्युक्त सभी पाठ्यक्रमों के उद्घाटन और समापन समरोहों में संबंधित कार्यालयों के विभागाध्यक्ष एवं वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित रहे। उन्होंने अनुवाद प्रशिक्षण के महत्व को स्वीकार करते हुए विद्यमान द्विभाषिकता की स्थिति में अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का सतत आयोजन करने पर बल दिया और राजभाषा विभाग के द्वारा निःशुल्क उपलब्ध की जा रही इस सुविधा के लिए राजभाषा विभाग को धन्यवाद दिया और सभी संबंधित अधिकारियों की सराहना की।

उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो द्वारा संचालित 5 दिवसीय संक्षिप्त अनुवाद पाठ्यक्रमों की प्रशिक्षणार्थियों तथा संबंधित कार्यालयों/संगठनों द्वारा मुक्त कण्ठ से सराहना की गई है। यह कार्यक्रम संबंधित कार्यालयों/संगठनों में स्थानीय रूप से उनके परिसर में ही आयोजित किए जाते हैं, इसलिए उन्हें किसी भी प्रकार की वित्तीय अथवा प्रशासनिक असुविधा नहीं होती जिससे ये कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हुए हैं। देश भर से विभिन्न नगरों से इनके आयोजन के लिए निरन्तर अनुरोध प्राप्त हो रहे हैं।

इफको, कांडला में हिन्दी कम्प्यूटर प्रशिक्षण

भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम के अनुसार राजभाषा नीति के सुचारू रूप से कार्यान्वयन के लिए कार्यालयों में प्रयोग में लाई जाने वाली कम्प्यूटर प्रणालियों में देवनागरी लिपि में काम करने की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए और कम्प्यूटर पर हिन्दी के प्रयोग के लिए प्रशिक्षण सुविधाओं को सुनिश्चित करना है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इफको, कांडला में 29 से 31 जुलाई, 1996 तक एक हिन्दी कम्प्यूटर प्रशिक्षण का आयोजन किया गया जिसमें इकाई के 11 टंककों/लिपिकों व सहायकों ने भाग लिया।

29 जुलाई, 1996 को प्रशिक्षण केन्द्र में वरिष्ठ महाप्रबंधक श्री गिरीश चन्द्र द्वारा दीप प्रज्वलितकर इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया। अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने कहा कि इफको में कम्प्यूटर के माध्यम से हिन्दी में कार्य करने का सर्वप्रथम श्रेय कांडला इकाई को जाता है जो निस्संदेह सराहनीय है। साथ ही उन्होंने कहा कि राजभाषा विभाग द्वारा हिन्दी पत्राचार के लिए निर्धारित लक्ष्य को टाइपराइटरों द्वारा हमने लगभग प्राप्त कर लिया था किन्तु कम्प्यूटर आने से हिन्दी पत्राचार के प्रतिशत में गिरावट आ गयी है। हिन्दी पत्राचार के निर्धारित लक्ष्य को पुनः प्राप्त करने के लिए इस प्रशिक्षण का आयोजन किया जा रहा है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि कर्मचारी पूरे उत्साह व लगन के साथ इस प्रशिक्षण का लाभ उठायेंगे और कार्यालय के दैनिक कामकाज में राजभाषा हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करेंगे।

श्री एन० के० जैन, संयुक्त महाप्रबंधक (वित्त एवं लेखा)-व-उपाध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने अपने भाषण में हिन्दी कम्प्यूटर प्रशिक्षण के महत्व के बारे में बताते हुए कहा कि कांडला इकाई ने सर्वप्रथम वेतन-पर्ची कम्प्यूटर द्वारा तैयार कर राजभाषा कार्यान्वयन की दिशा में अपना सहयोग प्रदान किया है। इफको कांडला के लिए यह विशिष्ट उपलब्धि है। उन्होंने कम्प्यूटर की उपयोगिता के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देने के साथ प्रशिक्षण में भाग लेने वाले कर्मचारियों से कहा कि इस प्रशिक्षण की सार्थकता तब होगी जब सभी अपने कार्यालयों में कम्प्यूटर के माध्यम से हिन्दी का प्रयोग बढ़ायेंगे।

कार्यक्रम के आरम्भ में श्री बी० एल० परमार ने मुख्य अतिथि तथा उद्घाटन समारोह में आये हुए सभी का स्वागत करते हुए कहा कि कार्यालयीन कामकाज में इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के प्रयोग में कम्प्यूटर का महत्वपूर्ण स्थान है और कम्प्यूटर के माध्यम से अब कम्प्यूटर की विभिन्न प्रणालियों में भारतीय भाषाओं के साथ राजभाषा हिन्दी में भी काम किया जा सकता है। कांडला, इकाई में छठे हिन्दी कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया जा रहा है और कांडला इकाई के प्रत्येक पी० सी० पर द्विभाषी शब्द संसाधन की सुविधा उपलब्ध है तथा दो पी० सी० पर जिस्ट कार्ड भी लगाया गया है जिसके द्वारा हिन्दी व द्विभाषी रूप में कार्य किया जा रहा है।

श्री सी० पी० गुप्ता, वरिष्ठ प्रबंधक (क्रय)-व-संयुक्त सदस्य सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने सभी के प्रति आभार प्रदर्शित किया।

इस छठे हिन्दी कम्प्यूटर प्रशिक्षण में श्री बी० एल० परमार ने प्रवक्ता के रूप में अपनी सेवाएं दी और विविध विषयों पर सैद्धान्तिक व व्यवहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया। यथा कम्प्यूटर की संरचना, विभिन्न शब्द संसाधनों की विशेषताएं, प्रारम्भिक प्रचालन के निर्देश एवं उपयोगिता, कम्प्यूटर कुंजी पटल का परिचय, हिन्दी शब्द संसाधन के प्रचालन के निर्देश एवं उपयोगिता

बैंक ऑफ इंडिया, जयपुर

दिनांक 13 सितम्बर को जयपुर में बैंक ऑफ इंडिया के राजस्थान क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा शाखा प्रबन्धक सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें बैंक की राजस्थान स्थित समस्त शाखाओं के प्रबन्धकों ने भाग लिया। कार्यक्रम में बैंक के उत्तरी अंचल के आंचलिक प्रबन्धक श्री वी० एच० रामाकृष्णन ने प्रबन्धकों को राजभाषा चल वैजयंती प्रतियोगिता के वर्ष 1994-95 के पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र वितरित किए। इसी अवसर पर हिन्दी प्रयोग वृद्धि प्रतियोगिता 1993-94 के अन्तर्गत उत्कृष्ट/श्रेष्ठ व सराहनीय कार्य करने वाले स्टाफ सदस्यों को भी प्रमाणपत्र देकर सम्मानित किया गया।

वर्ष 1994-95 की चल वैजयंती प्रतियोगिता के अन्तर्गत शहरी शाखा वर्ग में सीकर शाखा ने तीसरी बार प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। ग्रामीण शाखा वर्ग में नेवटा शाखा को प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया। क्षेत्रीय कार्यालय के विभागों के लिए गत वर्ष प्रारंभ की गई शील्ड वर्ष 1994-95 के लिए ऋण विभाग को प्रदान की गई। इसके साथ ही कृषि वित्त विभाग को सराहना पत्र दिया गया।

उल्लेखनीय है कि पुरस्कार क्षेत्रीय राजभाषा अधिकारी श्री एस० पी० गर्ग "सुमन" की अनुशंसा के आधार पर क्षेत्र की राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा अनुमोदित किये जाते हैं।

बैंक ऑफ इंडिया के राजस्थान क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा सांगानेर में स्थित सभी बैंकों के सभी संवर्गों के स्टाफ-सदस्यों के लिए हाल ही में अंतर-बैंकिंग व हिन्दी सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। बैंक नगर रा० का० समिति के तत्वावधान में आयोजित इस कार्यक्रम को क्षेत्रीय राजभाषा अधिकारी श्री एस० पी० गर्ग "सुमन" द्वारा सम्पन्न कराया गया।

प्रतियोगियों ने बैंकिंग व हिन्दी सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित इस प्रतियोगिता में बड़ी रुचि के साथ भाग लिया। सांगानेर में यह न केवल बैंक ऑफ इंडिया का, वरन् समस्त बैंकों के बीच प्रथम आयोजन था।

प्रतियोगियों को बैंक नगर रा० का० समिति के वार्षिक राजभाषा समारोह में पुरस्कृत किया गया। बैंक ऑफ इंडिया के सर्वश्री मनमोहन मीणा व सोहन लाल नेहरा को विशेष पुरस्कार दिए गए। प्रतियोगिता में प्रथम व तृतीय स्थान भारतीय स्टेट बैंक के सर्वश्री पंकज माथुर व लालचन्द प्रजापत ने प्राप्त किए। एस० बी० बी० जे० के श्री गोपी रमन शर्मा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

हाल ही में सांगानेर में स्थित सभी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों हेतु बैंक ऑफ इंडिया के राजस्थान क्षेत्रीय कार्यालय के राजभाषा

कक्ष द्वारा एक रोचक हिन्दी श्रुतलेख एवं हिन्दी सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जयपुर के तत्वाधान में क्षेत्रीय राजभाषा अधिकारी श्री एस० पी० गर्ग "सुमन" द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में सांगानेर के 16 उच्च प्राथमिक विद्यालयों के 10 छात्र-छात्राओं ने बड़े उत्साह व रुचि के साथ भाग लिया एवं विद्यालयों ने इस आयोजन की भरपूर सराहना की। उल्लेखनीय है कि सांगानेर में किसी भी बैंक द्वारा यह प्रथम आयोजन था। अन्तर-विद्यालय स्तर पर विशेष रूप से आयोजित इस प्रथम आयोजन का सभी स्तरों पर व्यापक स्वागत किया गया। इस आयोजन के अवसर पर उप क्षेत्रीय प्रबंधक श्री प्रेमचन्द शर्मा ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

प्रतियोगियों को बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के वार्षिक पुरस्कार वितरण समारोह के दौरान पुरस्कार प्रदान किये गये, जिसमें भारत सरकार, भारतीय रिज़र्व बैंक, बैंक नगर रा० का० समिति एवं सभी बैंकों के गयमान्य उच्चाधिकारियों ने भाग लिया। पुरस्कार वितरण के पूर्व आदर्श विद्या मंदिर के छात्रों द्वारा सरस्वती-वंदना प्रस्तुत की गई। इस प्रतियोगिता में अनेकानेक पुरस्कार प्रदान किए गये। तीसरी व पांचवीं कक्षा के विद्यार्थियों में सर्वाधिक अंक प्राप्तकर्ताओं को विशेष पुरस्कार प्रदान किए गए।

हाल ही में बैंक ऑफ इंडिया की सांगानेर शाखा में बैंक के राजस्थान क्षेत्र के राजभाषा कक्ष की ओर से बैंक के स्टाफ-सदस्यों के लिए हिन्दी सामान्य-ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। क्षेत्रीय राजभाषा अधिकारी श्री एस० पी० गर्ग "सुमन" द्वारा आयोजित इस प्रतियोगिता में सभी स्टाफ-सदस्यों ने रुचिपूर्वक भाग लिया।

प्रतियोगिता में श्री मोहन लाल मेहरा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया और सर्वश्री मनमोहन मीणा एवं लक्ष्मण दास क्रमशः द्वितीय व तृतीय।

दूरसंचार विभाग, मद्रास

भारतीय विद्याभवन, मइलापुर में मद्रास नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक दि० 13.11.95 को संपन्न हुई। नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष एवं दक्षिण रेलवे के महाप्रबंधक श्री वी० अग्निहोत्री ने बैठक की अध्यक्षता की। बैठक में मद्रास शहर स्थित केंद्र सरकार के सर्वश्रेष्ठ दो कार्यालयों और दो उपक्रमों को हिन्दी के प्रगामी प्रयोग में विशिष्ट योगदान के लिए शील्ड भी प्रदान किये गये।

राजभाषा नीति के सफल कार्यान्वयन के लिए और संविधान में प्रतिष्ठित राजभाषा के विकास संबंधी अभीष्ठ उद्देश्यों की पूर्ति में अपना भरसक योगदान के लिए मद्रास शहर में स्थित केन्द्र सरकार कार्यालयों में मुख्य महाप्रबंधक, अनुरक्षण, दक्षिण दूरसंचार क्षेत्र, मद्रास सर्वप्रथम रहा। मुख्य अतिथि के रूप में मद्रास के विख्यात उद्योगपति श्री गिरिधारिलाल चांदक पधारे थे। दक्षिण भारतीय मुर्तुजाविद्या शैक्षणिक व सांस्कृतिक संस्थान के संस्थापक डा० के० कादरी, के करकमलों से चल शील्ड दी गई। मुख्य महा प्रबंधक अनुरक्षण, श्री के० एन० विश्वनाथन द्वारा चल शील्ड प्राप्त की गई।

केंन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के क्षेत्रीय अधिकारी (दक्षिण) डॉ० किशोर वासवानी के धन्यवाद ज्ञापन के साथ समारोह संपन्न हुआ।

राष्ट्रीय कैडेट कोर महानिदेशालय

राष्ट्रीय कैडेट कोर महानिदेशालय के अधीनस्थ 16 एन सी सी निदेशालयों तथा दो प्रशिक्षण स्थापनाओं में सरकारी कामकाज में हिंदी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राजभाषा शील्ड 1985 से आरम्भ की गई थी। पूरे देश में फैले इन 18 एन सी सी निदेशालयों/स्थापनाओं को हिंदी व अहिंदी भाषी दो वर्गों में रखा गया है। इन दोनों वर्गों में हिंदी में सर्वाधिक काम करने वाले एक-एक निदेशालय/स्थापना को महानिदेशक एन सी सी द्वारा राजभाषा शील्ड प्रदान की जाती है।

गत वर्ष (1995-96) के दौरान हिंदी में सर्वाधिक सरकारी कामकाज करने के लिए अहिंदी भाषी वर्ग में एन सी सी निदेशालय केरल व लक्षद्वीप तथा हिन्दी भाषी वर्ग में एन सी सी निदेशालय गुजरात, अहमदाबाद को विजेता घोषित किया गया। 22 अप्रैल 96 को राष्ट्रीय कैडेट कोर महानिदेशालय में आयोजित एन सी सी उपमहानिदेशकों के सम्मेलन में लेफ्टिनेंट जनरल आर मोहन, पविसेमे, अविसेमे, विसेमे द्वारा एन सी सी निदेशालय केरल एवं लक्षद्वीप तथा एन सी सी निदेशालय, गुजरात के उपमहानिदेशकों को राजभाषा शील्ड प्रदान की गई।

हिन्दी देश के बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए।

-रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हिन्दी आशुलिपिकों के लिए रोजगार के सुनहरे अवसर

भारत सरकार के कर्मचारी चयन आयोग द्वारा श्रेणी "घ" के आशुलिपिकों की खुली भर्ती के लिए 24 नवम्बर 1996 को एक लिखित प्रतियोगिता आयोजित की जाएगी जिसके आधार पर भारत सरकार के मंत्रालयों और उसके सम्बद्ध कार्यालयों तथा विभिन्न राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों इत्यादि में स्थित भारत सरकार के अधीनस्थ कार्यालयों तथा दिल्ली प्रशासन में आशुलिपिकों की नियुक्तियां की जाएंगी। परीक्षा में सामान्य ज्ञान के प्रश्न-पत्र का उत्तर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में दिए जाने का विकल्प होगा और हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषा में परीक्षण लिया जाएगा। आशुलिपि परीक्षण में भी हिन्दी अथवा अंग्रेजी का विकल्प होगा। इस प्रकार उक्त सीधी भर्ती परीक्षा में हिन्दी का पूरी तरह से विकल्प दे दिया गया है।

2. भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने अपने 15.4.94 को आदेश जारी किए थे कि कुल आशुलिपिकों/टंककों के पदों को देखते हुए "क" क्षेत्र (हिन्दी भाषी राज्य और अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह) में 90 प्रतिशत "ख" क्षेत्र (पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र तथा केन्द्र शासित प्रदेश चण्डीगढ़) में 66-2/3 प्रतिशत तथा "ग" क्षेत्र (देश के शेष भाग) में 25 प्रतिशत हिन्दी आशुलिपिकों, हिन्दी टंककों, हिन्दी टंकण यंत्रों का अनुपात हो जाए।

3. इस प्रकार अब हिन्दी आशुलिपिकों के लिए भी रोजगार के सुनहरे अवसर हो गए हैं अतः अधिक से अधिक व्यक्तियों को हिन्दी माध्यम से उक्त परीक्षा देने के लिए प्रेरित किया जाए और हिन्दी आशुलिपि कला सिखाने वाले स्कूलों को हिन्दी आशुलिपि कला सिखाने के लिए भी कहा जाए।

बैंकों में हिन्दी कम्प्यूटरीकरण

कुछ समय पूर्व बैंकों में हिन्दी कम्प्यूटरीकरण विषय पर दिल्ली बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति तत्वावधान में पंजाब नेशनल बैंक के सौजन्य से आयोजित राजभाषा विभाग की संगोष्ठी में निम्न महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए थे। जिनकी जानकारी भारत सरकार के बैंकिंग प्रभाग की 19 जुलाई 1996 को जयपुर में हुई राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में दी गई थी—

(1) बैंकों में हिन्दी कम्प्यूटर पर काम कर पाने के लिए समयबद्ध योजना बनाई जाए।

(2) ग्राहक सम्बन्धी कार्यों को कम्प्यूटर में कर पाने के विकल्प खोजने को प्राथमिकता दी जाए।

(3) बैंक ड्राफ्ट, जमा, चैक, एफ०डी०आर० तथा ग्राहक से सम्बन्धित सारणियों आदि को कम्प्यूटर द्वारा हिन्दी में तैयार करने के विकल्प को आई०बी०ए० के स्तर पर खोजा जाए। आई०बी०ए० के तत्वावधान में गठित कम्प्यूटर समिति द्वारा कम्प्यूटर निर्माताओं को आवाहन किया जाए, ताकि वे इसका समाधान उपलब्ध करवाएं।

(4) नए सोफ्टवेयर में हिन्दी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं में भी कार्य करने की सुविधा होनी चाहिए।

(5) हिन्दी कम्प्यूटर संचालकों के स्तर पर कम्प्यूटर प्रशिक्षण उपलब्ध करवाया जाए।

(6) प्रिन्टिंग की गति को तीव्रगामी बनाने के लिए प्रयास किए जाएं।

(7) हिन्दी अधिकारियों के लिए सॉफ्टवेयर रिसर्च ग्रुप प्रशिक्षण की व्यवस्था करें।

(8) कम्प्यूटर के विकास के क्रम में "यूज़र" अपनी समस्याओं और अनुभवों को मिल-बांट सकें; इस दृष्टि से "यूज़र" (प्रयोगकर्ता) एवं उत्पादकों का एक मिला-जुला सूचना पत्र (न्यूज़ लैटर) निकाला जाना चाहिए।

(9) निर्णय लिया गया कि पंजाब नैशनल बैंक, आर०के० कम्प्यूटर्स से सहयोग करते हुए सुट्रांस प्रणाली से ग्राहक सम्बन्धी सभी प्रकार की रिपोर्टों को हिन्दी में छपवाने का प्रयास करके एक महीने के अन्दर-अन्दर अपनी रिपोर्ट आई०बी०ए० को प्रस्तुत करेगा। सुट्रांस का सफल प्रयोग होने पर सभी बैंक इस प्रणाली की खरीद पर विचार करेंगे।

(10) सभी बैंक अपने पाठ्यक्रमों के साथ-साथ कम्प्यूटर पर हिन्दी प्रयोग के प्रशिक्षण की विधिवत व्यवस्था करें।

(11) इलैक्ट्रानिकी विभाग द्वारा ए०सी०सी० में "ओ" से "ए" स्तर में हिन्दी कम्प्यूटरीकरण पाठ्यक्रमों में बैंकों के अधिकारियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाए।

(12) बैंकों में प्रयुक्त शब्दावली (टर्मिनोलोजी) को अद्यतन किया जाए।

(13) सभी प्रकार की कम्प्यूटर प्रणालियों की खरीद करते समय द्विभाषिक सुविधा वाले सॉफ्टवेयर अवश्य खरीदे जाएं। इस सम्बन्ध में जांच बिन्दु स्थापित किए जाएं।

(14) भारतीय बैंक संघ द्वारा समस्त बैंकों को लिखा जाए कि किन-किन सॉफ्टवेयरों का प्रयोग बैंकों द्वारा किया जाना चाहिए।

(15) हिन्दी में कम्प्यूटर तैयार करने, उनकी उपलब्धि की जानकारी, समीक्षा एवं दिशा निर्देश देने के लिए बैंकों में हिन्दी कम्प्यूटरीकरण के लिए गठित उप समिति की बैठक में इसके कार्यान्वयन सम्बन्धी तुरन्त निर्णय लिए जाएं।

(16) ऐसी संगोष्ठी/बैठकें एक निश्चित अन्तराल पर भविष्य में भी आयोजित की जाएं।

अफ्रीकी संसद में हिन्दी

दक्षिण अफ्रीकी संसद में उसके एक सदस्य श्री मावालाल रामगोबिन ने बजट पर अपना भाषण हिन्दी में दिया। यह 20 जून 96 की बात है। उन्होंने अपना भाषण इस प्रकार आरंभ किया—

"पूज्य राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला और मेरे वतन के लोगों," उन्होंने अपना पूरा भाषण पहले ही हिन्दी में लिख कर टाइप करवा कर और उसके साथ अंग्रेज़ी अनुवाद लगा कर वितरित करवा दिया था। ऐसा नहीं कि मावालाल रामगोबिन अब हमेशा संसद में हिन्दी में ही बोलेंगे। यह भाषण सिर्फ़ प्रमाण था इस बात का कि दक्षिण अफ्रीकी संसद में उसके सांसद अपनी मातृभाषा में बोल सकते हैं। उस पर कोई रोक नहीं है।

(दक्षिण समाचार, हैदराबाद के 10 जुलाई 1996 के अंक से साभार)

लुफ्थान्सा उड़ानों में हिन्दी

लुफ्थान्सा ने भारतीय यात्रियों की सुविधा के लिए वह सब कुछ करना शुरू कर दिया है-जिनसे भारत की तहजीब और यहां की भाषा के साथ तालमेल स्थापित हो सके। इस योजना के तहत लुफ्थान्सा ने अपनी उड़ानों में सीक कबाब परोसने के साथ-साथ हिंदी में बातचीत करने वाले केबिन क्रू की नियुक्ति की है। अब जर्मनी और दिल्ली तथा जर्मनी और मुंबई के बीच उड़ने वाले लुफ्थान्सा विमानों में भारतीय परिचारिकाएं तथा अन्य केबिन सदस्य दिखाई देते हैं। अब केवल मद्रास वाले रूट पर ही यह सुविधा शुरू होना शेष है। एयर लाइन के रीजनल डायरेक्टर माइकल स्टियर के अनुसार हमारे रूटों पर 70 प्रतिशत से ज़्यादा यात्री या तो भारतीय होते हैं या भारतीय मूल के। इसीलिए हमने केबिन क्रू में भारतीयों की नियुक्ति का फैसला किया।

भारत इलेक्ट्रानिक्स में इंजीनियरों की भर्ती परीक्षा में हिन्दी का विकल्प

केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् ने भारत इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड, बेंगलूर से निवेदन किया था कि वह इंजीनियरों की भर्ती परीक्षा में हिन्दी का विकल्प दे। प्रसंगवश, भारत सरकार के इस उद्यम द्वारा 61 इंजीनियर भर्ती किए जाने वाले हैं। अब परिषद के संयोजक, राजभाषा कार्य, श्री जगन्नाथ के नाम उक्त उद्यम ने अपने 23.7.96 के पत्र संख्या-17555/712/काओं/हिकक्ष द्वारा निम्न प्रकार सूचित किया है:—

(1) भारत इलेक्ट्रानिक्स की इंजीनियरी भर्ती परीक्षा के लिए इस बार हिन्दी का विकल्प देने का निर्णय लिया गया है।

(2) इस हेतु द्विभाषा में प्रश्न-पत्र रखने का भी विचार है।

(3) इस विकल्प की सूचना बुलावा-पत्र के साथ देने का निर्णय लिया गया है।

कालेज आफ मैटीरियल मनेजमेंट जबलपुर की विभागीय परीक्षा में हिन्दी का विकल्प

रक्षा मंत्रालय के कालेज आफ मेटीरियल मैनेजमेंट, जबलपुर ने अपने 1 जुलाई 1996 के पत्र संख्या-96053/जी एस/एम टी-17 द्वारा सूचित किया है कि उनके द्वारा ली जाने वाली निम्न वर्ग से उच्च वर्ग लिपिक की पदोन्नति परीक्षा में प्रश्नपत्र हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में उपलब्ध कराए जा रहे हैं तथा साथ ही परीक्षार्थियों को किसी भी भाषा में उत्तर देने की छूट प्रदान की जा रही है।

नेशनल मिनेरल डिवलपमेंट कार्पोरेशन में एक्जीक्यूटिव ट्रेनीज की भर्ती परीक्षा में हिन्दी का विकल्प हुआ

साप्ताहिक रोजगार समाचार के 8 जून 1996 के अंक में प्रकाशित एक सूचना के अनुसार नेशनल मिनेरल डिवेलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड (भारत सरकार का उद्यम), हैदराबाद द्वारा 31 एक्जीक्यूटिव ट्रेनीज की भर्ती के लिए जो परीक्षा ली जाएगी उसमें प्रश्न-पत्र द्विभाषी (हिंदी तथा अंग्रेजी) में उपलब्ध कराए जाएंगे। और विद्यार्थियों को यह विकल्प होगा कि वे हिन्दी में भी उनके उत्तर दे सकें।

बीमा निरीक्षकों/प्रबन्धकों/अधीक्षकों की भर्ती परीक्षा में हिन्दी माध्यम का विकल्प

कर्मचारी राज्य बीमा निगम ने अपने 25 जून 1996 के पत्र संख्या-ए-36(20)/95-परीक्षा, वीआईपी/मिन० द्वारा सूचित किया है कि बीमा निरीक्षकों/प्रबन्धकों/अधीक्षकों की भर्ती परीक्षा में (1) अंग्रेजी (2) सामान्य ज्ञान (3) अंक गणित 3 पेपर होंगे जिनमें प्रश्न-पत्र 2 और 3 अंग्रेजी-हिन्दी दोनों भाषाओं में होंगे और वस्तुपरक होंगे। प्रत्याशी को तदनुसार किसी एक भाषा में उत्तर देने का विकल्प है।

भारत में पी०एचडी० करने वालों के लिए किसी भारतीय भाषा में भी सारांश लिखा जाना अनिवार्य किए जाने की आवश्यकता

एन्सकेडे विश्वविद्यालय, होलैण्ड से जो व्यक्ति पी०एचडी० करते हैं और अपना थीसिस अंग्रेजी में प्रस्तुत करते हैं, उनके लिए यह अनिवार्य है कि वे थीसिस के आरम्भ में डच भाषा में भी अपना सारांश दें। इससे उस देश का अपनी भाषा के प्रति प्रेम और आग्रह प्रतीत होता है। भारत में भी अनेक देशों के विद्यार्थी पी०एचडी० करने आते हैं। हमारा अनुरोध है कि उनके लिए और भारतीय विद्यार्थियों के लिए भी यह अनिवार्य करने पर विचार किया जाए कि यदि वे अपना थीसिस किसी विदेशी भाषा में प्रस्तुत

करते हैं तो उसका सारांश किसी भारतीय भाषा में भी दिया जाए। अब जबकि देश स्वतंत्रता की 50वीं जयन्ती मनाने वाला है ऐसे आदेश जारी किए जाने और भी आवश्यक हैं।

राम प्रेमी हिन्दी के चीनी विद्वान

26 अप्रैल से 28 अप्रैल तक चीन के शेनझेन विश्वविद्यालय में अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन हुआ। इसमें 12 देशों - हालैंड, इटली, जापान, मलेशिया, थाइलैंड, भारत, इंग्लैण्ड, अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका तथा चीन के विद्वानों ने भाग लिया।

इस सम्मेलन का आयोजन बीजिंग विश्वविद्यालय के भारतीय विद्या विभाग के प्रो॰ डॉ॰ जिंन दिंगहान तथा शेनझेन विश्वविद्यालय के भारतीय विद्या विभागाध्यक्ष डॉ॰ यूलांग्यू ने किया। डॉ॰ जिंन दिंगहान ने 10 वर्ष तक हिन्दी भाषा सीख कर गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस का चीनी भाषा में पद्यानुवाद किया है। इसी तरह बीजिंग के ही 82 वर्षीय विद्वान डॉ॰ चीनशेंग ने वाल्मीकि रामायण का अनुवाद चीनी भाषा में किया है जो 8 खण्डों में प्रकाशित है। चीन के विश्वविद्यालयों में आज भी हिन्दी, बंगला, संस्कृत भाषाएं पढ़ायी जाती हैं।

भगत सिंह: हिन्दी और देवनागरी के प्रेमी

वरिष्ठ हिन्दी लेखक श्री रघुनाथ प्रसाद 'विकल' (9, क़िदवईपुरी पटना-800001) ने एक लेख लिखा है — हिन्दी-भक्त शहीदे आज़म 'भगत सिंह'। उसमें उन्होंने प्रमाण देकर स्थापित किया है कि भगत सिंह चाहते थे कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो, और पंजाबी भाषा देवनागरी को अपनी लिपि के रूप में अपना लें।

प्रस्तुतिः जगन्नाथ

("दक्षिण समाचार" के 29 मई 1996 के अंक से साभार)

मातृभूमि की भाषा

पुर्तगाली दासता के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजाने वाले देशभक्त भारतीय डा॰ तेलो मस्कारेन्हस का जन्म तथा प्रारम्भिक शिक्षा गोवा में हुई थी। मस्कारेन्हस पुर्तगाली जेल में चौबीस वर्ष का कठोर कारावास भुगत रहे थे। उनके साथ देशभक्त मोहन रानाडे भी थे।

सत्तर वर्ष की आयु, जेल का यातनापूर्ण जीवन, छीजता शरीर परन्तु मातृभूमि के प्रति दिनानुदिन बढ़ता अनुराग। गोवा के मुक्त होने पर जेल में ही दोनों ने मुक्त पर्व मनाया।

एक दिन मस्कारेन्हस ने श्री रानाडे से कहा, "मित्र मुझे मराठी और हिन्दी सिखा दो। थोड़ी कामचलाऊ संस्कृत भी सीखना चाहता हूं।"

रानाडे को आश्चर्य हुआ, "इस ढलती उम्र में हिन्दी, मराठी या संस्कृत सीखने का चाव?"

"मुझे बहुत शर्म आ रही है कि मेरी मातृभूमि भारतवर्ष है और मुझे वहां की एक भी भाषा नहीं आती।" डा॰ मस्कारेन्हस बोले।

"अब सीखने से फायदा"?

"कम से कम कब्र में तो मैं मातृभूमि के बारे में अपनी मातृभूमि की किसी भाषा में सोच सकूंगा।" डा॰ मस्कारेन्हस का उत्तर था।

प्रस्तुति - वैद्यनाथ झा

"हिन्दी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है"

-महर्षि दयानन्द सरस्वती

आदेश-अनुदेश

राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) का दिनांक 12.7.96 का का० ज्ञा० सं० 1/14011/1/96 रा०भा०/नी.1)

विषय: गृह पत्रिकाओं/सूचना पत्रों को और अधिक उपयोगी तथा प्रभावशाली बनाना

राजभाषा विभाग के दिनांक 18.7.85 के कार्यालय ज्ञापन सं० 20034/13/79 - पत्रिका (एकक) द्वारा केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से अनुरोध किया गया था कि यदि उनके कार्यालयों द्वारा केवल अंग्रेजी में पत्र या पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाता है तो यह आवश्यक होगा कि हिन्दी में भी पत्र या पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि इसमें हिन्दी में प्रकाशित लेखों या रचनाओं की पृष्ठ संख्या का अनुपात अंग्रेजी के लेखों या रचनाओं की मात्रा से किसी प्रकार कम न हो।

2. इसके बावजूद यह बात राजभाषा विभाग के ध्यान में लाई गई है कि बहुत से कार्यालय/संगठन गृह पत्रिकाएं अभी भी अंग्रेजी तथा हिंदी भाषा में अलग-अलग निकाल रहे हैं। यही स्थिति सूचना पत्रों (न्यूज लैटर) के विषय में भी है। कुछ पत्रों या पत्रिकाओं के नाम भी हिन्दी तथा अंग्रेजी संस्करणों के अनुसार अलग-अलग हैं।

3. इस विषय पर विचार करने के उपरांत अब निर्णय लिया गया है कि यद्यपि केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों/संगठनों द्वारा जहां-जहां अपनी गृह पत्रिकायें/सूचना पत्र केवल हिन्दी में ही जारी किये जा रहे हैं वे स्वागत योग्य हैं क्योंकि उनसे केन्द्र के कार्यालयों/संगठनों में हिन्दी में काम करने का वातावरण सबल हो रहा है, तथापि जहां पत्रिकाओं को केवल अंग्रेजी में छपवाया जा रहा है वहां यह आवश्यक होगा कि गृह पत्रिकाएं और सूचना पत्र द्विभाषी (हिंदी-अंग्रेजी) रूप में छपवाए जाएं। द्विभाषी गृह पत्रिकाओं और सूचना पत्रों में हिन्दी व अंग्रेजी के पृष्ठों की संख्या बराबर होनी चाहिए और ये एक ही जिल्द में, एक ही नाम से, छापे जाने चाहिए। जिल्द के शीर्ष व डिजाइन द्विभाषी होने चाहिएं। इसमें संगठन के कार्य संबंधी लेख तथा सूचनाएं दोनों ही भाषाओं में छापी जानी चाहिए।

4. ऐसे क्षेत्रों में, जहां हिंदी और अंग्रेजी के अतिरिक्त, स्थानीय भाषाओं का प्रचलन से अधिक है, वहां से पत्रिकाएं त्रिभाषी रूप में भी छापी जा सकती हैं। त्रिभाषी पत्रिकाएं भी एक ही जिल्द में छापी जाएं तथा यह सुनिश्चित किया जाए कि उनके शीर्ष व डिजाइन त्रिभाषी हों तथा तीनों भाषाओं (क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी तथा अंग्रेजी) में मुद्रित पृष्ठों की संख्या लगभग बराबर हो।

5. गृह पत्रिका/सूचना पत्र की एक प्रति सचिव/संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग को नियमित रूप से भेजी जाए।

राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) का दिनांक 24.7.96 का कार्यालय ज्ञापन सं० 11014/8/96 -रा०भा०(प०)

विषयः- राजभाषा विभाग द्वारा समय-समय पर हिंदी में प्रकाशित पुस्तकों/पत्रिकाओं की संस्तुति

राजभाषा विभाग प्रतिवर्ष स्तरीय पुस्तकों की एक सूची जारी करता है। इसके अतिरिक्त विभाग ने हिन्दी में प्रकाशित सरकारी पत्रिकाओं के संबंध में भी संस्तुतियां जारी की हैं। अब यह अनुभव किया गया है कि केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए पठनीय साहित्य का दायरा बढ़ाने के लिए गैर-सरकारी क्षेत्रों द्वारा प्रकाशित स्तरीय पत्रकाओं को भी प्रोत्साहन दिया जाए क्योंकि यह देखा गया है कि निजी क्षेत्रों द्वारा अनेक स्तरीय पत्रिकाएं प्रकाशित की जा रही हैं। इस दृष्टि से राजभाषा विभाग में निम्नलिखित पत्रिकाओं के कुछ अंकों में संकलित सामग्री पर विचार किया गया है:

(1) वागर्थ
(2) साहित्य अमृत
(3) अनुवाद
(4) विधि भारती
(4) पश्यन्ती
(5) हिंदी संघ समाचार
(6) हिंदी प्रचार वाणी
(8) राष्ट्रभाषा
(9) मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद पत्रिका
(10) भारती

(इस परिपत्र के साथ संलग्न परिशिष्ट में उपर्युक्त पत्रिकाओं का संक्षिप्त ब्यौरा, सम्पर्क सूत्र सहित दिया जा रहा है।)

2. राजभाषा विभाग का अभिमत है कि ऐसी पत्रिकाओं के प्रकाशन से राजभाषा हिंदी के विकास और प्रचार-प्रसार का मार्ग प्रशस्त होता है और यदि केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों/सार्वजनिक उपक्रमों/बैंकों/स्वायत्त निकायों/संस्थानों आदि द्वारा इन पत्रिकाओं की खरीद की जाए तो इससे एक ओर इन पत्रिकाओं को प्रोत्साहन मिलेगा तथा दूसरी और इन कार्यालयों आदि में कार्यरत सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए राजभाषा हिंदी में पठनीय साहित्य की परिधि में विस्तार होगा।

3. सभी मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों/सार्वजनिक उपक्रमों/बैंकों/स्वायत्त निकायों/प्रशिषण संस्थानों आदि से अनुरोध है कि वे अपने पुस्तकालयों/वाचनालयों और संदर्भ-प्रकोष्ठों आदि में उपर्युक्त पत्रिकाएं उपलब्ध कराने हेतु इन पत्रिकाओं के ग्राहक बनने पर विचार करें।

परिशिष्ट

पत्रिका का नाम	विषय-वस्तु	सम्पादक	प्रकाशक	प्राप्ति स्थान एवं शुल्क भेजने का पता	मूल्य
1	2	3	4	5	6
(1) वागर्थ (मासिक)	साहित्य की विभिन विधाओं पर ज्ञानवर्धक लेख-आलेख, कविताएं कहानियां आदि	श्री प्रभाकर श्रोत्रिय	डा० कुसुम खेमानी मंत्री, भारतीय भाषा परिषद 36-ए, शेक्सपियर सरणी कलकत्ता-700 017	वागर्थ, भारतीय भाषा परिषद, 36-ए, शेक्सपियर सरणी, पो०बा० 16130, कलकत्ता-700 017 (2) गीता कुक सेंटर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, न० दि०	10.00
(2) साहित्य अमृत	भाषा, संस्कृति एवं साहित्य की विभिन्न विधाओं पर ज्ञानवर्धक लेख, कविताएं, कहानियां आदि	श्री विद्यानिवास मिश्र	श्री श्याम सुंदर 4/19 आसफअली रोड, दिल्ली-2	4/19, आसफअली रोड, दिल्ली-2	10.00
(3) अनुवाद (त्रैमासिक)	अनुवाद संबंधी लेख-आलेख तथा अनुदित रचनाएं आदि	डा० गार्गी गुप्त	डा० गार्गी गुप्त 203, आशादीप 9, हेलो रोड, नई दिल्ली-1	24 स्कूल लेन, बंगाली मार्किट, नई दिल्ली-1	15.00
(4) विधि भारती (त्रैमासिक)	विधि से संबंधित विविध लेख-अलेख	श्रीमती संतोष खन्ना	विधि भारती परिषद वी०एच/48(पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-52,	विधि भारती परिषद बीएच०/48(पूर्वी)शालीमार बाग दिल्ली-52	25.00
(5) पश्यन्ती (त्रैमासिक)	भाषा, साहित्य-,समाज-शास्त्र तथा ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों पर ज्ञानवर्धक लेख-आलेख	डा० प्रणव कुमार बंधोपाध्याय	डा० प्रणव कुमार बंधोपाध्याय पश्यन्ती, बी-9/6327, बसंत कुंज नई दिल्ली	पश्यन्ती बी-9/6327 बसंतकुंज, न०दि०	20.00
(6) हिंदी संघ की समाचार (त्रैमासिक)	राजभाषा हिंदी तथा भाषायी संस्कृति पर लेख-आलेख, हिंदी के प्रचार-प्रसार संबंधी सूचनाएं	श्रीमती बी०एस० शांताबाई	बी०एस०शांताबाई 34, कोटला मार्ग नई दिल्ली-2	अखिल भारतीय हिंदी संस्था संघ 3छ, कोटला मार्ग, न०दि०	4.00
(7) हिंदी प्रचार वाणी (मासिक)	विविधात्मक लेख-आलेख तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबंधित सामग्री	श्रीमती बी० एस० शांताबाई	कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, चामराजपेट बेंगलूर-18	कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति चामराजपेट, बेंगलूर-18	2.50
(8) राष्ट्रभाषा (मासिक)	राजभाषा हिंदी पर सारगर्भित लेख-आलेख	श्री द्वारकादास वेद	"राष्ट्रभाषा" हिंदी नगर वर्धा-442003	"राष्ट्रभाषा" हिंदी नगर, बर्धा-442003	5.00
(9) मैसूर हिंदी प्रचार परिषद (मासिक)	सामयिक तथा साहित्यिक लेख	मनोहर भारती	बि० रामसंजीवय्या मैसूर हिंदी प्रचार परिषद राजाजी नगर, बेंगलूर-10	मैसूर हिंदी प्रचार परिषद, राजाजी नगर, बेंगलूर-10	
(10) भारती	हिंदी प्रचार-प्रसार संबंधी सूचनाएं तथा लेख-आलेख	प्रो० सी०पी० सिंह अनिल	बंबई हिंदी विद्यापीठ उद्योग मंदिर, भागोजीकीर मार्ग, माहिम, मुम्बई-16	बमबई हिंदी विद्यापीठ उद्योग मंदिर, भागोजीकीर मार्ग, माहिम, मुम्बई-16	5.00

पत्रिकाओं के सामान्य अंक का मूल्य उपर्युक्त सारणी के कालम 6 में दर्शाया गया है। तथापि इनके विशेषांकों का मूल्य अधिक भी हो सकता है। वह प्रति विशेषांक के गुण और आकार के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

पाठकों के पत्र

राजभाषा भारती की प्रति पाकर प्रसन्नता हुई। धन्यवाद। माननीय संयुक्त सचिव द्वारा कंम्प्यूटरों एवं आधुनिक उपकरणों में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग पर बल तथा इस संबंध में, "हिंदुस्तान जिंक लि॰ में कंप्यूटरों में राजभाषा का प्रयोग" प्रभावी लगे। प्रेरणा-पुंज तथा अन्य सामग्री भी काफी उपयोगी है।

---जि॰कृ॰ राजामणि ऐयर, 14-7 दक्षिण बस्ती (जबन), डाक कांसबाहाल, उड़ीसा-770034

"राजभाषा भारती" का एक अंक हस्तगत हुआ। पढ़कर मन/हृदय सौरभित हुआ। यह त्रैमासिक हिंदी विशेषांक सदैव पठनीय है। यह संग्रह मुझे और संघी साथियों सहित प्राध्यापकों को भी भाया।

पढ़कर लगा, जिस भांति भगवान कण-कण में विराजमान रहता है, उसी भांति इस संग्रह में वो तमाम जीवन के अमन के लिए सफर है जिसे अपनाकर और उसमें चलकर मन का मैल हटाया जा सकता है।

---अभय धृतलहरे "दीव्यकार", साहित्यिक सचिव-शासकीय, महाविद्यालय बसना, जिला-रायपुर (म॰प्र॰)

मैंने राजभाषा भारती पढ़ी। हिंदी साहित्य सेवा की भावना से जुड़े व्यक्तियों के लिए बहुत ही उपयोगी मालूम हुई। मैंने स्वयं हिंदी विषय में एम॰ए॰ पी॰एचडी॰ की है। यह विशेषांक (अंक 66) बहुत ही उपयोगी है।

इसलिए मेरी हार्दिक इच्छा है कि पत्रिका निरन्तर पठन, मनन, चिन्तन करने में सहयोगी होगी। इसलिए पत्रिका का अंक निरन्तर भिजवाने का कष्ट करें।

---डॉ॰ निर्मल कुमार साहू, साधना कुटीर बसना जिला रायपुर (म॰प्र॰)

राजभाषा भारती पत्रिका का जनवरी-मार्च, 1996 का अंक प्राप्त हुआ। हार्दिक धन्यवाद।

राजभाषा विभाग की त्रैमासिकी "राजभाषा भारती" का यह अंक मुझे बहुत अच्छा लगा। इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार समारोह के अवसर पर राष्ट्रपति ...॰ शंकर दयाल शर्मा जी का भाषण प्रकाशित करने के लिए धन्यवाद।

हिंदी: एक परिप्रेक्ष्य, कार्यालय भाषा हिंदी का स्वरूप, संस्कृत साहित्य का परिचायक इतिहास-3, रामायण, महाभारत एवं पुराण साहित्य, पुस्तक समीक्षा एवं हिंदी कार्यशालाएं के अन्तर्गत जानकारियां न केवल ज्ञानवर्धक अपितु अत्यंत महत्वपूर्ण भी हैं। "राजभाषा भारती" पत्रिका का यह अंक संग्रहणीय है।

---सुरेश दीवान, ग्राम व पोस्ट अकोली, व्हाया-मांढर (सी॰सी॰आई॰), जिला रायपुर (म॰प्र॰), पिनः 493111

आपके द्वारा प्रेषित राजभाषा भारती, अंक 66 राजभाषा पुष्पमाला के अंक 76+77 तथा अंक 78 अंक प्राप्त हुए। आपकी पत्रिका ज्ञानवर्धक सामग्री, लाभदायक साहित्यक सामग्री है। हार्दिक धन्यवाद स्वीकारें।

---श्रीमती मुकुल तिवारी, द्वारा डा॰ एच॰के॰त्रिपाठी, बाल मुकुन्द त्रिपाठी मार्ग, 982 दीक्षितपुरा, जबलपुर, पिनः 482002.

आपके द्वारा प्रेषित अक्तूबर-दिसंबर, 1995 वर्ष के दौरान प्रकाशित "राजभाषा भारती" नामक गृह पत्रिका के वर्ष-18, अंक 71, कुछ प्रतियों की प्राप्ति हुई, इसलिए मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूं।

उक्त पत्रिका की सामग्री बहुत ही श्रेष्ठ एवं उच्चतम है। राजभाषा के प्रचार-प्रसार में अपना अलग स्थान रखती है। इसी प्रकार यह पत्रिका ठीक समय पर प्रकाशित होती रहे, यही मेरी कामना है।

--द मण्डया नेशनल पेपर मिलस लि॰, सहायक प्रबंधक,

"राजभाषा भारती" का जनवरी-मार्च 1995 का अंक मिला। इस पत्रिका के संबंध में जितना भी लिखा जाए कम ही है, क्योंकि यह पत्रिका सम्पूर्ण भारत के विविध प्रान्तों में हिंदी के कार्य पर प्रकाश डालती है। इससे यह ज्ञात होता है कि भारत में अंग्रेजी से ज्यादा हिंदी का ही महत्व है। इस अंक में प्रकाशित सभी रचनाएं और अन्य लेख ज्ञानवर्धक हैं। भारतीय भाषा संगम, पुस्तक समीक्षा, विश्व हिंदी दर्शन आदि अपनी छाप छोड़ जाते हैं। इस पत्रिका के माध्यम से राजभाषा का व्यापक प्रचार-प्रचार होने के संकेत मिलते हैं। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय यह पत्रिका निकाल कर सरकारी कार्यालयों को हिंदी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने का सतत् प्रयास कर रही है। हमें अगले अंकों की प्रतीक्षा रहेगी।

--भारतीय नौवहन निगम लि॰, शिपिंग हाउस 13 स्ट्रैंड रोड, कलकत्ता-700001.

"राजभाषा भारती" पत्रिका के अंक देखे। सचमुच यह अत्यंत ज्ञानवर्धक पत्रिका है जो राजभाषा चिंतन के साथ-साथ हिंदी में प्रकाशित पुस्तकों से साक्षात्कार कराती है। राजभाषा के बढ़ते चरणों का परिचय प्रदान करती है। साथ ही इसके आकर्षण एवम् प्रभावी संपादक हेतु बधाई।

--डा॰ उषा भार्गव, विश्वविद्यालय राजभाषा समिति, जयपुर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-302004.

———

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्रमुख बृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह/शब्दावली

बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह

*विज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी) (दो खंड)	पी ई सी 684	रु० 150 (दोनों खंड)
*विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	पी ई डी 604	रु० 38.50
*मानविकी और सामाजिक विज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी) (दो खंड)	पी ई डी 706	रु० 292 (दोनों खंड)
*मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	पी ई डी 535	रु० 132.70
*इंजीनियरी-I	पी ई डी 477	रु० 57
*इंजीनियरी-II	पी ई डी 580	रु० 84
*कृषि विज्ञान	पी ई डी 695	रु० 278
*आयुर्विज्ञान कृषि एवं इंजीनियरी	पी ई डी 568	रु० 48.50
*मुद्रण इंजीनियरी	पी ई डी 692	रु० 48
*आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान एवं शारीरिक नृविज्ञान	पी ई डी 698	रु० 239.40

शब्दावली

*इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली	पी ई डी 661	रु० 55
*कम्प्यूटर विज्ञान शब्दावली	पी ई डी 662	रु० 87
*वाणिज्य शब्दावली	पी ई डी 698	रु० 259
*भाषा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	पी ई डी 707	रु० 113
*बृहत प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)		निःशुल्क
*बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)		निःशुल्क

शीघ्र प्रकाश्य

रक्षा शब्दावली

प्राप्ति स्थान

1. बिक्री कांउटर (केवल नकद बिक्री)
   वै०त०श० आयोग
   पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्
   नई दिल्ली-110066
   फोनः 605211, 601220

2. बिक्री कांउटर
   प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
   (शहरी विकास मंत्रालय)
   सिविल लाइन्स
   (पुराना सचिवालय के पीछे)
   दिल्ली-110054

नोटः 1. आयोग से पुस्तकें मंगाने के लिए अग्रिम धनराशि कृपया अध्यक्ष, वै०त०श० आयोग के नाम मनीआर्डर द्वारा भेजें।

2. बैंक ड्राफ्ट द्वारा भुगतान की स्थिति में ड्राफ्ट केवल * प्रकाशन नियंत्रक, सिविल लाइन्स, दिल्ली के नाम बनवा कर भेजें।

3. सरकारी विभाग क्रेडिट पर पुस्तकें मंगा सकते हैं।

"यदि हम अंग्रेजी के आदि नहीं हो गए होते, तो यह समझने में हमें देर नहीं लगती कि अंग्रेजी के शिक्षा का माध्यम होने से हमारी बौद्धिक चेतना जीवन से कट कर दूर हो गई है, हम अपनी जनता से अलग हो गए हैं, जाति के सर्वश्रेष्ठ विभागों का विकास रुक गया है और जो विचार हमें अंग्रेजी के माध्यम से मिले, उन्हें हम जनता में फैलाने में नाकामयाब रहे हैं। पिछले साठ वर्षों से हमने विचित्र-विचित्र शब्दों को केवल रटना सीखा है, तथ्यपूर्ण ज्ञान पचाने के बदले हमने शब्दों का उच्चारण सीखा है। जो विरासत में हमें अपने बाप-दादों से हासिल हुई, उसके आधार पर नव-निर्माण करने के बदले, हमने उस विरासत को भूलना सीखा है। इस दुर्गति की मिसाल सारी दुनिया के इतिहास में नहीं है। यह तो राष्ट्रीय शोक अथवा ट्रेजेडी का विषय है। आज की पहली और सबसे बड़ी समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़ें और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें। हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्रवाईयों अपनी-अपनी भाषाओं में चलानी चाहिए तथा हमारी राष्ट्रीय कार्रवाईयों की भाषा हिन्दी होनी चाहिए।"

—महात्मा गांधी

कलकत्ता, 27 दिसम्बर 1917

पं॰ सं॰ 3246/77

आई एस एस एन 0970-9398

प्रपत्र 4 (देखिए नियम-8)

प्रेस तथा पुस्तक पंजीकरण अधिनियम

समाचारपत्रों का पंजीकरण (केंद्रीय) नियम

"राजभाषा भारती" के स्वामित्व तथा विवरणों की सूचना

1	प्रकाशन स्थान	लोकनायक भवन, नई दिल्ली - 110003
2	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3	मुद्रक का नाम व पता	प्रबंधक भारत सरकार फोटोलिथो मुद्रणालय, फरीदाबाद
4	क्या भारत का नागरिक है?	भारतीय नागरिक
5	प्रकाशक का नाम व पता	नेत्रसिंह रावत, उप संपादक, राजभाषा विभाग, भारत सरकार, लोकनायक भवन, नई दिल्ली-110003 टेलीफोन : 4698054
6	क्या भारत का नागरिक है?	भारतीय नागरिक
7	सम्पादक का नाम व पता	राजकुमार सैनी, निदेशक (अनुसंधान) राजभाषा विभाग, लोकनायक भवन, नई दिल्ली - 110003 टेलीफोन : 4617807
8	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक से साझेदार या हिस्सेदार हों ।	भारत सरकार

मैं नेत्रसिंह रावत, एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवम् विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं ।

ह0/

प्रकाशक के हस्ताक्षर

राजभाषा विभाग, भारत सरकार, (गृह मंत्रालय) लोकनायक भवन, नई दिल्ली-110003 के लिए उप संपादक द्वारा प्रकाशित तथा प्रबंधक, भारत सरकार फोटोलिथो मुद्रणालय फरीदाबाद द्वारा मुद्रित ।